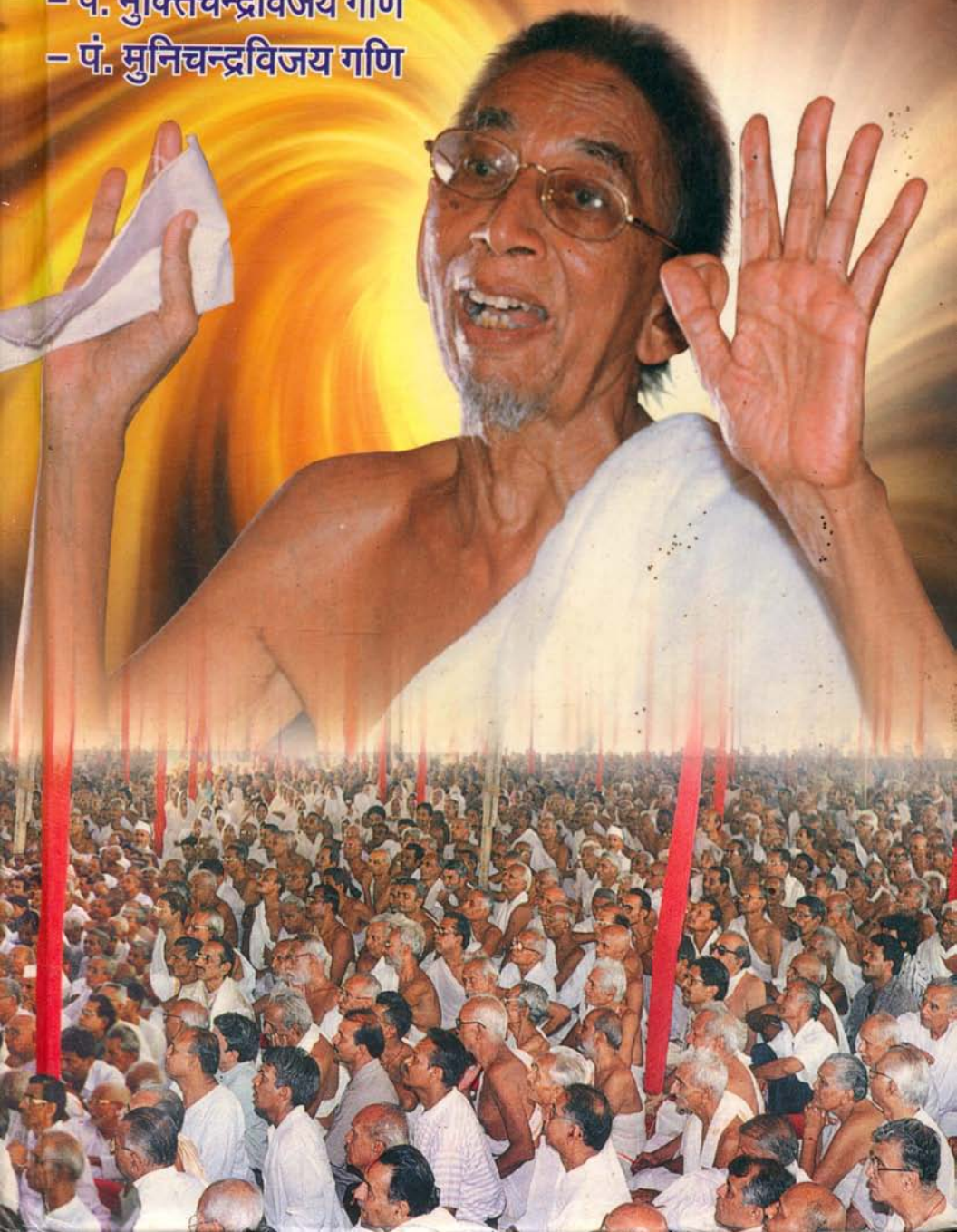


कहे कलापूर्णसूरि-३

- पं. मुक्तिचन्द्रविजय गणि

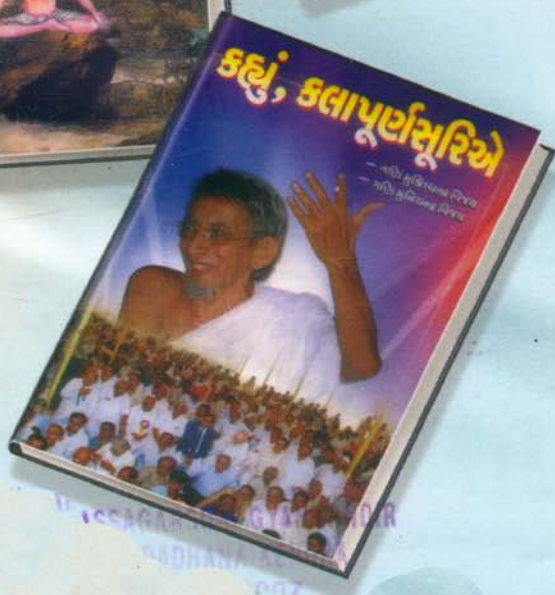
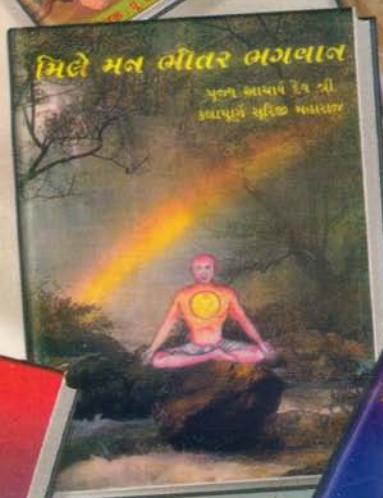
- पं. मुनिचन्द्रविजय गणि



અધ્યાત્મયોગી



જય આચાર્યદેવશ્રીનું સાહિત્ય



कहे कलापूर्णसूरि - ३

(अध्यात्मयोगी पू. आचार्यश्री की साधनापूत वाणी)

(दिनांक : १९-७-२०००, बुधवार से १७-९-२०००, रविवार)

वाचना

पूज्य आचार्यश्री विजयकलापूर्णसूरीश्वरजी म.सा.

प्रेरणा

पूज्य आचार्यश्री विजयकलाप्रभसूरीश्वरजी म.सा.

पू.पं.श्री कल्पतरुविजयजी गणिवर

आलंबन

पूज्यश्री के गुरुमंदिर की प्रतिष्ठा

वि.सं. २०६२, फाल्गुन वद ६,

दि. १९-०२-२००६, रविवार, शंखेश्वर महातीर्थ

अवतरण - सम्पादन

पंन्यास मुक्तिचन्द्रविजय गणि

पंन्यास मुनि द्रविजय गणि

अनुवादक

नैनमल सुराणा : M.A., B.Ed., साहित्यरत्न

प्रकाशक

श्री कलापूर्णसूरि साधना स्मारक ट्रस्ट

आगम मंदिर के पीछे, पो. शंखेश्वर, जि. पाटण (उ.गु.), पीन : ३८४ २४६.

श्री शान्ति जिन आराधक मंडल

P.O. मनफरा (शान्तिनिकेतन), ता. भचाऊ,, जी. कच्छ, Pin : 370 140.

पुस्तक :

191772

कहे कलापूर्णसूरि-३

(पू. आचार्यश्री की साधना-पूत वाणी)

हिन्दी प्रथम आवृत्ति : वि.सं. २०६२, ई.स. २००१

अवतरण-संपादन :

पंन्यास मुक्तिचन्द्रविजय गणि

पंन्यास मुनिचन्द्रविजय गणि

मूल्य : रु. १२०/-

प्रत : १०००

संपर्क सूत्र :

❀ कवरलाल एन्ड कां.

२७, रघुनायकुलु स्ट्रीट, चेन्नई - ३.

❀ टीकु आर. सावला

POPULAR PLASTIC HOUSE

39, D. N. Road, Sitaram Building, 'B' Block, Near Crawford Market,

MUMBAI - 400 001. • Ph. : (022) 23436369, 23436807, 23441141

Mobile : 9821406972

❀ **SHANTILAL/CHAMPAK B. DEDHIA**

20, Pankaj 'A', Plot No. 171, L.B.S. Marg, Ghatkopar (W),

MUMBAI - 400 086. • Ph. : (022) 25101990

❀ **B. F. JASRAJ LUNKED**

N. 3, Balkrishna Nagar, P.O. **MANNARGUDI - 614 001 (T.N.)**

Ph. (04367) 252479

मुद्रक :

❀ *Tejas Printers*

403, Vimal Vihar Apartment, 22, Saraswati Society, Nr. Jain Merchant
Society, Paldi, **AHMEDABAD - 380 007. • Ph. : (079) 26601045**

पुनः प्रकाशन के प्रसंग पर

सुविद्यांजन-स्पर्शथी आंख ज्यारे,
अविद्यानुं अंधारुं भारे विदारे;
जुए ते क्षणे योगीओ ध्यान-तेजे,
निजात्मा विषे श्रीपरात्मा सहेजे ।

- ज्ञानसार १४/८ (गुर्जर पद्यानुवाद)

ज्ञानसार में इस प्रकार आते वर्णन के मुताबिक ही पूज्यश्री का जीवन था, यह सब लोग अच्छी तरह से जानते हैं । ये महायोगी अपने हृदय में भगवान को देखते थे, जब कि लोग उनमें भगवान को देखते थे ।

ऐसे सिद्धयोगी की वाणी सुनने-पढ़ने के लिए लोग लालायित हों - यह स्वाभाविक है ।

पूज्यश्री की उपस्थिति में ही 'कहे कलापूर्णसूरि' गुजराती पुस्तक के चारों भाग प्रकाशित हो चुके थे, जिज्ञासु आराधक लोग द्वारा अप्रतिम प्रशंसा भी पाये हुए थे । विगत बहुत समय से आराधकों की ओर से इन पुस्तकों की बहुत डीमांड थी, किन्तु प्रतियां खतम हो जाने पर हम उस डीमांड को सन्तुष्ट नहीं कर सकते थे । हिन्दी प्रथम भाग प्रकाशित होने पर हिन्दीभाषी लोगों की डीमांड आगे के भागों के लिए भी बहुत ही थी ।

शंखेश्वर तीर्थ में वि.सं. २०६२, फा.व. ६, दि. १९-०२-२००६ को पूज्यश्री के गुरुमंदिर की प्रतिष्ठा के पावन प्रसंग के उपलक्ष में प्रस्तुत पुस्तक के चारों भाग हिन्दी और गुजराती में एकसाथ प्रकाशित हो रहे हैं, यह बहुत ही आनंदप्रद घटना है । इस ग्रंथ के पुनः प्रकाशन के मुख्य प्रेरक परम शासन प्रभावक वर्तमान समुदाय-नायक पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजयकलाप्रभसूरीश्वरजी म.सा., विद्वद्भर्य्य पू. पंन्यासप्रवरश्री कल्पतरुविजयजी गणिवर एवं प्रवक्ता पू. पंन्यासप्रवरश्री कीर्तिचन्द्रविजयजी गणिवर - आदि को हम वंदन करते हैं ।

इन ग्रंथों का बहुत ही प्रयत्नपूर्वक अवतरण-संपादन व पुनः

संपादन करनेवाले पू. पंन्यासजी श्री मुक्तिचन्द्रविजयजी गणिवर एवं पू. पंन्यासजी श्री मुनिचन्द्रविजयजी गणिवर का हम बहुत-बहुत आभार मानते हैं ।

१ से ३ भाग तक हिन्दी-अनुवाद करनेवाले श्रीयुत नैनमलजी सुराणा और चौथे भाग का हिन्दी अनुवाद करनेवाले पू. मुनिश्री मुक्तिश्रमणविजयजी म. के हम बहुत-बहुत आभारी हैं ।

दिवंगत पू. मुनिवर्यश्री मुक्तानंदविजयजी का भी इसमें अपूर्व सहयोग रहा है, जिसे याद करते हम गद्गद बन रहे हैं ।

इसके प्रूफ-रीडिंग में २६९ वर्धमान तप की ओली के तपस्वी पू.सा. हंसकीर्तिश्रीजी के शिष्या पू.सा. हंसबोधिश्रीजी का तथा हमारे मनफरा गांव के ही रत्न पू.सा. सुवर्णरेखाश्रीजी के शिष्या पू.सा. सम्यग्दर्शनाश्रीजी के शिष्या पू.सा. स्मितदर्शनाश्रीजी का सहयोग मिला है । हम उनके चरणों में वंदन करते हैं ।

आज तक मनफरा में से ऐसे अनेक व्यक्ति दीक्षित बने हैं, जिनके पुण्य से ही मानो भूकंप के बाद हमारा पूरा गांव शान्तिनिकेतन के रूप में अद्वितीय रूप से बना है । एक ही संकुल में एक समान ६०० जैन बंगले हो - ऐसा शायद पूरे विश्व में यही एक उदाहरण होगा । लोकार्पण विधि के बाद उसी वर्ष वागड समुदाय नायक पूज्य आचार्यश्री का चातुर्मास होना भी सौभाग्य की निशानी है ।

हिन्दी प्रकाशन में आर्थिक सहयोग देनेवाले फलोदी चातुर्मास-समिति एवं फलोदी निवासी (अभी चेन्नई) कवरलाल चेरीटेबल ट्रस्ट व चेन्नई के अन्य दाताओं को विशेषतः अभिनंदन देते हैं ।

श्रीयुत धनजीभाइ गेलाभाइ गाला परिवार (लाकडीया) द्वारा निर्मित गुरु-मंदिर की प्रतिष्ठा के पावन प्रसंग के उपलक्ष में प्रकाशित होते इन ग्रंथरत्नों को पाठकों के कर-कमल में रखते हम अत्यंत हर्ष का अनुभव करते हैं ।

अत्यंत सावधानीपूर्वक चारों भागों को हिन्दी-गुजराती में मुद्रित कर देनेवाले तेजस प्रिन्टर्स वाले तेजस हसमुखभाइ शाह (अमदावाद) को भी कैसे भूल सकते हैं ?

- प्रकाशक

प्रवक्ताशकीय... (गुजराती आवृत्ति में से)

अनन्तानन्त सिद्धों की पुन्य धरा पालीताना में कच्छ-वागड़ देशोद्धारक, परम श्रद्धेय अध्यात्मयोगी पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय कलापूर्णसूरीश्वरजी म.सा., मधुर भाषी नूतन आचार्य श्रीमद् कलाप्रभसूरीश्वरजी म.सा., विद्वद्भर्य पूज्य पंन्यासश्री कल्पतरुविजयजी, प्रवक्ता पू.पं.श्री कीर्त्तिचन्द्रविजयजी, पू. गणिवर्यश्री (हाल पंन्यासश्री) मुक्तिचन्द्रविजयजी, पू. गणिवर्यश्री पूर्णचन्द्रविजयजी, पू. गणिवर्यश्री मुनिचन्द्रविजयजी, पू. मुनिश्री कुमुदचन्द्रविजयजी, पू. मुनिश्री कीर्त्तिरत्नविजयजी, पू. मुनिश्री तीर्थभद्रविजयजी, पू. मुनिश्री हेमचन्द्रविजयजी, पू. मुनिश्री विमलप्रभविजयजी आदि लगभग ३० साधु भगवंत तथा ४२९ साध्वीजी भगवंतों का बीस वर्ष के पश्चात् वागड़ वीसा ओसवाल जैन संघ तथा सात चौबीसी जैन समाज दोनों की ओर से अविस्मरणीय चातुर्मास हुआ ।

चातुर्मासान्तर्गत १८ पूज्य साधु भगवंत तथा ९८ पूज्य साध्वीजी भगवंतों के बृहद् योगोद्वहन, मासक्षमण आदि तपस्याओं, जीवदया आदि के फण्ड, परमात्म-भक्ति-प्रेरक वाचना-प्रवचनों, रविवारीय सामूहिक प्रवचनों, जिन-भक्ति महोत्सवों, उपधान आदि अनेक विध सुकृतों की श्रेणि का सृजन हुआ । चातुर्मास के बाद में ९९ यात्रा, पन्द्रह दीक्षाओं (बाबूभाई, हीरेन, पृथ्वीराज, चिराग, मणिबेन, कल्पना, कंचन, चारुमति, शान्ता, विलास, चन्द्रिका, लता, शान्ता, मंजुला, भारती) तथा तीन पदवी (पूज्य गणिश्री मुक्तिचन्द्रविजयजी को पंन्यास पद, पू. तीर्थभद्रविजयजी एवं विमलप्रभविजयजी को गणि पद) आदि प्रसंग अत्यन्त शालीनतापूर्वक मनाये गये ।

इन सबमें समस्त जिज्ञासु आराधकों को सर्वाधिक आकर्षण था अध्यात्मयोगी पूज्य आचार्यश्री की वाचनाओं का ।

पूज्यश्री का प्रिय विषय है - भक्ति । इस चातुर्मास में 'नमुत्थुणं' सूत्र की पूज्य श्रीहरिभद्रसूरि कृत 'ललित विस्तरा' नामक टीका पर वाचनाओं का आयोजन हुआ । 'ललित विस्तरा' अर्थात् जैन-दर्शन का भक्ति शास्त्र ही समझ लें ।

'ललित विस्तरा' जैसा भक्ति-प्रधान ग्रन्थ हो, पूज्यश्री के समान वाचनादाता हों, पालीताना जैसा क्षेत्र हो, प्रभु-प्रेमी साधु-साध्वीजी

के समान श्रोतागण हों, फिर बाकी क्या रहे ?

इन वाचनाओं में पूज्यश्री का हृदय पूर्णतः खुला था ।

वाचनाओं की इस वृष्टि में सराबोर होकर अनेक आत्माओं ने परम प्रसन्नता का अनुभव किया था ।

अधिक आनन्द की बात तो यह है कि यह वृष्टि तात्कालिक अवतरण के द्वारा नोट के रूप में डेम में संगृहीत होती रही ।

हमारे ही गांव के रत्न पूज्य पंन्यासश्री मुक्तिचन्द्रविजयजी गणिवर तथा पूज्य गणिवर्यश्री मुनिचन्द्रविजयजी के द्वारा इन वाचनाओं का अवतरण हुआ है, जो अत्यन्त ही हर्ष की बात है ।

इस पुस्तक की त्वरित गति से प्रेस कोपी कर देने वाले पू. साध्वीजी कुमुदश्रीजी की शिष्या पू.सा. कल्पज्ञाश्रीजी के शिष्या पू.सा. कल्पनंदिताश्रीजी का हम कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करते हैं ।

पुस्तक के इस कार्य में आर्थिक सहयोग प्रदान करनेवाले भी अभिनन्दन के पात्र हैं ।

पूज्य बन्धु-युगल के द्वारा अवतरण किये गये दो पुस्तकों (कहे कलापूर्णसूरि-१, कहा कलापूर्णसूरि-२) की तरह यह पुस्तक भी जिज्ञासुगण अवश्य पसन्द करेंगे ऐसी हम श्रद्धा रखते हैं ।

ये पुस्तक पढ़कर प्रभावित हो चुके पाठकों के पत्रों से हमारे उत्साह में निरन्तर वृद्धि होती रहती है । कितनेक जिज्ञासु गृहस्थ तो ये पुस्तक पढ़कर नवीन पुस्तक हेतु अपनी ओर से अनुदान देने के लिए तत्पर रहते हैं, जो इस पुस्तक की लोकप्रियता एवं हृदयस्पर्शिता कहती है ।



भूकम्प-पीड़ित हमारा गांव (गुजराती आवृत्ति में से)

वि. संवत् २०५७, माघ शुक्ला-२, शुक्रवार, दि. २६-१-२००१ के प्रातः ८.४५ का समय कच्छ-गुजरात के लिये अत्यन्त भयावह सिद्ध हुआ । केवल ढाई-तीन मिनट में ही सैकड़ों गांव धराशायी हो गये । हजारों मनुष्य खंडहरों के नीचे दबकर 'बचाओ, बचाओ' की चीख मचाने लगे । अन्य अनेक व्यक्तियों को तो

चीख-पुकार मचाने का भी अवसर नहीं मिला । वे तो भारी छतों, पत्थरों आदि के नीचे दबकर तत्क्षण मौत के करालगाल में समा गये ।

८.१ रिक्टर स्केल के ऐसे भयंकर भूकम्प से अखिल विश्व हचमचा उठा (भारतीय भूस्तरशास्त्रियों के अनुसार यह भूकम्प ६.९ रिक्टर स्केल का था, जबकि अमेरिकन भूस्तरशास्त्री उसे ७.९ अथवा ८.१ का कहते थे । भारतीय भूस्तरशास्त्रियों ने उसका केन्द्र बिन्दु कच्छ-भुज के उत्तर में लोडाई-ध्रंग के पास बताया है, जबकि अमेरिकन भूस्तरशास्त्रियों ने खोज करके कच्छ के भचाऊ तालुका में बंधडी-चोबारी के निकट कहीं केन्द्र बिन्दु होने का कहा है । नुकसान यदि देखा जाये तो अमेरिकन भूस्तरशास्त्री सही प्रतीत होते हैं ।)

भूकम्प का केन्द्र-बिन्दु हमारे गांव 'मनफरा' के निकट ही होने से अनेक गांवों के साथ हमारा गांव भी पूर्णतः ध्वस्त हो गया ।

भचाऊ, अंजार, रापर और भुज - इन चार नगरों के साथ चारों तालुकों में अपार हानि हुई । हजारों मनुष्य जीवित गड़ गये। किसी कवि ने कहा हैं कि 'जीवन का मार्ग मात्र घर से कब्र तक का है ।' परन्तु यहां तो घर ही कब्र बन गये थे । जो छत एवं छपरे आज तक रक्षक बने रहे, वे ही आज भक्षक बन गये थे । 'जे पोषतुं ते मारतुं, एवो दीसे क्रम कुदरती' कलापी की यह पंक्ति कितनी यथार्थ है ?

अनेक गांवों के साथ हमारा 'मनफरा' गांव भी धराशायी हो चुका था । जिनालय, उपाश्रय आदि धर्म-स्थानों सहित लगभग समस्त मकान धराशायी हो गये । हमारा गांव विक्रम की सत्रहवीं (वि.सं. १६०७) शताब्दी के प्रारम्भ में ही बसा हुआ है । उस समय की खड़ी गांव के मध्य की जागीर भी पूर्णतः ध्वस्त हो गई जिसके सम्बन्ध में किसी विशेषज्ञ इन्जीनियरने कहा था कि अभी भी कम से कम दो सौ वर्षों तक इस जागीर का कुछ नहीं बिगड़ेगा ।

गांव की शोभा के रूप में निर्मित देवविमान तुल्य सुन्दर

३४ वर्ष पुराना तीर्थ के समान जिनालय भी पत्थरों के ढेर के रूप में परिवर्तित हो गया । मनफरा के ४५० वर्ष के इतिहास में गांव की पूर्णरूपेण ध्वस्तता तो प्रथम बार ही हुई । यद्यपि धरती-कम्प का प्रदेश होने से कच्छ में प्रायः धरतीकम्प होते ही रहते हैं । ऐसा ही भारी भूकम्प सन् १८१९ की १९वीं जून को आया था, जिसके कारण सिन्धु नदी का प्रवाह कच्छ में आना सदा के लिए बंध हो गया । कच्छ सदा के लिए वीरान बन गया । 'कच्छड़ो बारे मास' की उक्ति केवल उक्ति ही रह गई । वास्तविकता सर्वथा विपरीत हो गई । उस धरतीकम्प से पश्चिम कच्छ में अधिक हानि हुई होगी, पूर्व कच्छ (वागड़) बच गया होगा, ऐसा ४५० वर्ष पुरानी जागीर एवं ८०० वर्ष प्राचीन भद्रेश्वर के जिनालय को देखने से प्रतीत होता है । उससे पूर्व वि. संवत् १२५६ में भयंकर भूकम्प आया था, जिसके कारण नारायण सरोवर का मीठा पानी खारा हो गया था ।

हजार वर्षों में दो-तीन बार आते ऐसे भूकम्पों से पहले की अपेक्षा भी इस बार अत्यन्त ही विनाश हुआ है, क्योंकि अधिक मंजिलो युक्त मकानों के निर्माण के पश्चात् ऐसा हृदय-विदारक भूकम्प भारत में शायद प्रथमबार आया है ।

कच्छ के बाद विश्वभर में इण्डोनेशिया, चीन, जापान, अफघानिस्तान, अमेरिका, असम आदि स्थानों पर श्रेणिबद्ध आये भूकम्प के झटकों ने विश्वभर के लोगों को भूकम्प के सम्बन्ध में सोचने को विवश कर दिये हैं ।

डेढ़-दो हजार की जनसंख्या वाले छोटे से मनफरा गांव में भूकम्प से मारे गये लगभग १९० मनुष्यों में ६० तो जैन थे । घायल हो चुके तो अलग ।

दो-पांच हजार वर्ष पहले के प्राचीन मन्दिर क्यों आज नहीं दिखाई देते ? नदी क्यों लुप्त हो जाती हैं ? नगर क्यों ध्वस्त हो जाते हैं ? नदियों के प्रवाह क्यों बदल जाते हैं ? लोग क्यों स्थान बदल देते हैं ? 'मोंए जो डेरो' जैसे टींबे क्यों बन गये ? ऐसे अनेक प्रश्नों का उत्तर भूकम्प है ।

आदमी के लिए बड़ा गिना जानेवाला यह भूकम्प प्रकृति

के लिए सर्वथा छोटा सा तिनके जैसा कार्य भी हो ! प्रकृति में तो ऐसे परिवर्तन होते ही रहते हैं ।

धार्मिक दृष्टि से सोचें तो इसमें से अनित्यता का बोधपाठ मिलता है - ममता के ताने-बाने तोड़ने का अवसर मिलता है और घर में से मुझे बाहर निकालने वाला तू कौन है ? ऐसा कहने वाले व्यक्ति को भूकम्प का एक ही झटका बाहर निकाल देता है । क्या यह कम बात है ?

ममता को दूर करने के लिए, अनित्यता को आत्मसात् करने के लिए इससे अधिक अन्य कौनसा प्रसंग हो सकता है ?

सम्पूर्ण विश्व को एक तंतु से जोड़ देने में निमित्त बननेवाला ऐसा अन्य कौनसा प्रसंग हो सकता है ?

भूकम्प के बाद गुजरात-भारत सहित सम्पूर्ण विश्व में से सहायता का प्रवाह चला, उससे ज्ञात होता है कि आज भी मानवता नष्ट नहीं हुई । आज भी मनुष्य के हृदय में करुणा धड़कती है ।

अकाल, आंधी-तूफान एवं भूकम्प के प्रहारों से जर्जर बनने के बजाय खुमारी के साथ चलती कच्ची प्रजा को देखकर किसी को भी लगे कि ऐसी खुमारी होगी तो बर्बाद हो चुका कच्छ अल्प समय में ही बैठा हो जायेगा ।

कच्ची 'माडू' इस बर्बादी को खुमारी में, इस अभिशाप को वरदान में बदल सके ऐसे सत्त्व के रूप में अडिग खड़ा है ।

'नवसर्जन के पूर्व विध्वंस भी कभी कभी आवश्यक होता है ।' ऐसा किसी ने कहा है जो याद रखने योग्य है ।

शारीरिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक सभी दृष्टियों से बर्बाद हो चुके मनुष्य को आज बैठा करने की आवश्यकता है, उसके अन्तर में भगवान एवं जीवन के प्रति भक्ति एवं कृतज्ञता उत्पन्न करने की आवश्यकता है । मानसिक रूप से भग्न हुए मनुष्यों के सन्तप्त हृदय में ऐसी पुस्तकें अवश्य ही आश्वासन के अमृत का सिंचन करेंगी ।



पालीताना चातुर्मास में तपस्याएं

❁ ५१ उपवास :

१. साध्वीजी श्री हेमकीर्तिश्रीजी म.
२. पुनशीभाई मेकण सावला (मनफरा)

❁ ३६ उपवास :

१. साध्वीजी श्री हंसध्वनिश्रीजी म.
२. साध्वीजी श्री इन्द्रवंदिताश्रीजी म.
३. साध्वीजी श्री निर्मलदर्शनाश्रीजी म.
४. साध्वीजी श्री अभयरत्नाश्रीजी म.
५. साध्वीजी श्री अर्हदरत्नाश्रीजी म.
६. साध्वीजी श्री पुन्यराशिश्रीजी म.

❁ मासक्षमण (३० उपवास) :

१. मुनिश्री अमितयशविजयजी म.
२. साध्वीजी श्री दिव्यरत्नाश्रीजी म.
३. साध्वीजी श्री चारुभक्तिश्रीजी म.
४. साध्वीजी श्री श्रेयोज्ञाश्रीजी म.
५. साध्वीजी श्री संवेगप्रज्ञाश्रीजी म.
६. साध्वीजी श्री सुरभिगुणाश्रीजी म.
७. साध्वीजी श्री भव्यगिराश्रीजी म.
८. साध्वीजी श्री चारुस्तुतिश्रीजी म.
९. साध्वीजी श्री विरतिकृपाश्रीजी म.
१०. साध्वीजी श्री वीरांगप्रियाश्रीजी म.
११. साध्वीजी श्री जिनकरुणाश्रीजी म.
१२. साध्वीजी श्री जयकृपाश्रीजी म.
१३. साध्वीजी श्री चारुक्षमाश्रीजी म.
१४. साध्वीजी श्री चारुप्रसन्नताश्रीजी म.
१५. साध्वीजी श्री अमीझरणाश्रीजी म.
१६. साध्वीजी श्री शासनरसाश्रीजी म.
१७. साध्वीजी श्री हंसकीर्तिश्रीजी म. की शिष्या

१८. साध्वीजी श्री विनयनिधिश्रीजी म.
१९. साध्वीजी श्री प्रशान्तशीलाश्रीजी म.
२०. कान्तिलालजी हजारीमलजी (मद्रास)
२१. हीराचंदजी चुनीलाल
२२. वेलजी भचु चरला (आधोई)
२३. लीलाबेन वैद (मद्रास)
२४. बीजलबेन जयंतीलाल (अहमदाबाद)
२५. चंपाबेन धीरजलाल दोशी
२६. रतनबेन जसवंतराय
२७. विमलाबेन छगनलाल (बैंगलोर)
२८. भावनाबेन घमंडीमलजी
२९. शान्ताबेन ठाकरशी डुंगाणी (बकुत्रा)

❁ १७ उपवास :

१. साध्वीजी श्री भक्तिपूर्णाश्रीजी म.

❁ १६ उपवास :

१. मुनिश्री अजितवीर्यविजयजी म.

❁ भद्र तप :

१. साध्वीजी श्री पुष्पदंताश्रीजी म.
२. साध्वीजी श्री सौम्यपूर्णाश्रीजी म.
३. साध्वीजी श्री स्मितपूर्णाश्रीजी म.

❁ सिद्धि तप :

१. साध्वीजी श्री चारुविनीताश्रीजी म.
२. साध्वीजी श्री मुक्तिनिलयाश्रीजी म.
३. साध्वीजी श्री हितवर्धनाश्रीजी म.

❁ चत्तारि अट्ट :

१. साध्वीजी श्री प्रियदर्शनाश्रीजी म.



यह अवसर बार बार आये (गुजराती आवृत्ति में से)

- पू. आचार्यश्री जिनचन्द्रसागरसूरिजी म.सा.
- पू. आचार्यश्री हेमचन्द्रसागरसूरिजी म.सा.

अध्यात्मलक्ष्मी

पू. आचार्यदेव श्री कलापूर्णसूरि म. के प्रति
वैसे भी पहले से आकर्षण था ही क्योंकि
परम तारणहार पूज्य गुरुदेवश्री

(पं. श्री अभयसागरजी म.) के

ये अत्यन्त ही निकट के सम्बन्धी, साधक,
नवकार महामंत्र के परम आसक,

उपासक एवं चाहक हैं ।

अतः यह चातुर्मास पालीताना में करना सुनिश्चित हुआ
तबसे ही आनन्द एवं गलगली प्रारम्भ हो गई थी
और आज तो वह आनन्द हृदय के चारों किनारों पर लहरा रहा है ।
क्योंकि,

गत चातुर्मास में पूज्यश्री की अत्यन्त ही सुन्दर निकटता का आनन्द लिया...
जीवन में सर्व प्रथम बार ही

पूज्यश्री का सम्पर्क हुआ, परन्तु ठोस हुआ ।

जब जब भी पूज्यश्री की वाचना में गया,
मेरे परम तारणहार पूज्य गुरुदेवश्री के स्मरण में
तन्मय हुआ हूँ ।

पूज्य गुरुदेवश्री के जीवन में तीन तत्त्व स्पष्टः
दृष्टिगोचर होते थे -

(१) श्री नवकार महामंत्र की साधना

(२) साधु सामाचारी (व्यवहार धर्म की चुस्तता) की आराधना

(३) जिन-भक्ति की उपासना

पूज्यश्री की निश्रा में कभी भी कोई सामूहिक आयोजन हो चाहे वह
व्याख्यान का

वाचना का

विशेष बैठक का हो

पूज्यश्री १२ नवकार गिनने की उद्घोषणा अवश्य करते और उस समय उपस्थित सब मैत्रीभाव के मण्डप के नीचे बारह नवकार गिनने लग जाते ।

मैत्रीभाव से वासित हृदय से गिने जाते इन श्री नवकार महामन्त्र के प्रभाव से ही

सम्पूर्ण चातुर्मास एकता एवं एकसंपितामय व्यतीत हुआ, ऐसा प्रमाण युक्त अनुमान लगाया जा सकता है ।

श्री नमस्कार महामंत्र के प्रति पूज्यश्री का विशेष लगाव बना रहता है, जिसका उदाहरण ये है कि पूज्यश्री के वासक्षेप के लिए लम्बी कतार के रूप में जनता उमड़ पड़ती है

परन्तु पूज्यश्री ने नियम बना लिया है कि,

‘जो नित्य पांच बंधी नवकारवाली गिनेंगे उन्हें ही वासक्षेप डालेंगे’, अतः श्री नवकार का जाप करनेवाला अत्यन्त बड़ा वर्ग तैयार हो गया है ।

विश्वशान्ति के लिए यह कितना बड़ा परिबल गिना जा सके ! और श्री नमस्कार महामंत्र से सम्बन्धित वाचना में भी जब-तब आलम्बन एवं प्रेरक उपदेश देते देखा है ।

सामाचारी के सम्बन्ध में भी पूज्यश्री को जब-जब अवसर मिलता तब-तब उसका पक्षपात किये बिना नहीं रहते थे ।

सामाचारी स्वरूप व्यवहार धर्म पर ही निश्चय धर्म टिक सकता है ।

यह बात वे बार-बार दोहराते, इतना ही नहीं,

प्लास्टिक के घड़े या प्लास्टिक के पातरों आदि के द्वारा सामाचारी में प्रविष्ट विकृति के प्रति कभी-कभी जोरदार कटाक्ष करते हुए सुना है ।

मुझे अच्छी तरह ध्यान है कि एक बार तो

दोनों हाथों में दो घड़े लेकर पानी लाने की विकृत प्रथा को आक्रमक रूप में निकृष्ट बताई थी ।

इतना ही नहीं; अनेक व्यक्तियों को ऐसा नहीं करने की प्रतिज्ञा भी दी थी ।

पंचाचारमय साधु-सामाचारी को सुरक्षित रखकर ही

अन्य प्रवृत्तियों को महत्त्व देने के प्रति पूज्यश्री बार बार प्रेरित करते थे ।

जिन-भक्ति तो मानो

पूज्यश्री का जीवन पर्याय बन गया हो ऐसा प्रतीत होता है ।

परमात्म-तत्त्व जड़ की तरह निरा निष्क्रिय तत्त्व नहीं है ।

वे वीतराग तो हैं ही, परन्तु साथ ही साथ करुणा-रहित है, ऐसा नहीं है ।

करुणावान् एवं कृपालु भी इतने ही हैं

और इसलिए सक्रिय हैं - इस बात को

पौनः पुन्य से घूटते अपने जीवन की घटती प्रत्येक घटमाल में परमात्मा की सक्रियता निहित है ।

जिस प्रकार पुत्र की प्रत्येक गति-विधि में मां का हस्तक्षेप है इस प्रकार अपने जीवन में परमात्मा का अस्तित्व है ।

नाम - स्थापना - द्रव्य - भाव के रूप में परमात्मा सदा विद्यमान हैं ।

‘नाम ग्रहंता आवी मिले, मन भीतर भगवान्’

यह पूज्यश्री का मनमाना विशेष नारा गिना जाता है ।

नाम के रूप में परमात्मा आज भी विद्यमान हैं ।

परमात्मा का नाम स्वयं मन्त्र-तुल्य है ।

आपकी कोई भी समस्या परमात्मा के नाम से निर्मूल हो सकती है ।

पूज्यश्री की वाचना में प्रतिदिन यह बात तो आये आये और आये ही ।

अतः जिस वस्तु का हमें हमारे पूज्य तारणहार गुरुदेवश्री के जीवन में निरन्तर अनुभव होता था

वह बात यहां भी मिलती होने से अधिक आकर्षण होता था ।

इसके अतिरिक्त भी पूज्यश्री की वाचना में अनेक केन्द्रीभूत तत्त्व थे ।

वाचना के आरम्भ बिन्दु में स्वयं परमात्मा, गणधर भगवन् और उनकी परम्परा को

आज तक लाने वाले आचार्य देव आदि पूज्य तत्त्वों का स्मरण नित्य रहता था ।

अतः अपनी बात का अनुसन्धान स्वयं परमात्मा हैं यह बात वे ‘डायरेक्टली’ अथवा ‘इन्डायरेक्टली’ पुष्ट करते थे ।

वाचना में नई-नई अनुप्रेक्षा की स्फुरणा जब स्फुट होती

तब मान-कषाय का तनिक भी आंठ देखने को नहीं मिलता था प्रभुने कृपा करके मुझे यह सुझाया,

इस तरह बताया यह कहकर स्वयं को
 परमात्मा से सतत अनुगृहीत प्रदर्शित करते ।
 पूज्यश्री की वाचना की सर्वाधिक ध्यानाकर्षक बात यह देखने को मिलती
 कि कोई भी बात बिना प्रमाण के नहीं रखते ।
 श्री भगवतीजी, श्री पन्नवणाजी, श्री ज्ञानसार, श्री योगसार,
 श्री अध्यात्मसार की या भक्तामर, कल्याणमन्दिर की पंक्तियाँ
 देकर ही सन्तोष मानते...
 इससे भी विशेष बात यह रहती कि
 संस्कृत-प्राकृत के पाठों को गुजराती भाषा के स्तवनों आदिमें से भी
 प्रस्तुत किये बिना नहीं रहते थे ।
 इसके लिए श्री देवचन्द्रजी म., श्री आनंदधनजी म.,
 श्री यशोविजयजी म. की
 रचनाएं पूज्यश्री को विशेष पसन्द थी ।
 इसके अतिरिक्त जिस ग्रन्थ की वाचना देते
 उस ग्रन्थ के स्वयिता के प्रति पूज्यश्री
 भारी बहुमान एवं आदर बारबार व्यक्त करते थे ।
 उसके पीछे पूज्यश्री की मान्यता थी कि उससे अपना
 क्षयोपशम बढ़ता है ।
 वाचना में पूज्यश्री की दृष्टि अत्यन्त ही विचक्षण रहती और
 वाणी जल के प्रवाह की तरह सरल एवं सरस बहती...
 हमें यही लगता कि बस मानो बहते रहें,
 बहते ही रहें ।
 पूज्यश्री की वाचना को शब्दस्थ एवं पुस्तकस्थ करने का कार्य
 करनेवाले आत्मीय मित्र
 पंन्यास श्री मुक्तिचन्द्रविजयजी म.
 पंन्यासश्री मुनिचन्द्रविजयजी म. का बहुत-बहुत आभार...
 खंत एवं घोर श्रममय
 इस कार्य को करते हुए दोनों मित्रों को आंखों से देखा है
 एक पत्रकार की अपेक्षा भी अधिक तीव्रता से लिखना
 और उसके बाद तुरन्त उसका संमार्जन एवं
 'प्रेस कोपी' करानी यह

कितनी स्फूर्ति, ताजगी एवं अप्रमत्तता का कार्य है,

यह तो देखनेवाले को ही ध्यान आता है...

ऐसे साहित्य-प्रकाशन के कारण दोनों मित्र
धन्यवाद के पात्र हैं ।

यह बताकर मैं एक मित्र की अदा से

उन दोनों को बिना मांगी सलाह करने की चेष्टा करना

रोक नहीं सकता कि

पुस्तक का नाम

‘कहे कलापूर्णसूरि’ के बजाय

‘बहे कलापूर्णसूरि’ अधिक संगत लगता ।

कहने और ‘बहने’ के बीच बहुत अन्तर है ।

कहने में तन्मयता / निमग्नता आवश्यक नहीं है,

बहने में दोनों अनिवार्य हैं ।

पूज्यश्री की वाचना में ‘कथन’ की अपेक्षा ‘वहन’ का अनुभव विशेष है ।

काश ! मेरा सुझाव सफल हो ।

मुझे प्रस्तावना लिखने का अवसर दिया गया तब मैं

प्रसन्न हुआ, हर्षित हुआ ।

इससे मेरा वाचना-श्रवण सानुबन्ध बना ।

यह उपकार किया पंन्यास-बन्धुओं ने...

अन्त में उपकृत, कृत-कृत्य बनकर मैं इतना ही कहूँगा... कि

‘यह अवसर बार बार आये ।’



प्रीतम छवि नैनन बसी (गुजराती आवृत्ति में से)

पूज्यपाद, अध्यात्मयोगी आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय कलापूर्णसूरीश्वरजी महाराज साहिब को श्रवण करते समय सुनने का कम, देखने का अधिक होता है । 'परमात्मा ये रहे' कहते समय उनका हाथ हवा में अद्धर हिलता है तब देखने में भी मधुर असमंजस यह होता है कि आप उनकी उस अंग-भंगिमा को देखें, मुंह पर छये स्मित को देखें या दो नैनों को देखें, हम अपनी आंखों को कहां केन्द्रित करें ?

सद्गुरु के नैन... जहां झलकता है, परमात्मा के प्रति अगाध आदर । कवि रहीम का स्मरण हो आता है - 'प्रीतम छवि नैनन बसी, पर छवि कहां समाय ।' आंखों में परमात्मा ही छा गये हैं, वहां अन्य क्या समा सकता है ? अन्य की छवि कैसे प्रकट हो सकती है ?

और सद्गुरु की यह मोहक अंग-भंगिमा, हवा में लहरता-झूलता हाथ, संकेत में पेक कर के सद्गुरु क्या परम चेतना का रहस्य नहीं पकड़ाते ?

और यह निर्मल स्मित, क्वचित् मुस्कान, कभी मुक्त हास्य, परमात्मा को प्राप्त किये उसकी रस-मस्ती उभर आई है स्मित के रूप में ।

और इसीलिए भावक असमंजस में है कि वह अपनी आंखों को केन्द्रित कहां करे ?

यद्यपि, पता है कि सद्गुरु का सम्पूर्ण अस्तित्व ही द्वार है, जहां से परमात्मा के साथ सम्पर्क हो सकता है ।

गुरु-चेतना के द्वारा परम चेतना का स्पर्श ।

सद्गुरु हैं द्वार, वातायन, खिड़की ।

एक द्वार की या एक खिड़की की पहचान क्या हो सकती है ? शीशम का या सेवन का लकड़ा काम में लिया हो वह खिड़की, ऐसी कोई व्याख्या नहीं हो सकती । छत के नीचे और दीवारों के मध्य हम हों तब असीम अवकाश के साथ जिसके द्वारा संबद्ध हो सकें वह खिड़की । सद्गुरु हमारे लिए एक मात्र खिड़की हैं प्रभु के साथ संबद्ध होने की; नैनों के द्वारा, अंग-

भंगिमा के द्वारा, स्मित के द्वारा, उपनिषदों के द्वारा ।

‘ललित विस्तरा’ तुल्य भक्ति की प्रबलतम ऊंचाई का ग्रन्थ हो और जिसकी प्रत्येक पंक्ति को अनुभवी पुरुष खोलते हों तब भावकों के लिए तो उत्सव-उत्सव हो जाये ।

परन्तु पहले कहा उस तरह साहबजी को देखने जाते हुए सुनना चूक गये व्यक्तियों के लिए और इस भक्ति पर्व को चूक गये व्यक्तियों के लिए है प्रस्तुत पुस्तक । पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ पर अथवा यों कहें कि उसकी प्रत्येक पंक्ति में है परम प्रिय की रसमय बातें । एक गंगा बह रही है और आप उसके तट पर बैठ कर उसके सुमधुर जल का आस्वादन कर रहे हैं । एक अनुभव । आप आचार्य भगवंत की उंगली पकड़कर प्रभु की दिशा की ओर जा रहे हैं । वैसा प्रतीत होता है... अनुभव... जो आपको सराबोर कर दे । पढ़ने का क्रम ऐसा रहेगा । दो-चार पंक्तियां अथवा एक-आध पृष्ठ पढ़ा गया । अब नेत्र बंध हैं । आप उन शब्दों के द्वारा स्वयं को भरा जाता, बदलता अनुभव करते हैं । यहां पढ़ने का अल्प होगा, अनुभव करने का अधिक रहेगा ।

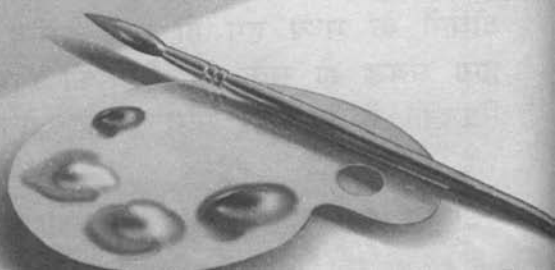
कवि मनोज खंडेरिया की काव्य-पंक्तियां हम गुनगुनाते होंगे - ‘मने सद्भाग्य के शब्दो मल्या, तारे मुलक जावा ।’ अन्यथा तो केवल अपने चरणों पर भरोसा रखकर चलें तो युग व्यतीत हो जायें और प्रभु का प्रदेश उतना ही दूर हो ।

प्रभु के प्रदेश की ओर ले जाने वाले सशक्त शब्दों से सभर पुस्तक आपके हाथों में है । अब आप हैं और यह पुस्तक है । मैं बीच में से बिदा लेता हूं । आप बहें इन शब्दों में, डूबें ।

- आचार्य यशोविजयसूरि

आचार्यश्री ॐकारसूरि आराधना भवन,
वावपथक वाडी, दशा पोरवाल सोसायटी, अहमदाबाद.

पोष शुक्ला ५, वि. संवत् २०५७



सम्पादकीय (गुजराती प्रथम आवृत्ति में से)

मृत्यु के बाद तो अनेक व्यक्ति महान् बन जाते हैं या दन्तकथा रूप हो जाते हैं, परन्तु कतिपय व्यक्ति तो जीवित अवस्था में ही दन्तकथा के रूप में हो जाते हैं, वे जग-बत्तीसी पर गाये जाते हैं ।

मानवजाति इतनी अभिमानी होती है कि वह किसी विद्यमान व्यक्ति के गुण देख नहीं सकती । हां, मृत्यु के बाद अवश्य कदर करेगी, गुणानुवाद भी अवश्य करेगी, परन्तु जीवित व्यक्ति की नहीं । मनष्य के दो कार्य हैं - जीवित व्यक्ति की निन्दा करना और मृत व्यक्ति की प्रशंसा करना । 'मरणान्तानि वैराणि ।' (वैर मृत्यु तक ही रहता है) इसीलिए ही शायद कहा गया होगा ।

परन्तु इसमें अपवाद है : अध्यात्मयोगी पूज्य गुरुदेव आचार्यश्री विजयकलापूर्णसूरीश्वरजी महाराज, जो स्वयं की विद्यमानता में ही दन्तकथा रूप बन गये हैं, लोगों के द्वारा अपूर्व पूज्यता प्राप्त किये हुए हैं ।

प्रवचन-प्रभावक पूज्य आचार्यश्री विजयरत्नसुन्दरसूरीश्वरजी महाराज ने पूज्यश्री के लिए सूरत-नवसारी आदि स्थानों पर कहे गये शब्द आज भी मन में गूँज रहे हैं ।

'पूज्यश्री में पात्रता-वैभव, पुन्य-वैभव और प्रज्ञा-वैभव - इन तीनों का उत्कृष्ट रूप में सुभग समन्वय हो चुका है, जो कभी कभी ही, कुछ ही व्यक्तियों में देखने को मिलती विरल घटना है ।

हमारा दुर्भाग्य है कि विद्यमान व्यक्ति की हम कदर कर नहीं सकते । समकालीन व्यक्ति की कदर अत्यन्त ही कम देखने को मिलती है । उत्कृष्ट शुद्धि एवं उत्कृष्ट पुन्य के स्वामी महापुरुष हमारे बीच बैठे हैं जो हमारा अहोभाग्य है ।'

प्रवचन-प्रभावक पूज्य आचार्यश्री विजयहेमरत्नसूरीश्वरजी महाराज ने थाणा, मुलुण्ड आदि स्थानों पर कहा था, 'वक्तृत्व, विद्वत्ता आदि शक्ति के कारण मानव-मेदनी एकत्रित होती हो, ऐसे व्यक्ति अनेक देखे, परन्तु विशिष्ट प्रकार की वक्तृत्व शक्ति के बिना एकमात्र प्रभु-भक्ति के प्रभाव से लोगों में छा जानेवाली यही विभूति देखने को मिली ।

जिनके दर्शनार्थ लोग तीन-तीन, चार-चार घंटों तक कतार

में लगे रहें, यह प्रथम बार देखने को मिला ।’

श्रेणिकभाई अपने वक्तव्यों में अनेक बार कहते हैं, ‘मुझे जैन धर्म में प्रवेश करानेवाले ये पूज्यश्री हैं । पूज्यश्री की निश्रा में प्रथम बार वि.सं. २०३९ में संवत्सरी प्रतिक्रमण किया । पूज्यश्री के पास नौ तत्त्वों आदि के पाठ सीखने को मिले, जो मेरे जीवन का धन्यतम अवसर था ।’

ऐसे तो अनेक अवतरण दिये जा सकते हैं जो यहां देना सम्भव नहीं है ।

निर्मल एवं निष्कपट हृदय से की जानेवाली भगवान की भक्ति का क्या प्रभाव हो सकता है ? इसका उत्तम उदाहरण पूज्यश्री हैं । पूज्यश्री सही अर्थ में परमात्मा के परम भक्त हैं, जिनकी चेतना निरन्तर परम-चेतना को मिलने के लिए तरस रही हैं, जिनके उपयोग में निरन्तर (नींद में भी) प्रभु रमण कर रहे हैं, जो सर्वत्र प्रभु को देख रहे हैं ।

आनंदघनजी, यशोविजयजी, देवचन्द्रजी या चिदानंदजी आदि प्रभु भक्त महात्माओं को तो हमने देखे नहीं हैं परन्तु ये प्रभु-भक्त महात्मा तो आज हमारे बीच हैं, यह हमारा अल्प पुन्य नहीं है ।

प्रभु-भक्त कैसा होता है ? उसके लक्षण गीता में उत्तम प्रकार से बताये हैं - समस्त जीवों का अद्वेषी, मित्र, सबके प्रति करुणामय, निर्मम, निरहंकार, सुख-दुःख में समान वृत्ति वाला, जिससे लोग ऊबे नहीं और जो लोगों से ऊबे नहीं, हर्ष-शोक-भय एवं उद्वेग-रहित, निरपेक्ष, पवित्र, दक्ष, उदासीन, प्रेम-घृणासे परे रहनेवाला, व्यथा-रहित, समस्त आरम्भों का परित्याग करने वाला, प्रसन्न या अप्रसन्न नहीं होने वाला, शोक या इच्छा नहीं करने वाला, शुभ-अशुभ कर्मों का त्यागी, मित्र या शत्रु - मान या अपमान - ठण्डी या गर्मी - तथा सुख-दुःख में समान वृत्ति रखनेवाला, संग-रहित, निन्दा या स्तुति में समान वृत्ति धारण करने वाला, मौन, चाहे जिस पदार्थ से सन्तुष्ट, घर-रहित, स्थिर बुद्धिवाला एवं भक्तिमय व्यक्ति मुझे (श्री कृष्ण को) अत्यन्त ही प्रिय लगता है ।

अद्वेषा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।

निर्ममो निरहंकारः, सम-सुख-दुःखः क्षमी

॥ १४ ॥

यस्मान्नोद्विजते लोको, लोकान्नोद्विजते च यः ।
 हर्षामर्षभयोद्वेगैः मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥ १५ ॥
 अनपेक्षः शुचिर्दक्षः उदासीनो गतव्यथः ।
 सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १६ ॥
 यो न हृष्यति न द्वेष्टि, न शोचति न काङ्क्षति ।
 शुभाऽशुभपरित्यागी, भक्तिमान् यः स मे प्रियः ॥ १७ ॥
 समः शत्रौ च मित्रे च, तथा मानाऽपमानयोः ।
 शीतोष्ण-सुख-दुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥ १८ ॥
 तुल्यनिन्दास्तुतिमौनी सन्तुष्टो येन केनचित् ।
 अनिकेतः स्थिरमतिः भक्तिमान् मे प्रियो नरः ॥ १९ ॥
 ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
 श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥ २० ॥

- गीता, अध्याय - १२

भक्त के प्रायः ये सभी गुण पूज्यश्री में हमें दृष्टिगोचर होंगे ।
 ऐसे प्रभु-भक्त के श्रीमुख से निकले हुए उद्गार कितने महत्त्वपूर्ण
 होंगे ? पूर्व प्रकाशित दो पुस्तकों के अभिप्रायों से इसका ध्यान आता है ।
 इस पुस्तक का आमुख लिखनेवाले प्रवचन-प्रभावक, योग-
 मार्ग के रसिक पूज्य आचार्यश्री यशोविजयसूरिजी महाराज, प्रवचन-
 प्रभावक बन्धु युगल पूज्य आचार्यश्री जिनचन्द्रसागरसूरिजी म., पूज्य
 आचार्य श्री हेमचन्द्रसागरसूरिजी म. से हम अनुगृहीत हैं ।

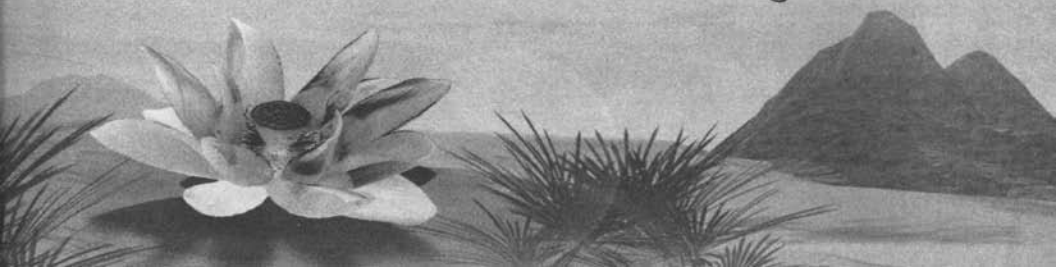
इन तीनों प्रकाशनों के सम्बन्ध में मूल्यवान् मार्ग-दर्शन-दाता
 विद्वद्भ्यः पूज्य पंन्यास प्रवरश्री कल्पतरुविजयजी गणिवर के हम ऋणी हैं ।

इस अवतरण-सम्पादन के कार्य में कहीं भी पूज्यश्री के आशय
 के विरुद्ध आलेखन हुआ हो तो मिच्छामि दुक्कडं की याचना करते हैं ।

अन्य दो पुस्तकों की तरह इस पुस्तक को भी जिज्ञासु पाठकगण
 आन्तरिक भावना से पसन्द करेंगे और लाभान्वित होंगे ऐसी श्रद्धा रखते हैं ।

- पंन्यास मुक्तिचन्द्रविजय गणि

- गणि मुनिचन्द्रविजय



सहायकों को धन्यवाद...

श्री जैन तपागच्छ धर्मशाला, फलोदी.....	६२५
श्री फलोदी चातुर्मास-व्यवस्था समिति, फलोदी (ज्ञानद्रव्य)	
कवरलाल चेरीटेबल ट्रस्ट, चेन्नई	१२५
M. M. Exporters (ह. : रमेश मुथा, चेन्नई)	१२५
कलापूर्ण जैन आराधक मंडल, चेन्नई	५०
कोचर टेक्स्टाइल्स, फलोदी, चेन्नई	४०
एस. देवराजजी, चेन्नई	४०
जतनाबाई पारसमलजी लुक्कड़	४०
स्व. श्रीमती चंपाबाई	
(W/o. श्री मुरलीधरजी मालू, चेन्नई - धोबीपेट, फलोदी) .	४०
स्व. श्रीमती पानीबाई	
(W/o. श्री उदयराजजी बरड़िया, चेन्नई - टी.नगर, फलोदी)	४०
श्रीमान् कल्याणमलजी हीरालालजी वैद, चेन्नई, फलोदी ...	४०
चेन्नई - हस्तिनापुर यात्रिक संघ, चेन्नई	२५
सार्धर्मिक बंधु, चेन्नई	२५
गिरधारीलालजी कोचर, चेन्नई	२५
B. F. जसराज लुक्कड़ एन्ड सन्स, मन्नारगुडी, फलोदी	
(स्व. पू. आ. श्री की निश्रा में १२१ पू. साधु-साध्वीओं	
के साथ शत्रुंजय डेम से शत्रुंजय के छ'री पालक संघ	
(१९-५-२००० से २४-५-२०००) की स्मृति में)	२५
सुजानमलजी अशोककुमारजी लुक्कड़, चेन्नई-फलोदी	२५
संतोषजी सोनी	१२

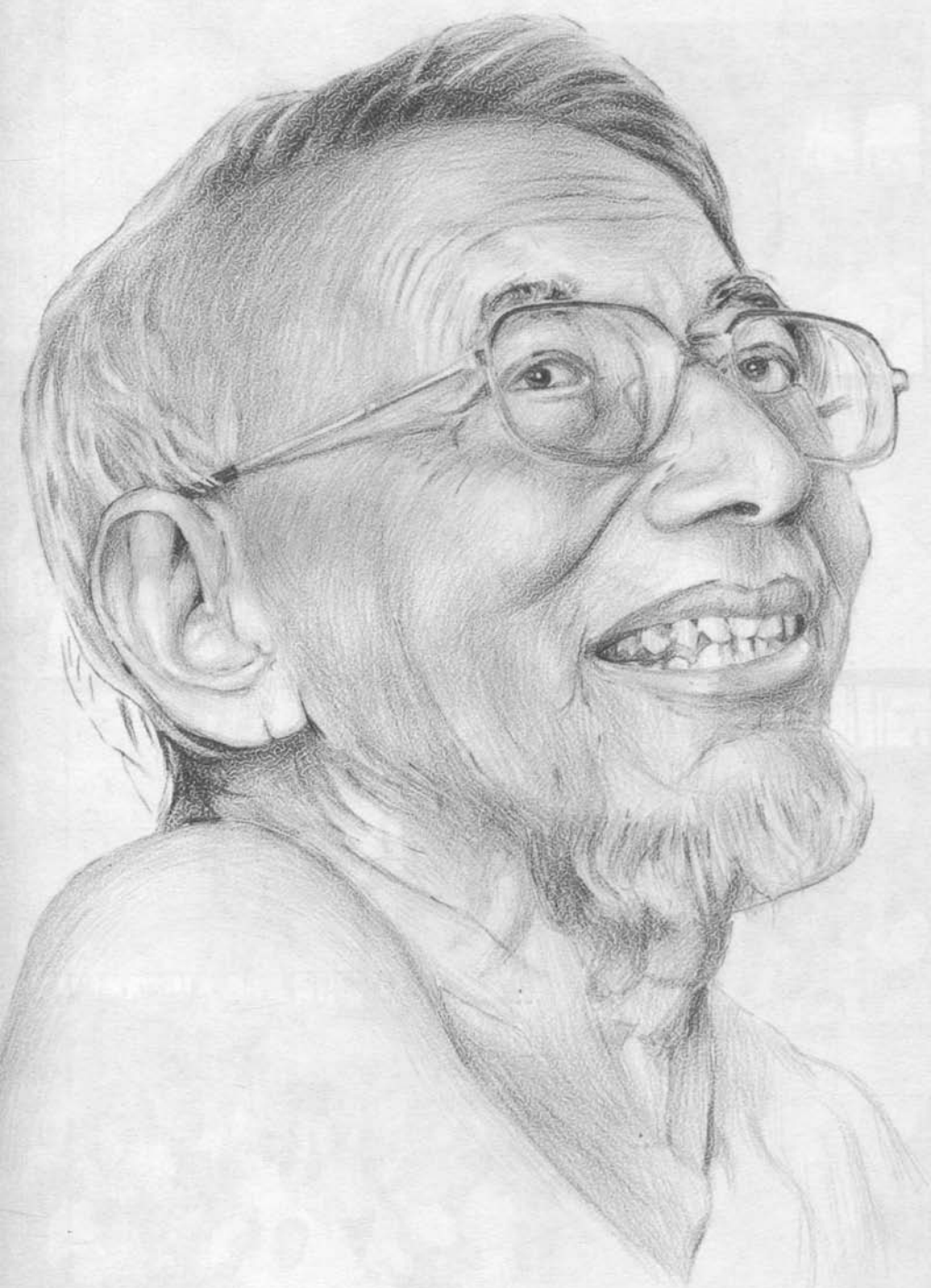
कच्छ वागड़ देशोद्धारक अध्यात्मयोगी पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजयकलापूर्णसूरीश्वरजी म.सा. का वि.सं. २०५७ का अंतिम चातुर्मास जन्मभूमि फलोदी में हुआ। पूज्यश्री के असीम उपकारों को हम कभी भूल नहीं सकते।

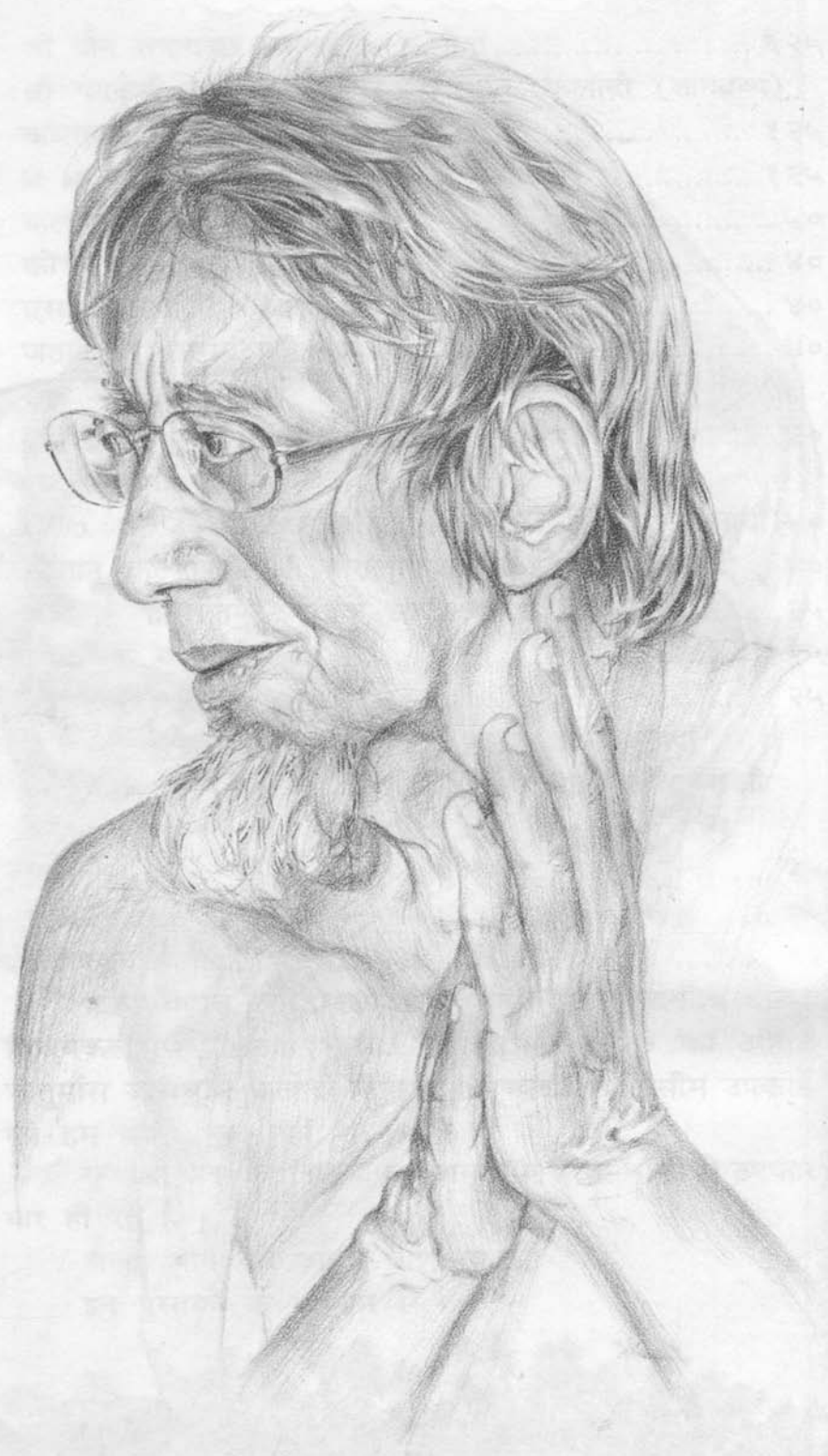
पूज्यश्री सदा के लिए अपनी अमृतमय तत्त्व-वाणी से उपकार कर ही रहे हैं।

चलो, पान करें अमृत-वाणी का...

इन पुस्तकों के माध्यम से।

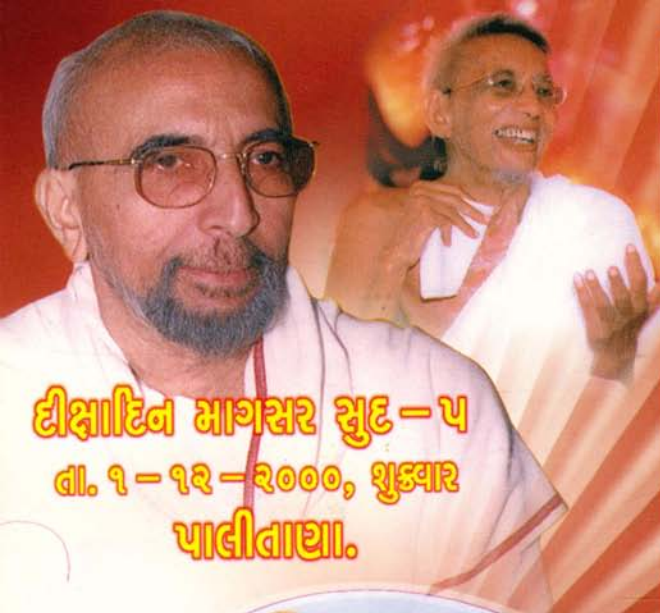




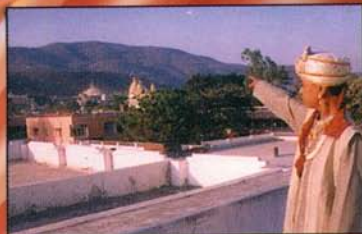


રવિવારીય સામુદાયિક પ્રવચન - પાલીતાણા.





દીક્ષાદિન માગસર સુદ - ૫
તા. ૧ - ૧૨ - ૨૦૦૦, શુક્રવાર
પાલીતાણા.



પંન્યાસ - ગણિ - પદ - પ્રદાન તથા ૧૪ દીક્ષા - પ્રસંગ



मनफरा - (कच्छ - वागड़) जिनालय



भूकंप के बाद पूर्णरूप से ध्वस्त उसी जिनालय की तस्वीर ।



ऐसे सैकड़ों गांव, मंदिर आदि कच्छ - गुजरात में ध्वस्त हो गये है ।

भूकंप : दि. 26-1-2001, माघ सुद-२, शुक्रवार, सुबह : 8-45

‘मुख्येण जोयणाओ जोगो सब्बोवि धम्मवावरो ।’

- योगविशिका

हमारे आयोजित होने वाले अनुष्ठान महान् योग हैं, क्योंकि वे मोक्ष के साथ जोड़ते हैं । ‘मोक्ष के साथ जोड़ने वाले योग होते हैं ।’ इस प्रकार की योग की व्याख्या से अजैन लोग भी चकित हो जाते हैं । इस व्याख्या का कौन इनकार कर सकता है ?

पतंजलि की व्याख्या (‘योगश्चित्तवृत्ति-निरोधः) में शुभ वृत्ति का भी निरोध हो गया है, अतः दोष है ।

* किसी भी शक्ति का परिमित उपयोग होना चाहिये । शक्ति नष्ट न हों । आज ऐसे अनेक वक्ता हैं जो युवावस्था में अत्यन्त ही जोश से बोले थे । वृद्धावस्था आने पर पश्चात्ताप करते हैं । योग हमें सन्तुलित जीवन सिखाता है ।

* ध्यान करने की वस्तु नहीं है । ध्यान के लिये भूमिका उत्पन्न करनी है । भूमिका तैयार होने पर ध्यान अनायास ही उत्पन्न हो जायेगा । ध्यान के लिए अलग प्रयत्न करने की अधिक आवश्यकता नहीं है । आप केवल भूमिका बनायें, चित्त को दर्पण तुल्य बनायें । प्रभु रूप चन्द्रमा स्वयं चमकेंगे ।

* चैत्यवन्दन महान् योग है, जिसमें समस्त योगों का समावेश है । इसी लिए संस्कृत आदि सिखाने से पूर्व चैत्यवन्दन आदि भाष्य सिखाये जाते हैं ।

जो व्यक्ति यह सीखे बिना ही न्याय आदि के अध्ययन में लगे उनमें से अनेक उस मूर्ख नैयायिक जैसे बने कि जो आधारता की, आधेयता की जांच करने के लिए घी का वर्तन ही उल्टा कर देते हैं ।

* हंस एवं परम हंस नामक शिष्य मुनि की अकाल मृत्यु से विचलित हो गये थे । उन्हें (हरिभद्रसूरिजी को) किसी ने कहा - ‘आप शिष्यों की बात छोड़ दें, ग्रन्थों का सृजन करें । आपके भीतर यह शक्ति है तो उसे प्रकट करें । इसके द्वारा महान् उपकार होगा । तत्पश्चात् वे ग्रन्थ-सृजन के पीछे ऐसे लग गये कि जीवन के अन्त तक पीछे मुड़कर देखा नहीं । १४४४ ग्रन्थों की रचना करके ही रुके ।

ये भगवान तो दादा हैं, करुणा के सागर हैं। पिता तो थप्पड़ भी लगा दें, परन्तु 'दादा' तो पौत्र को गोद में ही बिठाते हैं। हम यहां आदिनाथ भगवान को दादा ही कहते हैं न ?

* ऐसे भगवान की आशातना संसार बढ़ाती है, परन्तु उनकी भक्ति संसार से पार लगाती है।

* ऐसे भगवान को याद किये बिना, उनका चैत्यवन्दन किये बिना आप पच्चक्खाण भी पार नहीं सकते, आहार भी ग्रहण नहीं कर सकते। उन भगवान की महिमा कितनी ? परन्तु हम यह समझने के लिए कदापि तैयार नहीं हैं।

* मैं तो यहां तक कहूंगा कि यह संसार तरने के लिए भावित किया हुआ एक श्लोक ही पर्याप्त है। हम सब की वृद्धावस्था कभी न कभी तो आयेगी ही। कभी तो यह सब भूल ही जायेंगे, तब भावित किया हुआ एक श्लोक ही काम आयेगा।

इसी अर्थ में ही उपा. यशोविजयजी ने कहा है -

निर्वाणपदमप्येकं, भाव्यते यन्मुहुर्मुहुः।

आप चैत्यवन्दन तो करते ही हैं, पच्चक्खाण पारते ही हैं, प्रतिक्रमण आदि क्रिया करते ही हैं, व्यवस्था ही ऐसी है कि करना ही पड़ता है। अब इस क्रिया में उपयोग जोड़ो तो आपका जाता है क्या ? समय तो वैसे ही जाने वाला ही है। केवल आपका उपयोग वहां जोड़ने की आवश्यकता है। हम मन को वहां क्यों नहीं जोड़ते ? क्या अधिक कष्ट होता है ? हां, वहां मन को कष्ट होता है। वहां मानसिक वीर्य की आवश्यकता पड़ती है। शारीरिक वीर्य की तरह मानसिक वीर्य भी चाहिये, तो ही सूत्रों आदि में मन लगा सकते हैं। शारीरिक व्यायाम में शारीरिक कष्ट होता है, उस प्रकार मानसिक व्यायाम में भी भिन्न प्रकार का कष्ट पड़ता है।

* सिद्धार्थ गणि बौद्ध-दर्शन का अध्ययन करने के लिए गये थे। वहां जाकर वे विचलित हो गये।

आज भी ऐसा होता है। विपश्यना की ११ दिनों की शिविर करके आत्मानुभूति हो जाने का दावा करने वाले कम नहीं हैं। ऐसे अनेक व्यक्ति आत्मानुभूति के भ्रम में पूजा आदि सब छोड़कर पथ-भ्रष्ट होते हैं।

* सिद्धार्थि को बुद्ध महा करुणामय प्रतीत हुए । अरिहंत केवल वीतराग प्रतीत हुए । आज भी अनेक व्यक्तियों को भगवान की वीतरागता का ख्याल है, परन्तु कारुणिकता का ख्याल नहीं है ।

अनेक व्यक्ति कहते हैं - ईसामसीह दयालू हैं। वे सबके पापों का नाश कर देते हैं।

यह बात सर्वथा मिथ्या नहीं है, परन्तु किस प्रकार पापों का नाश होता है, यह वे समझते नहीं हैं ।

हम भी मानते हैं -

‘एसो पंच नमस्कारो सब्ब पावप्पणासणो’

हिन्दू लोग भी मानते हैं -

सर्वं धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज ।

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो, मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

- गीता

भगवान की शक्ति इन पापों का नाश करते हैं । यह सर्व प्रथम स्वीकार करना पड़ेगा, मात्र अपनी शक्ति नहीं ।

इक्कीस-इक्कीस वक्त तक बौद्ध-दर्शन की ओर आकर्षित होने वाले सिद्धार्थ को जैन-दर्शन में स्थिर करनेवाला यह 'ललित विस्तार' है। उन्होंने स्वयं ने ही उपमिति में कहा है -

नमोऽस्तु हरिभद्राय, तस्मै प्रवरसूरये ।

मदर्थं निर्मिता येन, वृत्तिर्ललितविस्तरा ॥

इस 'ललित विस्तरा' पर पंजिका के रचयिता श्री मुनिचन्द्र-सूरिजी हैं । मुनिचन्द्रसूरिजी अर्थात् वादिदेवसूरि के गुरु ।

वादिदेवसूरि ने दिगम्बराचार्य कुमुदचन्द्र को पराजित किया। इसी कारण से आज गुजरात में दिगम्बर नहीं दिखाई देते। ऐसे महावादी देवसुरि को तैयार करने वाले मुनिचन्द्रसूरिजी कैसे विद्वान होंगे ?

टीकाकार कहते हैं - गणधर रचित सूत्रों के सभी अर्थ, सभी रहस्य खोलने की मेरी शक्ति नहीं है, क्योंकि भगवान की वाणी में तो अनन्त अर्थ छिपे होते हैं। बड़े-बड़े ज्ञानी भी वे अर्थ नहीं बता सकते, क्योंकि वाणी कमबद्ध बोली जा सकती है, आयुष्य मर्यादित होता है।

✦ ✦ ✦



२०-७-२०००, गुरुवार

श्रा. कृष्णा-४

सामूहिक वाचना (समस्त समुदायों के पूज्यों का आगमन)

* मोहराजा के आक्रमणों से त्रस्त संसार में भटकते हमको कैसे मार्ग मिलता यदि भगवान ने तीर्थ की स्थापना करके मार्ग नहीं बताया होता ? दवाई नहीं होती तो रोगी का क्या होता ? यह शासन नहीं होता तो हमारा क्या होता ? हम सभी रोगी हैं। यह शासन उसकी औषधि है। धन्वंतरि वैद्य की अपेक्षा भी भगवान महान् वैद्य हैं, क्योंकि आन्तर रोग की औषधि धन्वंतरि वैद्य के पास भी नहीं है। इस भाव औषधि से भाव आरोग्य प्राप्त होता है।

गणधर ऐसे आरोग्य के लिए ही भगवान के समक्ष प्रार्थना करते हैं।

‘आरुग्ग बोहिलाभं’

- लोगस

* दर्पण की इच्छा हो या न हो परन्तु वह यदि स्वच्छ हो तो प्रतिबिम्ब पड़ेगा ही। हमारा मन स्वच्छ बन जाये तो भगवान

चाहे जितना महान विद्वान पण्डित हो, परन्तु जब तक वह भावनाओं से भावित नहीं बनता, तब तक वह मोह के आक्रमण से बच नहीं सकता । इसीलिए भावनाओं को धर्म-वृक्ष का मूल कहा है ।

हम सब तीसरे आवश्यक के काउस्सग में जो गाथा बोलते हैं -

‘सयणासणन्न-पाणे चेइअ जइ सिज्जकाय-उच्चारे ।

समिइ भावणा गुत्ति, वितहायरणे अ अइआरो ॥’

ज्ञानियों को हमारे प्रति परम दया है । वे सतत इच्छा करते हैं कि हम किस प्रकार निर्मल रहें ? इस गाथा में समिति के साथ भावना आई कि नहीं ?

भावना अत्यन्त गहरा शब्द है । ‘शान्त सुधारस’ ग्रन्थ का प्रथम श्लोक ही देखें । आपको उसकी महिमा ज्ञात होगी ।

सर्वोत्तम साधक साधु है । यदि वह आत्म-साधना नहीं करे तो अन्य कौन करेगा ? यह लक्ष्य तो होना ही चाहिये ।

इसके लिए भावना आवश्यक है, क्या यह लगता है ? जिस दिन भावना न भायें उस दिन अपराधी हों, ऐसा लगता है ? उपर्युक्त गाथा में आप देखते हैं - भावना नहीं भाने से अतिचार लगता है । दो-तीन वर्षों तक पू.पं. भद्रंकरविजयजी म. के पास रहने का अवसर आया । अनेक बार वे कहते - ‘सम्पूर्ण आगमों को सूत्र, अर्थ तदुभय से भावित बनाने की तो शक्ति नहीं है, परन्तु एक ‘नवकार’ को अच्छी तरह पकड़ लूं तो भी पर्याप्त है । इसीलिए मैंने नवकार पकड़ा । उनकी बातों से समझ में आया कि हम धूमधाम में पड़ गये । यह महत्त्व की वस्तु छूट गई ।

मन स्थिर नहीं रहने से कदाचित् ध्यान नहीं हो सके, परन्तु भावना तो भा सकते हैं न ? यद्यपि ध्यान भी ध्याने की वस्तु है । इसीलिए अतिचार में हम बोलते हैं -

‘आर्त्त-रौद्र ध्यान ध्याया, धर्म ध्यान-शुक्ल ध्यान ध्याया नहीं’

पू. धुरन्धरविजयजी म. - व्याख्यान में धर्म-ध्यान आ ही गया न ?

पूज्यश्री - आ जाये तो बलिहारी है ! उन्हें नमस्कार, परन्तु आ जाता है, ऐसा आपको लगता है ?

* 'मुझे दीक्षा लेनी है, परन्तु उसके साथ शत्रुता है वह मैं छोड़नेवाला नहीं हूँ।' यदि ऐसा कोई व्यक्ति कहे तो कृपया उसे दीक्षित न करें। जो दूसरों के साथ शत्रुता रखता है वह क्या आपके साथ नहीं रखेगा? दीर्घकाल तक चलनेवाला एक भी जीव के साथ वैरभाव अनन्तानुबन्धीकषाय की सूचना है।

दीक्षा ली तब सामायिक की प्रतिज्ञा ली थी। सामायिक से क्या तात्पर्य है? समस्त जीवों के साथ उपशमभाव। इसके बिना सामायिक कैसे आयेगी? इसके बिना संयम का पालन सम्भव ही नहीं है। 'सामायिक' शब्द अनेक विशिष्ट अर्थों से परिपूर्ण है।

श्रुत - सम्यक् - चारित्र - ये तीनों सामायिक एक सामायिक शब्द से अभिव्यक्त होते हैं।

साम, सम्म एवं सम - ये तीन प्रकार की सामायिक इसमें हैं।

* भगवान के साथ दो प्रकार की (एश्वर्योपासना एवं माधुर्योपासना) उपासना में भगवान के साथ जुड़ाव माधुर्योपासना से ही होता है। माता-पिता-भाई-बन्धु आदि समस्त सम्बन्धों का आरोप भगवान में करने से ही माधुर्योपासना उत्पन्न होती है।

* 'मैं जयणा नहीं रखूँ तो मेरा ही वध होगा।' ऐसा भाव रख कर समस्त जीवों के साथ एकता रखनी है।

'आचारांग' में उल्लेख है - 'तुमंसि नाम सच्चेव जं हंतव्वंति मन्नसि।' 'जिसे तू मारता है वह तू ही है।' आगे जाकर सिद्धों के साथ भी एकता रखनी है। जीवास्तिकाय पदार्थ को इस सन्दर्भ में समझना है। मात्र जानने के लिए जानना नहीं है।

छःओं जीवनिकाय का ज्ञान न हो, उन पर करुणा उत्पन्न न हो, उनकी जयणा जीवन में न आये तब तक साधु-जीवन कैसा? इसीलिए तो 'दशवैकालिक' के चार अध्ययन (जिनमें चौथा अध्ययन छः जीवनिकाय हैं) पढ़ने अनिवार्य हैं। इसके बिना बड़ी दीक्षा नहीं होती।

अनन्तप्रदेशी जीवास्तिकाय में एक प्रदेश भी कम हो तब तक जीवास्तिकाय नहीं कहलाता। एक प्रदेश को भी पीड़ा होती हो तो वह अपनी ही पीड़ा समझनी है।

मैं तो वहां सुनने के लिए आ नहीं सकता । इस बहाने मुझे सुनने को मिलेगा ।

पू. यशोविजयसूरिजी : उपा. यशोविजयजी ने अध्यात्मोपनिषद् में जीवन को स्पर्श करने वाली एक बात कही है - 'तेनात्मदर्शनाकांक्षी ज्ञानेनान्तर्मुखो भवेत् ।'

साधुता अर्थात् अन्तर्मुखता का राजमार्ग ।

श्रुतज्ञान ऐसा मिला है जो अन्तर्मुखता प्रदान करता है ।

* भक्तियोगाचार्य पद्मविजयजी म. कहते हैं -

'आश धरीने हूं पण आव्यो, निज कर पीठ थपेटीए ।'

पद्मविजयजी म. जैसे यों कहें और हम वंचित रह जायें ?

परन्तु अपनी पसन्दगी के भक्तों को भगवान किस तरह बाकी रखें ? प्रभु का स्पर्श अध्यात्म एवं भावना के पश्चात् मिलता है । उसी दिन भगवान का स्पर्श मिल गया । सायंकाल में 'आचारांग' पढ़ते समय पढ़ा, 'कितनेक अवज्ञा में होते हैं, कितनेक आज्ञा में निरुत्साही होते हैं; परन्तु हे मुनि ! तुझे ऐसा न हो ।

यह पढ़ते-पढ़ते अश्रुधारा बह निकली, मानो भगवान ने मुझे यह उपहार भेजा ! तत्पश्चात् प्रभु ने तमाचा भी मारा । आचारांग में आगे पढ़ा - 'एस अगुत्ते अणाणाए... तो तू आज्ञा से बाहर है ।

भगवान ऐसे दयालू हैं, जो कभी पुस्तक के रूप में या कभी अन्य रूप में कृपावृष्टि करते रहते हैं । हम भाग्यशाली हैं कि ऐसे (पू. कलापूर्णसूरिजी) महापुरुषों की निश्रा में हमें श्रवण करने को मिलता है ।

श्रवण करने की अपेक्षा महापुरुषों के ओरा सर्कल में रहना बड़ी बात है । वावपथक में रहता हूं, फिर भी पूज्यश्री के ओरा सर्कल में ही रहता हूं - ऐसा मुझे लगता है; क्योंकि साधना की ऊंचाई अधिक होती है, उस प्रकार ओरा सर्कल का वर्तुल विशाल होता है ।

पू. धुरंधरविजयजी म. 'क्या आप अकेले ही रहते हैं ?'

हम सभी रहते हैं । माने उसके लिए ओरा सर्कल है । न माने वह स्वयं उस सर्कल से बाहर है ।

ॐ ॐ ॐ

* यह तो बिना शर्त के सुनने को मिलते हैं अतः इतनी संख्या में आते हैं । यदि सम्पूर्ण पाठ पक्का करने की शर्त हो तो कितने लोग आओगे ? यद्यपि मैं तो मानता हूँ कि आप सबका उपकार है । इस प्रकार मुझे तो लाभ ही है । मेरा पाठ पक्का होगा । अन्यथा आज आगम सुनने वाले कितने हैं ?

* पूर्वाचार्य लिखने से पूर्व इष्टदेव, श्रुतदेवता आदि को नमस्कार करते थे तथा दुर्जन को भी याद करते थे । रत्नाकरवतारिका के मंगलाचरण के श्लोक में दुर्जनों को याद करने का कारण बताते हुए कहा है कि दुर्जन तो उपकारी हैं । ये नहीं हों तो भूल कौन निकालेंगे ?

* हरिभद्रसूरिजी यहां दो प्रयोजन बताते हैं - अनन्तर एवं परम्पर ।

(१) अनन्तर प्रयोजन : वक्ताओं का प्रयोजन जीवों पर अनुग्रह ।

श्रोताओं का प्रयोजन अर्थ - बोध ।

अपना कार्य सिद्ध होने के पश्चात् वैसे ही बैठे नहीं रहना है, दूसरों को देना है ।

दुकान में कोई ग्राहक नहीं आये तो व्यापारी विज्ञापन आदि करता है, उस प्रकार आपके पास कोई श्रोता न आयें तो क्या कोई प्रयत्न करेंगे ?

सिद्धार्थि गणि ने उपमिति में स्पष्ट लिखा है -

‘मेरे जैसे बेकार व्यापारी के पास कौनसा ग्राहक माल लेने आता है । मेरे जैसे के पास आनेवाले को अपनी प्रतिष्ठा कम होती प्रतीत होती है । अतः मैंने तो लकड़ी की पेटी में उत्तम पदार्थ डाल कर वह पेटी बाजार के मध्य में रख दी है । जिसे चाहिये वह ले जाये ।

दूसरों को समझाते हुए, ‘मेरा कुछ नहीं होता, मेरे लिए कुछ करता नहीं है ।’ ऐसा विचार आये तो समझें, अभी स्व-पर का भेद गया नहीं है । यहां कौन पराया है ? हम सभी एक डाल के पक्षी हैं । स्व-पर के भेद विद्यमान हैं इसका अर्थ यही है कि अपनी चेतना अभी विशाल नहीं बनी ।

एक बार पू.पं. भद्रंकरविजयजी म. ने कहा था - 'आप 'उपयोगी लक्षणम्' पर लिखते हैं, परन्तु 'परम्परोपग्रहो जीवानाम् ।' इस पर लिखने की इच्छा क्यों नहीं होती ?' परोपकार का पदार्थ उसमें से ही मिलेगा । अच्छा आपका जन्म कब हुआ ?

मैंने कहा, 'वि. संवत् १९८० में मेरा जन्म हुआ था ।'

'तो आपका दोष नहीं है । काल ही ऐसा है । प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् आपका जन्म हुआ है । तत्पश्चात् मनुष्यों में स्वार्थ-वृत्ति अत्यन्त ही बढ़ गई है । उससे पूर्व परोपकार सहज रूप में जीवन में बुना हुआ था ।' पू. पंन्यासजी ने कहा ।

जब नगीनदास करमचंद का संघ कच्छ में आया तब लोग सामने चलकर मुफ्त में घी, दूध, दही आदि देने आये थे ।

क्या आज ऐसी वृत्ति है ? दूध तो ठीक, आज छ़ास भी कोई मुफ्त में नहीं देता । आज तो पानी भी बेचा जाता है ।

*** (२) परम्पर प्रयोजन :** श्रोता एवं वक्ता दोनों का परम्पर प्रयोजन मोश्र-प्राप्ति है ।

प्रश्न : चैत्यवन्दन ही निरर्थक है । आप नमुत्थुणं बोलें, चीखो, शोर मचाओ जिससे क्या आपका मोक्ष हो जायेगा ? क्या मोक्ष इतना सस्ता है ?

उत्तर : प्रकृष्ट शुभ अध्यवसाय का कारण होने से चैत्यवन्दन व्यर्थ नहीं है । शुभ-अध्यवसाय सद्गति एवं सिद्धिगति का परम कारण है ।

इसके द्वारा ग्रन्थकार बताते हैं कि चैत्यवन्दन आदि क्रिया शुभ भाव पूर्वक करनी चाहिये । हममें से अनेक गुरुवन्दन अथवा चैत्यवन्दन इस प्रकार करते हैं मानो बेगार निकालते हों । इस प्रकार चैत्यवन्दन सफल कैसे हो ?

शुभ अध्यवसाय पूर्वक चैत्यवन्दन करना अर्थात् कर्मों की छावनी पर 'एटम बम' रखना ।

चैत्यवन्दन से सर्व प्रथम सम्यग्दर्शन मिलता है । सम्यग्दर्शन आते ही ज्ञान सम्यग्ज्ञान बन जाता है, और चारित्र सम्यक् चारित्र बन जाता है ।

दीक्षा ग्रहण करते समय रजोहरण प्रदान करने से पूर्व इसीलिए चैत्यवन्दन आदि क्रिया कराई जाती है ।

* आया हुआ मुहूर्त नहीं लिया जा सके, कभी विलम्ब हो जाये तो समझें - दीक्षार्थी के ललाट में जो समय लिखा हुआ था वह आ गया है ।

कभी तीन नवकार सुना कर भी दीक्षा दी जा सकती है ।

* दीक्षा-विधि सम्पन्न करते समय चैत्यवन्दन आदि की क्या आवश्यकता है ? ऐसे प्रश्न के उत्तर में यही कहा है कि चैत्यवन्दन आदि क्रिया शुभ भाव न हों तो उत्पन्न करती हैं । उत्पन्न हो गये हों तो स्थिर रखती है ।

प्रश्न : ऐसा किसने कहा है कि चैत्यवन्दन से शुभ भाव होते ही हैं ? कभी नहीं भी हों । विनयरत्न आदि जैसे कोई माया से भी करते हैं ।

उत्तर : यदि विधिपूर्वक चैत्यवन्दन किया जाये तो शुभ भाव उत्पन्न होते ही हैं । चैत्यवन्दन विधिपूर्वक हों इसके लिए तो यह प्रयास है, ताकि जानकार बनकर कपट-माया आदि को त्याग करे ।

प्रश्न : कोई लब्धि आदि के लोभ से भी चैत्यवन्दन आदि करे तो उसमें शुभ भाव कैसे आयेंगे ?

उत्तर : सूत्रों के अनुसार विधिपूर्वक आशंसा आदि दोषों से रहित होकर अच्छी तरह चैत्यवन्दन आदि क्रिया करे तो शुभ भाव आते हैं । ऐसा न करे, करना चाहे भी नहीं, वह इस चैत्यवन्दन का अधिकारी ही नहीं है ।

प्रश्न : तो फिर अधिकारी को ही यह सुनायें ।

उत्तर : हम अधिकारी को ही सुनाना चाहते हैं, अनधिकारी को नहीं, अपात्र को नहीं ।

कितनेक व्यक्ति ऐसे अपात्र होते हैं कि कोई विधि समझायें तो कोधित होते हैं और क्रिया ही छोड़ देते हैं । एक भाई को प्रतिक्रमण की विधि समझाई तो प्रतिक्रमण करना ही छोड़ दिया ।

यह अपात्रता है । ऐसा व्यक्ति इस चैत्यवन्दन सूत्र के लिए अधिकारी नहीं कहा जाता ।

* तदुपरान्त यह भी देखना है कि जो देश-विरति अथवा सर्व-विरति धर्म देते हैं उसका पालन करने में क्या वे समर्थ हैं ?

कइ ऐसे भी होते हैं जो कहते हैं, 'मुझे अभिग्रह दीजिये । परन्तु पूछने पर कहते नहीं है ।' तो उन्हें नहीं दे सकते ।

जामनगर में जिनालय में एक बहन ने मुझे कहा - 'मुझे अभिग्रह दीजिये । मैंने पूछा : 'किस बात का अभिग्रह देना है ?'

'यह नहीं बताऊंगी ।'

'तो मैं इतना भोला नहीं हूँ कि आपको अभिग्रह दूँ ।' मैंने इनकार किया ।

कोई किसी की हत्या करने का भी अभिग्रह ले ले तो भारी पड़ जाये ।

* श्रोताओं की योग्यता के लिए तीन बातें सोचनी हैं :

(१) क्या उसके हृदय में बहुमान है ?

ग्रन्थ - ग्रन्थकार के प्रति बहुमान आवश्यक है । बहुमान नहीं रखने वाले व्याख्यान सुनने आयें होंगे तो वे भूलें ही निकालेंगे ।

प्राप्त कराने के नशे में चाहे जिसे देना मत ।

(२) विधिपरता : विधि का आदर होना चाहिये ।

(३) उचितवृत्ति : गृहस्थों की आजीविका, साधुओं की गोचरी आदि औचित्यपूर्ण होनी चाहिये । यदि औचित्यपूर्ण न हों तो योग्यता नहीं कहलायेगी ।

* 'प्रभु ! मैं मूढ़ हूँ । हित-अहित जानता नहीं हूँ । आपकी कृपा से हित का जानकार बनूँ । अहित से बचूँ । अब मैं आराधक बनूँ । सबके साथ उचित व्यवहार करूँ ।'

- पंचसूत्र

* चाहे जैसा व्यवहार करेंगे तो भी मोक्ष मिल जायेगा, क्या यह मानते हैं ? सर्व प्रथम गुरु एवं गुरु जो बतानेवाले हैं उन शास्त्रों के प्रति बहुमान होना चाहिये; अन्यथा कोई लाभ नहीं होगा ।

अनधिकारी व्यक्ति को सिखाने में अनेक हानियाँ होने की सम्भावना है । अनधिकारी को विधि की बात कहेंगे तो उल्टी बात भी पकड़ सकता है । विधि होती ही नहीं है तो अब छोड़ ही दो न ? यह मानकर सब छोड़ देंगे ।

इसीलिए अयोग्य आत्माओं के लिए ज्ञानी कदापि प्रयत्न नहीं करते । अन्यथा जमालि या गोशाला जैसों की भगवानने उपेक्षा नहीं की होती ।



पू. दादाश्री जीतविजयजी म.सा.

२२-७-२०००, शनिवार

श्रा. कृष्णा-६

(परम पूज्य दादाश्री जीतविजयजी म.सा. की स्वर्गतिथि)

मोक्ष अर्थात् छुटकारा । संसार अर्थात् कारागार । उस कारागार में से छुड़वाने के लिए तीर्थंकर तीर्थ की स्थापना करते हैं । कारागार में से छुड़ाने वाले की अपेक्षा भी संसार के कारागार में से छुड़ाने वाला महान् उपकारी है । ऐसी बात समझ में आये तो तीर्थंकर भगवान के प्रति अनन्य भक्ति उत्पन्न हो ।

करुणता यह है कि हमें संसार जेल (कारागार) नहीं लगता, महल लगता है । हम स्वयं कैदी नहीं लगते । यदि जेल, जेल न लगे तो उसमें से छूटने का प्रयत्न कैसे हो ? भगवान हमें धीरे-धीरे समझाते हैं - आप कैदी हैं, कैद में हैं ।'

इतना पहले समझ में आये, तत्पश्चात् ही कैदी कैद में से छूटने का प्रयत्न करता है । इस कैद में से छूटे हुए तो धन्य हैं ही, छूटने के लिए प्रयत्न करने वाले भी धन्य हैं ।

आज ऐसे धन्य पुरुष की बात करनी है ।

आज पू. दादाश्री जीतविजयजी म. की ७७वीं स्वर्गतिथि है ।

कच्छ वागड़ के मनोहर गांव मनफरा में वि. संवत् १८९९ की चैत शुक्ला-२ के शुभ दिन माता अवलबाई एवं पिता उकाभाई के घर 'जयमल्ल' का जन्म हुआ था ।

बचपन से ही माता-पिता की ओर से जयमल्ल को धर्म के संस्कार मिले थे । वागड़ में मनफरा प्रसिद्ध है । यहां भी अनेक महात्मा मनफरा के हैं । बारह वर्ष की आयु में जयमल्ल को आंखों की पीड़ा प्रारम्भ हुई और १६ वर्ष की आयु में वे पूर्णतः अन्धे हो गये । युवावस्था में अंधत्व का कष्ट आ जाये यह कितनी दुःखद बात है ?

जन्म से ही अन्धे को अधिक कष्ट प्रतीत नहीं होता, परन्तु देखते हों और अचानक अन्धा होना पड़े तब दुःख का पार नहीं होता । यह तो अनुभव करने वाला ही जान सकता है ।

जयमल्ल जैन-तत्त्वों के ज्ञाता थे । वे समझते थे कि मैं ने पूर्वजन्म में किसी की आंखे फोड़ी होंगी अथवा ऐसे शब्द कहे होंगे । इसी कारण से आज मेरी आंखे चली गई हैं । मेरे किये हुए मुझे ही भोगने पड़ेंगे ।

समस्त उपचार व्यर्थ सिद्ध होने के पश्चात् उन्होंने मनफरा में प्रतिष्ठित भगवान श्री शान्तिनाथ की शरण ली - 'प्रभु ! अनाथ का नाथ तू है । अब मैं तेरी शरण में हूं । तेरी कृपा से यदि आंखे मिल गईं तो मैं तेरे मार्ग पर आऊंगा ।'

सचमुच ही चमत्कार हुआ । दृढ संकल्प से वे देखते हो गये । चमत्कार वहां नमस्कार नहीं, यह नमस्कार वहां चमत्कार था । चौथे आरे में तो नमि राजर्षि की दाह-वेदना, अनाथी मुनि की आंखों की वेदना इस प्रकार दूर हुई थी, परन्तु यह तो पांचवे आरे की घटना है ।

जिन शान्तिनाथ भगवान के समक्ष उन्होंने प्रार्थना की थी, वह प्रतिमा आज भी मनफरा में विद्यमान है । (वर्तमान में वि. संवत् २०५७ की माघ शुक्ला द्वितीया के दिन आये भयंकर भूकम्प से यह गांव पूर्णतः ध्वस्त हो चुका है । अतः यह प्रतिमा मुंबई के विलेपार्ले - पश्चिम के जिनालय में बिराजमान है । अभी वह प्रतिमा पुनः मनफरा आ चुकी है । भूकम्प में ध्वस्त हो चुके मनफरा के जिनालय का चित्र इस पुस्तक में दिया जा चुका है ।)

तत्पश्चात् गुरु की खोज करते-करते अनेक वर्ष व्यतीत हो गये । अन्त में उन्होंने ने पद्मविजयजी महाराज को ढूँढ निकाले । (पद्मविजयजी नाम यति अवस्था का है । संवेगी दीक्षा ग्रहण की तब गुरु पं. मणिविजयजी ने प्रेमविजयजी नाम रखा था, परन्तु बड़ी उम्र में संवेगी दीक्षा ग्रहण की होने से पद्मविजयजी नाम ही प्रचलित रहा । संवेगी दीक्षा में अपने शिष्य जीतविजयजी से वे केवल एक वर्ष ही बड़े थे ।) आडीसर गांव में उनके पास वैसाख शुक्ला ३ को, वि. संवत् १९२५ में दीक्षा अंगीकार की । उस समय उनकी आयु २९ वर्ष की थी । दीक्षा के समय रायण का सूखा वृक्ष नवपल्लवित हुआ और जिस कुँए के जल से दीक्षा से पूर्व स्नान किया, उस कुँए का जल मीठा हो गया ।

वि. संवत् १९३८ की वैसाख शुक्ला-११ के दिन यद्यपि गुरु पद्मविजयजी म. कालधर्म को प्राप्त हुए, परन्तु उनके आशीर्वाद सदा उन पर वृष्टि करते रहे । तत्पश्चात् जीतविजयजी महाराज ने मारवाड़, मेवाड़, गुजरात, कच्छ आदि स्थानों पर विचरण करके अत्यन्त ही धर्म-प्रभावना की ।

यद्यपि हमने पूज्यश्री को देखे नहीं है, परन्तु जिन्होंने देखे हैं, उनके पास से (पू. कनकसूरिजी म. के पास से) उन्हें अनेक बार सुना है ।

[illegible]

श्री सुधर्मास्वामी के पास सुने अवश्य थे । भगवान महावीर कैसे थे । इसका वर्णन 'सूयगडंग' में हो चुका है । (वि. संवत् २०३६ में पालीताणा में चातुर्मास में 'सूयगडंग' पर व्याख्यान दिये थे ।)

पुनः पुनः कच्छ आ-आकर पूज्यश्री ने कच्छ-वागड़वासियों को धर्ममय बनाये । उन्होंने उजाड़ रणभूमि को वृन्दावन में परिवर्तित कर दी । उनका उपकार आज भी आप याद करते हैं ।

परन्तु क्या समुदाय के प्रति अपना उत्तरदायित्व याद आता है ? मेरे परिवार में से किसी को मैं इन उपकारी गुरुदेवों के पास पढ़ने के लिए भेजूं, यह याद आता है ?

प्रातः विष्णु मन्दिर जाते, बासी खिचड़ी खाते, इस समाज को धर्म मार्ग की ओर उन्मुख करने के लिए उन्होंने अथाक परिश्रम किया है, उसे न भूलें ।

आप अपने सन्तानों को इस मार्ग पर मोड़ने के लिए प्रेरणा दो तो कुछ अंशों में उन उपकारों का बदला चुकाया जा सकता है ।

पू. जीतविजयजी महाराज उस युग में समस्त समुदायों के महात्माओं के द्वारा प्रशंसा पा चुके थे । उनका शिष्य परिवार पूज्य कनकसूरिजी, पू. आनन्दश्रीजी आदि भी प्रशंसा पा चुके थे ।

ऐसे उपकारी पूज्यश्री वि. संवत् १९७९ में आज के दिन 'पलासवां' में सिद्धों का ध्यान करते हुए काल धर्म को प्राप्त हुए ।

* वि. संवत् २०२७ में खम्भात का अत्यन्त ही आग्रह होते हुए भी पू. देवेन्द्रसूरिजी ने 'आधोई' में चातुर्मास करने की इच्छा व्यक्त की । इस प्रकार आधोई में अनेक बड़े-बड़े चातुर्मास हुए हैं । आज आधोई संघ तथा वागड़ के संघ जो कार्य कर रहे हैं, उनमें इन उपकारी गुरुजनों का प्रभाव है ।

मालशी मेघजी - स्वास्थ्य अशक्त होते हुए भी उपकारी गुरुजनों के उपकारों का वर्णन किये बिना रहा नहीं जाता ।

हम किसान थे । प्रातः शीघ्र भोजन करके खेत पर जाते और रात्रि में लौटते थे । जाड़ी रेतियां एवं छस के द्वारा काम चलाकर पू. गुरु भगवंतोने जो उपकार किया है वह कैसे भुलाया जा सकता है ? उनके उपकारों की हारमाला याद आने पर आंखों से आंसू बहने लगते हैं ।

गुणानुवाद सुना । गुणानुवाद अनेक बार सुना है, परन्तु आज सुनकर हृदय झंकृत हो उठा ।

पूज्य दादाश्री जितविजयजी म. पर बोलने के लिए मैं अत्यन्त तुच्छ हूँ ।

पूज्य दादाश्री जीतविजयजी म. के गुरुदेव पू. पद्मविजयजी म. हमारे भरूडिया गांव के सत्रा परिवार में से थे । उनका स्वर्गवास हुए ११८ वर्ष हो चुके हैं । अभी तक भरूडिया में पू. पद्मविजयजी म. के पश्चात् दूसरा कोई व्यक्ति इस समुदाय में दीक्षित हुआ हो ऐसा ध्यान नहीं है । पूज्य गुरुदेव ! आप कृपा-वृष्टि करो और कुछ ऐसा करो कि जिससे यह महेणा टूटे ।

हीरजी प्रेमजी : हमने भले ही पूज्य दादाश्री जीतविजयजी म. को देखे नहीं है, परन्तु सुने अवश्य हैं ।

हम ओसवालभाई मात्र विष्णु-मन्दिरों में जाकर टंकोरी बजाना जानते थे, परन्तु पूज्य गुरुदेव की मीठी नजर पड़ी और हमारे भीतर सुषुप्त जैनत्व जाग उठा । पू. देवेन्द्रसूरिजी, पू. कलापूर्णसूरिजी आदि महात्माओं का आधोई तथा समग्र कच्छ-वागड़ पर अत्यन्त ही उपकार है ।

पूज्य आचार्यश्री की प्रत्येक आज्ञा आधोई के संघ ने सदा स्वीकृत की है, अभी भी करेगा, ऐसा विश्वास दिलाता हूँ ।

केसरीचन्दजी : महापुरुषों का गुणानुवाद जीवन का परम सौभाग्य है ।

पूज्य दादाश्री जीतविजयजी म. में जिस प्रकार प्रभु-भक्ति थी, प्रभु के प्रति श्रद्धा थी, वैसी श्रद्धा हमारे हृदय में हो ऐसी प्रार्थना है ।

नारणभाई त्रेवाडिया के द्वारा गुरु - गुण - गीत प्रस्तुत किया गया । (ये नारणभाई त्रेवाडिया अत्यन्त ही उत्तम प्रभु-भक्त, गुरु-भक्त एवं कवि थे । आधोई में भूकम्प की दुर्घटना में उनका स्वर्गवास हुआ है ।)

मध्याह्न की वाचना :

* जितना भी श्रुतज्ञान आज बचा है, वह हमारे कल्याण के लिए पर्याप्त है ।

परन्तु आज तो दशा ऐसी है कि ४५ आगमों के नाम भी बराबर आ जायें तो भी बड़ी बात गिनी जाये ।

पैतालीस आगमों में वर्णन तो मिलता है, परन्तु तदनुरूप जीवन देखने-पढ़ने को मिले तब अत्यन्त ही आनन्द हो । आज ऐसा ही एक जीवन (पू. श्री जीतविजयजी म. का) प्रातः काल में हमें सुनने को मिला ।

* असंग-अनुष्ठान प्राप्त करने के लिए हम उत्सुक हैं । शीघ्र आत्मानुभव हो जाये तो कितना उत्तम ? परन्तु आत्मानुभव (असंग) के लिए भगवान की आज्ञा का पालन (वचन योग) चाहिये । भगवान की आज्ञा का तब ही बराबर पालन हो सकता है, यदि उनके प्रति हृदय-पूर्वक भक्ति हो (भक्ति योग) । भक्ति तब ही आती है यदि भगवान पर हृदय का प्रेम (प्रीति योग) हो ।

प्रारम्भ सदा प्रीतियोग से हो सकता है, परन्तु हम सीधी चौथी मंजिल (असंग योग) का निर्माण करना चाहते हैं ।

नींव भरे बिना घर बन सकता हो तो प्रीति योग के बिना असंग योग आ सके । लगभग १५०० वर्ष पूर्व हो चुके (पूर्वधरों के निकटवर्ती) पूज्यश्री हरिभद्रसूरिजी के ये पदार्थ हैं । उनके कितने ही पदार्थ हमें सर्वथा नवीन लगते हैं, आगमों में न हों वैसे लगते हैं, परन्तु समझना पड़ेगा कि उनका काल पूर्वधरों के निकट का था, पूर्व चाहे विच्छिन्न हो गये होंगे, परन्तु उनकी कुछ बूंदें रह गई होंगी, जो ऐसे पदार्थों से हमें समझ में आते हैं ।

हरिभद्रसूरिजी ने कहा है : विशिष्ट प्रकार के क्षयोपशम के बिना ऐसे सूत्रों (चैत्यवन्दन सूत्र) के प्रति प्रेम प्रकट नहीं होता, विधि तत्परता नहीं आती, औचित्य भी नहीं आता ।

लोक-विरुद्ध व्यवहार (जुआ आदि सात व्यसन) करने वाला ऐसे सूत्र के लिए योग्य नहीं गिना जाता । जिसका मस्तिष्क ठिकाने न हो वही इस लोक और परलोक के विरुद्ध कार्य करता है । बुद्धिमान तो दोनों लोकों में हितकर हो वैसी ही प्रवृत्ति करता है ।

इस 'ललित विस्तर' (बौद्धों में भी इस नाम का एक ग्रन्थ है) का यदि आप समुचित अध्ययन करें तो आपका चैत्यवन्दन

महान् योग बने बिना नहीं रहेगा ।

इससे आपकी प्रत्येक प्रवृत्ति के केन्द्र में भगवान रहेंगे । जहां भगवान हों वहां कषाय कैसे ? वहां अकल्याण कैसा ?

‘ए जिन ध्याने क्रोधादिक जे आसपासथी अटके ।’

- न्यायसागरजी

बख्तर पहने हुए योद्धा को शस्त्र नहीं लगता, उस प्रकार प्रभु-भक्ति के बख्तर वाले भक्त को मोह के शस्त्र नहीं लगते ।

‘विषय लगन की अग्नि बुझावत, तुम गुण अनुभव धारा;

भई मगनता तुम गुण रस की, कुण कंचन कुण दारा ?

- उपा. यशोविजयजी म.

* तीन में से प्रत्येक के पांच-पांच लक्षण यहां बताते हैं ।
(कुल १५ लक्षण होंगे ।)

* बहुमान वाले के पांच लक्षण :

(१) तत्कथाप्रीति

(२) निन्दा-अश्रवण

(३) निन्दक पर दया

उन उन योग्य वाले व्यक्तियों की कथा सुनने पर प्रेम जगता है, बहुमान जगता है, यह इच्छा योग है ।

इच्छा तद्वत्कथा प्रीतिः ।

भगवान के प्रति प्रेम है, यह कब ज्ञात हो सकता है ? उनकी निन्दा होती हो तो सुनी न जा सके । निन्दक के प्रति भी द्वेष उत्पन्न न हो, परन्तु करुणा आयेगी - बिचारा इस प्रकार भगवान की आशातना करके कहाँ जायेगा ?

(४) चित्त का विन्यास : चैत्यवन्दन आदि जो जो क्रिया चलती हो उस समय चित्त उसमें ही होता है । फोन पर बात करते हैं तब मन कैसा एकाग्र होता है ?

(५) परा जिज्ञासा - प्रकृष्ट जिज्ञासा :

* विधि-तत्पर के पांच लक्षण :

(१) गुरु का विनय

(२) सत्काल की अपेक्षा - जिस समय जो करना हो वह करने की अपेक्षा आवश्यक है । जैसे त्रिकाल-पूजा । प्रातः

वासक्षेप पूजा, मध्याह्न में चन्दन पूजा और सायंकाल में आरती पूजा ।

(३) उचित आसन ।

(४) युक्त स्वरता - अन्य को व्याघात न हो वैसी आवाज निकालना । जिनालय में वरिष्ठ व्यक्ति बैठे हों तब ऊंचे स्वर में नहीं बोलना चाहिये । यह अविनय है । छोटे-बड़े किसी के योग में बाधा न पड़े उस प्रकार आवाज निकालनी । इसे युक्त-स्वरता कहते हैं ।

जैसे आदिनाथ के दरबार में गये हों और सबके साथ मेल जमता हो तो साथ में स्तवन आदि बोले जा सकते हैं । यदि ऐसा नहीं होता हो तो विवेक रखें ।

(५) पाठ का उपयोग : चैत्यवन्दन के समय बोले जानेवाले सूत्रों का ध्यान हो । एक बार नहीं, सदा उपयोग होता है ।

* उचित वृत्ति के पांच लक्षण :

(१) लोकप्रियता

(२) अगर्हित क्रिया : इस लोक-परलोक के विरुद्ध कार्य ही न हों ताकि कोई निन्दा करे ।

(३) संकट के समय धैर्य

(४) शक्ति के अनुसार त्याग

(५) लब्ध लक्षता - जो ध्येय निश्चित किया हुआ हो वह न मिले तब तक बैठा न रहे ।

ये पन्द्रह गुण मिलते हों वैसे अधिकारी जिज्ञासु को यह पाठ देना, अन्यथा दोष लगता है ।

* पू.पं. भद्रंकरविजयजी म. कहते थे कि एक नवकार बराबर आत्मसात् करें तो भी पर्याप्त है ।

एक नवकार सूत्र, अर्थ, तदुभय से आत्मसात् करने के लिए द्वादशांगी की आवश्यकता होगी ।

तदुभय अर्थात् जैसा पढ़े हैं वैसा जीवन में उतारना । ज्ञानाचार का यह भेद होने पर भी यह चारित्राचार हो वैसा लगे । ज्ञ परिज्ञा और प्रत्याख्यान परिज्ञा, ग्रहणशिक्षा एवं आसेवन शिक्षा यहाँ प्रत्याख्यान परिज्ञा से तथा आसेवन शिक्षा से जीवन जीने की बात ही आई है ।

* दूधपाक सर्वोत्तम है, परन्तु खाने वाले के पाचन-तन्त्र को देखकर ही दिया जाता है, उस प्रकार सूत्र सर्वोत्तम है, परन्तु सामने वाले की योग्यता देखकर ही दिया जाता है । टाइफोईड वाले को दूधपाक नहीं दिया जाता उस प्रकार अयोग्य व्यक्ति को सूत्र नहीं दिये जाते ।

यहां अयोग्य पर द्वेष नहीं, परन्तु करुणा ही है । टाइफोईड वाले पर द्वेष थोड़ा है ? वह यदि दूधपाक खायेगा तो उसे ही हानि होगी । अयोग्य व्यक्ति सूत्र पढ़ेगा तो सर्व प्रथम उसे ही हानि होगी ।

* किसी भी कार्य में सफलता प्राप्त करनी हो तो भगवान को आगे करें । भगवान साक्षात् न हो तो भगवान का वचन (शास्त्र) आगे करें । वह यदि आगे हो तो भगवान ही आगे हैं, यह मानें ।

भगवान जहां आगे हैं वहां सफलता मिलेगी ही ।

* 'चलता है जैसे चलने दें, विधि-अविधि की सिर-पच्ची छोड़ें । सब करें वैसे करें ।' ऐसी वृत्ति लोक-संज्ञा है । लोक-संज्ञा अर्थात् गतानुगतिकता । लोकहेरी । इसका त्याग किये बिना विधि में आदर नहीं बन सकेगा ।

* दुकान पर बिठाने से पूर्व पिता पुत्र को अनेक प्रकार का ज्ञान कराता है, उस प्रकार ग्रन्थ के प्रारम्भ से पूर्व योग्यता-अयोग्यता आदि की बातें ग्रन्थकार कहते हैं ।

एक बात समझ लें - मार्ग पर चलना हो तो शास्त्रानुसारी वचनों के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है ।

पूज्य मुनिश्री धुरन्धरविजयजी म. -

बुद्धि हम में भ्रान्ति उत्पन्न करती है । बुद्धि को एक ओर रखें, मृतवत् जीयें । अहंकार की मृत्यु ही साधु का जीवन है । गृहस्थ किसी की मृत्यु के पश्चात् श्वेत वस्त्र ओढ़ते हैं । वह हम नित्य ओढ़ते हैं ।

कानून की भाषा में अपनी 'सिविल डेथ' हो चुकी है ।

अहं की मृत्यु के बिना गुरु-समर्पण नहीं आता । इसके बिना साधकता प्रकट नहीं होती । साधक के लिए सद्गुरु ही शास्त्र हैं, जैसे न्यायालय में जज बोलता है वही कानून कहलाता है ।

प्रभु में लीन सदगुरु (पू. कलापूर्णसूरिजी) आपको मिले हैं, यह आपका महान सौभाग्य है ।

जो भगवान की बात करते-करते गद्गद् हो जायें, जिन्हें प्रति पल भगवान ही याद आयें, वे - ही सदगुरु हैं ।

हरिभद्रसूरिजी याकिनी महत्तर को कहीं भी नहीं भूलते, उस प्रकार प्रभु का भक्त उपकारी को कदापि नहीं भूलता, चाहे वह उपकारी बिल्कुल छोटा ही हो ।

संयम लिया अतः पसंदगी छोड़ दी । मुझे यह अच्छा लगता है । अच्छा नहीं लगता यह शब्द साधु-साध्वी के नहीं होते । चाहे जैसी परिस्थिति होगी, मैं गुरु की प्रत्येक बात शिरोधार्य करूंगा ।

एक अजैन प्रसंग बताता हूँ -

सर्व प्रथम आये हुए साधक को गुरु कहते हैं - 'कचरा निकाल ।'

वह कचरा निकालना प्रारम्भ करता है । जब तक गुरु इनकार नहीं करते तब तक वह कचरा निकालता ही रहता है ।

हमें तो 'स्वामी शाता हे जी ?' का उत्तर नहीं मिले तो भी हमारा मुंह चढ़ जाता है । वह साधक बारह वर्षों तक कचरा निकालता रहता है ।

धैर्य के बिना गांठ नहीं छूटती, मार्ग नहीं मिलता ।

गुरु को क्या करना चाहिये ? यह नहीं, हमे क्या करना चाहिये, यह सीखना है ।

गुरु को क्या करना है ? ऐसा विचार करने वाला का इस शासन में स्थान नहीं है । बारह वर्षों के पश्चात् गुरु ने पूछा, 'बेटे ! तू क्या करता है ?'

'आपकी आज्ञा से कचरा निकालता हूँ ।'

'जा, बेटे ! तेरा सब कचरा निकल गया ।'

उसके भीतर का सभी कचरा निकल गया, मन शुद्ध हो गया । यहां गुरु की आज्ञानुसार प्रत्येक आज्ञा निर्जरा का कारण है ।

हम व्याख्यान देने में प्रतिष्ठा (स्टेटस) मानते हैं, परन्तु पानी लाना, कचरा निकालना आदि प्रतिष्ठा (स्टेटस) से बाहर के कार्य मानते हैं ।

मैं पू.पं. भद्रंकरविजयजी म. को अनेक बार पूछता : आपके बाद हमारा क्या होगा ? हमें कौन मार्ग-दर्शन देगा ? सद्गुरु को कैसे पहचानें ?' वे कहते, 'जो अपने सद्गुरु एवं भगवान को याद करते हुए गद्गद् हो जाये वह सद्गुरु है, यह मानें; ज्ञान न देखें...'

केवल अष्टप्रवचन-माता का ज्ञान चलेगा, परन्तु वह प्रभु में तन्मय बना हुआ होना चाहिये । वह व्यक्ति सब कुछ दे सकता है । केवल ग्रहण करने वाले को खाली होने की आवश्यकता है ।

* प्रकाम-तीव्र, निकाम - बार-बार की छोटी-छोटी इच्छाओं में से मुक्त होना है । इसके बिना गुरु के प्रति समर्पण नहीं आता । इच्छा गई तो समर्पण गया । इच्छा है वहां भाव-निद्रा है । इच्छा से आप दौड़ों तो भी निद्रा में ही हैं । मुनि सदा जागृत होते हैं । इच्छा के कारण गुरु की शक्ति की धारा रुक जाती है ।

पेट्रोल से मोटर दौड़ती है, उस प्रकार प्रभु की शक्ति से हम धर्म-किया कर रहे हैं - यह मानें तो ही सच्चा धर्म बनता है ।

हमारा धर्म संसार के लिए है !

प्रभु का धर्म मोक्ष हेतु है !!

हम अपना धर्म मान बैठे ।

'शिष्यस्य सर्वं गुर्वायत्तम् ।

'गुरोः सर्वं परमायत्तम्' ।

परम (प्रभु) के अधीन न हो वह गुरु ही नहीं है । प्रभु गुरु के बिना सीधे नहीं मिल सकते, पंचसूत्र में स्पष्ट कहा है ।

इच्छाओं से निरावरण बनने वाले ही गुरु के कृपा-पात्र बन सकते हैं । मुझे कुछ नहीं करना है । गुरु कहें वही करना है । मैंने किया इसलिए तो संसार में भटका ।

पकड़ती है पुलिस, परन्तु सचमुच सरकार पकड़ती है ।

करते हैं धर्म हम, परन्तु कराते हैं प्रभु । गुरु प्रभु के माध्यम हैं ।

ॐ ॐ ॐ

यहां उपस्थित हैं जो सभी सिद्धाचल की स्पर्शना हेतु आये हुए हैं । स्वयं भगवान आदिनाथ आते हों तो अन्य क्यों न आये ?

सामुदायिक रूप से सबकी भावना हुई कि सब एकत्रित होकर क्यों न मैत्री के तन्तु को सुदृढ़ करें ?

भगवान संघ तथा सकल जीवराशि का उपकार मानते हैं, क्योंकि उनके प्रति करुणा से ही वे भगवान बने हैं ।

भगवान को भगवान बनाने वाली करुणा है । यह करुणा ही उन्हें समस्त जीवों के प्रति विनय करने के लिए प्रेरित करती है । भगवान भी विनय नहीं छोड़ते तो हम कैसे छोड़े ?

आज मैत्री-भावना पर बोलना है ।

मैं ने कहा, 'पहले हम जीकर बतायें, फिर सबको कहेंगे ।'

मैत्री-भाव से ओत-प्रोत बना अपना संघ कितना सुशोभित लगता है ?

आज वात्सल्य-भाव, मैत्री-भाव जो मृतप्रायः बन गये हैं, उन्हें पुनर्जीवित करना पड़ेगा ।

चार भावनाओं का स्वरूप स्वयं भगवान ने कहा है ।

धर्म यदि कल्पवृक्ष है तो ये चार भावनाएँ उसके मूल हैं ।

शास्त्रों के मन्थन से निकाला हुआ मक्खन है - ये चार भावनाएँ । जो यह जानते नहीं हैं, इन्हें जीवन में लाते नहीं हैं, वे धर्म की आशा छोड़ दें ।

जिन भावनाओं के बिना धर्म मूल्यहीन गिना जाता है, उन भावनाओं का महत्त्व कितना है ?

परहितचिन्ता मैत्री - दूसरों के हित का विचार मैत्री है ।

हम केवल अपना ही विचार करते हैं । वही मोह है । यह धर्म मोह के चंगुल में से सर्व प्रथम छुड़ाता है ।

चतुर्विध संघ का प्रत्येक सदस्य अर्थात् मोहराजा के विरुद्ध लड़ने वाला शूरवीर योद्धा । मोह को परास्त करने का लक्ष्य नहीं हो वह जैन नहीं है ।

अनादिकाल से चार कषाय हमारे भीतर अधिकार जमा कर बैठे हैं । जब तक कषायों से मुक्ति नहीं मिले तब तक संसार से मुक्ति नहीं मिलेगी ।

कषायों से भावना के द्वारा ही मुक्ति मिल सकेगी ।

मैत्री से क्रोध, प्रमोद से मान, करुणा से माया, माध्यस्थ से लोभ जीते जा सकते हैं । आप सोचेंगे तो बराबर समझ में आ जायेगा ।

जहां मैत्री होगी वहां क्रोध नहीं रह सकेगा, प्रमोद होगा वहां मान नहीं रह सकेगा, करुणा होगी वहां माया नहीं रह सकेगी और जहां माध्यस्थ भावना होगी वहां लोभ नहीं रह सकेगा ।

गत गुरुवार को वाचना में समस्त आचार्य भगवन् हमारे यहां आये तब मैत्री की बात निकली थी तब मैत्री के लिए शास्त्रों का आधार दिया था । जीवों के एक, दो, तीन इस तरह अेक भेद हैं । एक भेद किस प्रकार ? उपयोग की अपेक्षा से ।

उपयोग सब में है । उपयोग की अपेक्षा से समस्त जीव एक हैं । जीवास्तिकाय के द्वारा भी एकता सिद्ध होगी ।

मैंने कहा था - जीवास्तिकाय आदि समझ कर हम मैत्री आदि नहीं ला सकें तो सच्चा साधुत्व नहीं आ सकेगा ।

सबसे पहला व्रत प्राणातिपात विरमण है । यह मैत्री का पूरक ही है । प्रश्न व्याकरण में अहिंसा के ६० पर्यायवाची शब्द हैं, जिनमें एक नाम 'शिवा' भी है । शिवा अर्थात् करुणा । यहीं तीर्थंकर की माता हैं ।

'अहं तित्थयरमाया सिवादेवी' - यह शिवा देवी करुणा देवी है ।

यह नींव है । इस पर निर्मित साधना का भवन ही सुदृढ़ बनेगा ।

अब अन्य पू. आचार्य भगवन् बोलेंगे । इनका आवाज बुलन्द है । सब सुन सकेंगे । सारा समय मैं ही ले लूं, यह उचित नहीं है । भले मेरे लिए आधा घंटा रखा हो, परन्तु मुझे सोचना चाहिये ।

पू. आचार्यश्री हेमचन्द्रसागरसूरिजी : साहेबजी ! हम ऐसे कंजूस नहीं हैं । आप अभी चालु रखें ।

पूज्यश्री : जिस दिन किसी के साथ कुछ भी कटुता हुई हो, उस दिन साधना में मेरा मन नहीं लगता । हमें अपनी साधना भी बराबर करनी हो तो भी सबके साथ मैत्री जमानी पड़ेगी ।

किसी को भी आप कहेंगे - 'तू मेरा मित्र है।' वह निश्चित रूप से प्रसन्न होगा। जीवों के साथ पहले मित्रता का सम्बन्ध, फिर आत्म-तुल्य सम्बन्ध और उसके बाद एकता का सम्बन्ध विसित करना है। इससे भी आगे बढ़कर सब में परमात्म-दृष्टि आयेगी, सब में परमात्मा बैठे दृष्टिगोचर होंगे।

हमारा संघ मैत्रीमय बने, यही शुभकामना है।

पू. मुनिश्री धुरन्धरविजयजी : इतने सारे आचार्य भगवंतों का एक साथ दर्शन अनेक व्यक्तियों के लिए प्रथम बार होगा। धन्य है यह क्षण जहां इन सबके दर्शन होते हैं।

यही समवसरण है। यहां ही भगवान हैं, ऐसा अनुभव होगा।

हमारे परम सौभाग्य से प्रभु के परम भक्त, आगमों के रहस्यों के उद्घाटक पूज्य आचार्य श्री विजयकलापूर्णसूरिजी मुख्य आचार्य देव के रूप में हैं।

पूज्य आचार्य भगवन् के शब्द चाहे आपको सुनने में नहीं आये हों, परन्तु उन शब्दों की तरंगें तो यहां से बही ही हैं। आपको उन पवित्र शब्दों का स्पर्श हुआ ही है। आप पर उनका प्रभाव भी हुआ ही है। आपको सुनाई नहीं देता हो फिर भी आप शान्तिपूर्वक बैठे रहे, यही इस बात का प्रतीक है।

यहां पू. रामचन्द्रसूरिजी, पू. सागरजी, पू. भुवनभानुसूरिजी, पू. धर्मसूरिजी, पू. नेमीसूरिजी, पू. ॐकारसूरिजी, विमलशाखा, त्रिस्तुतिक, अचलगच्छ आदि समुदायों के महात्मा उपस्थित हैं।

आज शिष्य आगे बैठे हैं। गुरु पीछे बैठे हैं, मानों शिष्यों की पीठ थपथपा रहे हैं।

प्राचीनकाल में चार जैन राजधानियां थीं, ऐसा उल्लेख मिलता है।

सम्यक्त्व सप्तिका ग्रन्थ के मल्लवादी के प्रबन्ध में लिखा है कि पटना (पाटलिपुत्र), पैठन (प्रतिष्ठानपुर), वलभीपुर (वला), जीर्णदुर्ग (जूनागढ़) ये चार जैन राजधानियां थीं, जहां सभी गच्छों के उपाश्रय थे।

आजकल राजनगर (अहमदाबाद) और पालीताना राजधानी गिनी जाती हैं। आज आप यहां उपस्थित हैं, यह अपना सौभाग्य समझें।

किसी की आवाज धीमी हो तो भी चिन्ता नहीं करें, दर्शन करके सन्तोष मानें ।

सबको भारी आशा है, इतने आचार्य भगवन् क्या करेंगे ? हमें मैत्री करनी है, संघर्ष नहीं करना है । संघर्ष करना है कर्मों के साथ, धुलमिल जाना है प्रभु में । यही हमारा कर्तव्य है ।

श्री भद्रबाहुस्वामी नेपाल में महाप्राणायाम ध्यान करने गये थे । बारह वर्षों का अकाल पड़ा । श्रुत परम्परा विच्छिन्न होने लगी । आपका धंधा जैसे बहियों से चलता है, उस प्रकार प्रभु का शासन श्रुत से चलता है । श्रुत परम्परा को अविच्छिन्न रखना सबका कर्तव्य है । जिसके पास जो श्रुतज्ञान हो वह लेना है । आचार्य भगवन् भी विद्यार्थी बनकर उसके पास जायें ।

पाटलिपुत्र में श्रमण संघ एकत्रित हुआ । ग्यारह अंग मिले, परन्तु दृष्टिवाद नहीं मिल सका । दृष्टिवाद के ज्ञाता एकमात्र भद्रबाहुस्वामी नेपाल में थे । उनको दो साधुओं के द्वारा निमंत्रण भेजने पर भी उनका उत्तर मिला कि आवश्यक ध्यान के कारण मैं नहीं आ सकूंगा । पुनः दो मुनियों के द्वारा उन्हें पुछवाया कि 'जो संघ की आज्ञा का उल्लंघन करे, उसे क्या प्रायश्चित्त आता है ?'

भद्रबाहुस्वामी चौंके, 'मैं संघ का सेवक हूँ । जो कहे वह करने के लिए बंधा हुआ हूँ ।'

श्रमणसंघ के शीर्षस्थ नायक के ये शब्द हैं । तीर्थंकर भी 'नमो तित्थस्स' कहकर जिसे नमस्कार करते हैं, उसकी भद्रबाहु स्वामी किस प्रकार अवहेलना कर सकते हैं ?

'वहां नहीं आ सकूंगा, परन्तु सुनकर याद रख सकें वैसे बुद्धिमान मुनियों को भेजो, मैं नित्य सात वाचना दूंगा ।'

यह है संघ की गरिमा ।

'आयरिय उवज्झाए' इस सूत्र की प्रथम गाथा में आचार्य, उपाध्याय, शिष्य, स्वधर्मी, कुल, गण के साथ जो कषाय किये हों वैसे कहा, परन्तु 'पूज्य' शब्द का प्रयोग सकल श्रमण संघ के लिए हुआ है । आगे की गाथा में देखो, 'सव्वस्स समण संघस्स भगवओ ।' संघ को 'भगवान' शब्द से नवाजा गया है । भगवान शब्द पूज्यतावाची है । ऐसे श्रमण संघ का मूल्यांकन

नहीं किया जा सकता । इस तीर्थ की यात्रा नित्य दर्शन के रूप में की जा सकती है । प्रत्येक रविवार को ये दर्शन हो सकते हैं ।

एकत्रित होना ही मंगल है ! यही शक्ति का संचय है । एक दूसरे के प्रति संद्भाववाले मुनि साथ बैठें जिससे अकल्पनीय महा शक्ति उत्पन्न हो ।

बोलेगा तो कोई एक ही, परन्तु वह सबकी ओर से बोलेगा । मेरी क्या शक्ति है बोलने की ? परन्तु सबका पीठ-बल है ।

आप सभी विभिन्न गांवों के एकत्रित हुए हैं, परन्तु कहीं भी झगड़ा होने का नहीं सुना । होता भी कहां से ? प्रारम्भ से ही श्रमण संघ के दर्शन से मंगल हुआ है । अब यह मंगल प्रत्येक सातवे दिन होता ही रहेगा ।

* ईसामसीह के २००० वर्ष पूरे हो गये हैं । अब महावीर स्वामी के वर्ष प्रारम्भ होने चाहिये । ईसामसीह के वर्ष अर्थात् लड़ाई के वर्ष । अब लड़ाई के नहीं, मैत्री के वर्ष चाहिये ।

हमारे गुरुदेव पू.पं. श्री भद्रंकरविजयजी म. की यही इच्छा थी । भले ही वे आज मौजूद नहीं हैं, परन्तु अदृश्य रूप में वे सक्रिय हैं ही ।

यह सकल संघ का मिलन उसका प्रमाण है ।

पूज्य आचार्यश्री विजयजगवल्लभसूरिजी :

येन ज्ञानप्रदीपेन, निरस्याऽभ्यन्तरं तमः ।

ममात्मा निर्मलीचक्रे, तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥

धर्म चक्रवर्ती श्री महावीर स्वामी के प्रभाव से हम समतांगन में उपस्थित हुए हैं ।

सबको मैत्रीभाव से भावित करने हैं । अन्तरात्मा कहती है - किसी को मैत्री के लिए कहने की आवश्यकता नहीं है, मानो मैत्री प्रकट ही है ।

किसी भी क्षेत्र में मैत्री के बिना नहीं चलता । साधु-जीवन में भी मैत्री चाहिये । मित्र होंगे परन्तु मैत्री न हो तो ? मैत्री-रहित मित्र व्यर्थ हैं । पूज्य आचार्य भगवान् की अध्यक्षता में मैत्री का मंगल बनाते हुए अपनी आत्मा सम्यग्दर्शन की स्पर्शना करता

‘स्वामी तुम कोई कामना कीधुं, चित्तहुं अमरुं चोरी लीधुं...’

— पू. उपा. यशोविजयजी

‘प्रभु ! मेरे हृदय में कैसे आयेंगे ?’

‘तेरा हृदय कमल के समान कोमल बनेगा तब आऊंगा ।’

भक्त एवं भगवान का यह संवाद है ।

‘हृदय कमल में ध्यान धरत हूँ ।’

* अब प्रभु के शब्द सुनने नहीं हैं, पीने हैं, अस्तित्व में संभाल कर रखने हैं ।

चातक चाहे जितना प्यासा हो, वह नदी आदि का पानी नहीं पीता । क्योंकि उसके गले में छेद होता है, ऐसी प्राचीन कवियों की मान्यता है । वह जैसे वर्षा का पानी पीता है, उस प्रकार भक्त को यहां शब्दों को पीना है ।

हम तो वैखरी वाणी वाले हैं । परा वाणी के स्वामी पू. आचार्य भगवन् पू. कलापूर्णसूरिजी यहां बिराजमान हैं ।

व्याख्यान शब्द परमात्मा है ।

रूप परमात्मा तो यहां बिराजमान समस्त साधु-साध्वीजी भगवन्त हैं ही । हृदय को कमल के समान बना लें, प्रभु अवश्य आयेंगे ।

परम तपस्वी वर्धमान तप की १०० ओली के आराधक पूज्य आचार्यश्री नवरत्नसागरसूरिजी : सचमुच, आज मैं भाग्यशाली हो गया हूँ । चाहें तो भी इतनी त्यागी-संयमियों की संख्या कहां मिलेगी ? आज एक साथ सबके दर्शन हो रहे हैं, जो शासन के श्रृंगार स्वरूप अणगार हैं । वे भी ऐसे उत्तम क्षेत्र में !

अपना धंधा आदि छोड़कर आने वाले श्रावक-श्राविका भी उत्तमता की कोटि में पहुंचे हैं ।

समस्त दुःखों से मुक्त करने की शक्ति प्रभु के शासन में है । अनन्त मैत्री के स्वामी भगवान जगत् के समस्त जीवों को दुःख में से मुक्त करने के लिए करुणा भावना भाते हैं । जीव शासन-रसिक बने तो ही वह दुःख मुक्त बन सकता है ।

मैत्री किसे कहते हैं ? होटल अथवा उद्यान में दो-चार मित्र खा-पीकर आओ, क्या यह मैत्री कहलाती है ? वहां तो कर्मों के ढेर ही लगेंगे, वहां पुद्गलो का राग ही बढ़ेगा । आत्मा के

तीर्थकर-रूप संघ के दर्शन परम पुन्योदय से होते हैं ।

परम पुन्योदय से सभी धर्म-सामग्री प्राप्त हुई है । अब संकल्प करें कि मुझे कोई पाप नहीं करना है । 'सर्वपापव्यपासणो' मेरे नमस्कार से अनन्त-अनन्त पाप नष्ट होते हैं ।

कदाचित् कोई पाप हो जाये तो पश्चात्ताप करें । अइमुत्ताजी को पश्चात्ताप से केवलज्ञान प्राप्त हुआ था ।

कोई दुःखी मत बनो । जब तक संसार है तब तक दुःख है । दुःखमय संसार से जो मुक्त हो गये हैं वे सिद्ध हैं ।

'ओं ह्रीं नमो सिद्धांगं' का जाप करने से अनन्त सिद्धों को नमस्कार होता है ।

'जगत् के सभी जीव सर्व दुःखों से मुक्त हों ।'

जड़-राग एवं जीव-द्वेष ही अनादिकाल से हम करते आये हैं ।

एक साधकने ब्रह्मा को कहा - 'सुख प्राप्त हो वैसा कुछ दो ।'

ब्रह्मा ने कहा, 'ये दो गठरियां ले । एक में तेरे जीवन के पाप हैं । दूसरे में तेरे पड़ोसी के पाप हैं । तेरी गठरी आगे और पड़ोसी की गठरी पीछे रखना ।'

परन्तु नीचे उतरते समय गठरी आगे-पीछे हो गई ।

इस रूपक का चिन्तन कितना प्रेरक है ?

मनुष्य को सदा पड़ोसी के ही पाप दृष्टिगोचर होते रहते हैं, स्वयं के कदापि दृष्टिगोचर नहीं होते । पड़ोसी की गठरी आगे और स्वयं की पीछे हो गई है ।

ॐ ॐ ॐ

पूज्य मुनिश्री धुरन्धरविजयजी : एक अजैनों की बस्ती में रात को मेरा प्रवचन हुआ । प्रवचन पूरा हुआ तो भी कोई उठा नहीं । नौ से दस, दस से ग्यारह, ग्यारह से बारह बज गये ।

लोगों ने कहा, 'आप नहीं उठेंगे, तब तक हम नहीं उठेंगे ।'

अजैनों में भी इतना विनय हो तो हम जैनों में कितना विनय होना चाहिये ? अब आप में से कोई नहीं उठेगा, ऐसी मेरी अपेक्षा है ।

शान्ति-तुष्टि, पुष्टि पामो, जीवो पामो मंगलमाल ।
 आत्मिक ऋद्धि सिद्धि पामो, पामो सौए पद निर्वाण ॥
 मांडवगढ के मंत्री 'झांझण' एक लाख से भी अधिक संख्या
 में छ'री' पालक संघ के साथ सिद्धाचल आते हुए मार्ग में कर्णावती
 (अहमदाबाद) आये । राजा सारंगदेव ने कहा, 'मुख्य तीर्थ-यात्रियों
 को लेकर भोजन के लिए पधारें ।'

झांझण : 'राजन् ! यहां कोई मुख्य या साधारण नहीं हैं ।
 सभी स्वधर्मी समान हैं । एक को भी छोड़कर मैं नहीं आ सकूंगा ।'

उसके बाद सम्पूर्ण गुजरात को झांझण ने भोजन कराया ।
 भगवान भी कहते हैं : 'हे भाविक ! तू मेरा जाप तो करता
 है, परन्तु जाप सफल कब होता है जब सबके साथ मैत्री बनाये
 रखे ।'

'सवि जीव करं' (भवी जीव करं नहीं) इस प्रकार भगवान
 ने भावना भाई है । एक भी जीव बाकी होगा वहां मैं नहीं आ
 सकूंगा ।' इस प्रकार भगवान कहते हैं ।

'निन्नाणवे के साथ मैत्री रखूंगा, परन्तु एक के साथ तो नहीं
 ही रखूंगा ।' ऐसा भाव होगा तब तक चाहे चातुर्मास करो, तप
 करो, निन्नाणवे यात्रा करो, उपधान आदि सब कुछ करो, परन्तु आत्म-
 कल्याण नहीं होगा ।

'यहां से घर जायें, उससे पूर्व वैर का विसर्जन करके ही
 जायेंगे ।' यह निश्चय करके ही जायें । यदि एक भी जीव बाकी
 रखा तो भगवान की कृपा-वृष्टि नहीं होगी ।'

ऐसा माहौल देखकर हमारे पू. गुरुदेव (पू. आचार्यश्री गुणसागर-
 सूरिजी) याद आते हैं, जिन्होंने कहा था - 'जिनशासन में अनन्त
 शक्ति विद्यमान है, फिर भी वह परस्पर टकराने में नष्ट हो रही
 है । यदि सकल संघ एक होता हो तो मैं अपने गच्छ की सामाचारी
 या तिथि का आग्रह नहीं रखूंगा ।'

ऐसा मैत्रीपूर्ण वातावरण देखकर स्व. पूज्यश्री की आत्मा अवश्य
 प्रसन्न हो रही होगी ।

पूज्य आचार्यश्री विजयकलाप्रभसूरिजी : जिनेश्वर भगवान
 द्वारा कथित आनन्ददायक बातों का रस लिया, स्थिर आसन से,



प्रभु दर्शन में लीनता, कोडम्बतूर, वि.सं. २०५३

२३-७-२०००, रविवार

श्रा. कृष्णा-७

* हमारे पास इस समय न तो तीर्थकर हैं, न गणधर हैं या नहीं हैं पूर्वधर । आज हमारे पास दो ही आधार हैं - जिनमूर्ति एवं जिनागम ! जिनागम बोलते हुए तीर्थकर हैं, जिनमूर्ति मौन तीर्थकर हैं । मूर्ति भी भगवान हैं ! 'चउव्विह जिणा' में स्थापना के रूप में मूर्ति भी भगवान हैं । भाष्य में हम यह पढ़ ही चुके हैं ।

ऐसे जिनागमों का एक भाग आवश्यक सूत्र हैं । उनमें से एक सूत्र (नमुत्थुणं) की टीका यह 'ललित विस्तर' है ।

छः आवश्यकों में प्रथम सामायिक साध्य है । सामायिक के द्वारा समता मिलती है । समता के आनन्द की झलक के बिना मोक्ष के आनन्द की कल्पना कैसे कर सकेंगे ?

सामायिक के परिणाम बहुत दुर्लभ हैं, परन्तु निराश मत होना । उसे लाने वाले अन्य पांच 'चउव्विसत्थो' आदि पांच आवश्यक हैं ।

'आचारांग' का अधिकारी कौन है ? शीलाकाचार्य लिखते हैं - जिसने आवश्यक सूत्र, सूत्र, अर्थ तदुभय से भावित किये हुए हैं, जिसने सूत्रों के जोग कर लिए हैं, वह (साधु) इसका अधिकारी है । वही इसके रहस्य समझ सकेगा ।

जितने रहस्यमय शास्त्र हैं, उन अध्यात्म शास्त्रों में 'आचारांग' प्रधान है ।

* कर्म सुख दें तो भी विश्वास न करें । पुन्य के विश्वास पर भी रहने जैसा नहीं है । कर्म कब धोखा दें, यह कहा नहीं जा सकता ।

साधन का भी अभिमान नहीं करना है । उपशम श्रेणि पर चढ़े हुए श्रुतकेवली भी अनन्त काल के लिए निगोद में जा सकते हैं, गये हैं ।

* चार जिनों (नाम, स्थापना, द्रव्य एवं भाव-जिन) में इस समय भाव-जिन ही नहीं हैं । शेष तीनों की बराबर आराधना करें तो भाव-जिन मिलेंगे ही ।

* अर्थी अर्थात् केवल अभिलाषी ही नहीं, तीव्र अभिलाषी । रोग नष्ट करने की तीव्र इच्छा हो वैसे रोगी का ही 'केस' वैद्य हाथ में लें । उस प्रकार तीव्र अर्थी ही यहां अधिकारी गिना गया है ।

अर्थी वह कहलाता है जो सामने से दूढ़ता हुआ आये । हमें लाखों के समूह एकत्रित करके उनके मध्य जाना नहीं है । लोग दूढ़ते हुए आयें तब अभिलाषा प्रतीत होती है ।

कल ही यह बात होनी चाहिये थी, परन्तु पृष्ठ उलट जाने से बात रह गई । कोई चिन्ता नहीं । इसमें भी कोई अच्छा ही होगा । अधिक छानबीन होनी होगी ।

यह चैत्यवन्दन जिसे अचिन्त्य चिन्तामणि लगे वह सच्चा अर्थी है । हरिभद्रसूरिजी को अचिन्त्य चिन्तामणि लगा था । हमें लगता है क्या ?

लाखों भवों में एकत्रित किये हुए कर्मों से आये हुए दुर्भाग्य, दुर्गति आदि को उड़ा देने वाला यह चैत्यवन्दन है ।

ऐसा चैत्यवन्दन होते हुए भी विधि न अपनाई जा सके तो दुष्प्रयुक्त औषधि की तरह वह अकल्याणकर बनेगा ।

एक ही चैत्यवन्दन यदि लाखों, करोड़ों भवों के कर्मों को उड़ा देता हो तो आप साधु तो नित्य सात-सात चैत्यवन्दन करते हैं, कितने भाग्यशाली हैं ?

क्या चैत्यवन्दन विधिपूर्वक होता है ?

साधु सभा : प्रयत्न करेंगे ।

पूज्यश्री : गोचरी आने के बाद 'खाने का प्रयत्न करेंगे' ऐसा उत्तर देते हैं ?

यहां उत्कण्ठा हो, तड़प हो तो विलम्ब हो भी कैसे ?

औषधि विधिपूर्वक लें तो आरोग्य मिलेगा ही । यदि अविधि से लोगे तो आरोग्य होगा वह भी चला जायेगा । इसीलिए यहां विधि को महत्त्व दिया गया है ।

अंजार में डॉक्टर यू. पी. देढ़िया, हमारे परिचित थे । वे पूर्व अवस्था में चलती-फिरती होस्पिटल चलाते थे । (मोटर लेकर छोटे गांवों में जाते ।)

एक बार उन्होंने अपना स्वयं का अनुभव एक भाई को बताया : 'एक भाई को दिन में तीन बार पुड़ियें लेने का कहा । तीन दिनों के पश्चात् रोग नहीं मिटने पर पूछा, तब उसने बताया, 'श्रीमान् ! आपने कहा था न कि पुड़िया लेनी हैं । मैंने पुड़िया ली । भीतर का दवा का पाउडर फैक दिया ।'

चैत्यवन्दन में हम ऐसा तो नहीं करते न ?

प्रभु की भक्ति करने का भाग्य मिले कहां से ? देवचन्द्रजी के कथनानुसार अनन्त पुन्यराशि एकत्रित होने पर प्रभु-भक्ति करने की इच्छा होती है ।

* संयम में निश्चलता आयेगी तो गुरु के प्रसाद से ही आयेगी, भगवान की भक्ति से ही आयेगी ।

संयम तो लिया परन्तु अब आनन्द नहीं आता । कहां मुझे कुबुद्धि आई कि मैं ने दीक्षा अंगीकार कर ली ? ऐसा विचार करते हो तो सावधान हो जाना । संयम में आनन्द बढ़ता ही है । यदि नहीं बढ़े तो समझ लेना कि विधि में भूल हो गई हैं ।

'गर्म पानी पीने से कुष्ठ हो जाता है ।' ऐसी शंका एक कुष्ठ-ग्रस्त साध्वीजी को हुई । ऐसा नहीं होता न ? बड़ा भारी विघ्न है यह !

जब मैं राजनादगांव में था तब मेरे ही निकटस्थ व्यक्ति मुझे कहते : 'क्या करोगे वहां दीक्षा लेकर ? साधु तो डण्डे-डण्डे लड़ते हैं ।' मैं कहता : 'आप भला तो जग भला ।'

के लिए) तो तीन चौबीसी में (पू. यशोविजयजी, पू. आनंदधनजी, पू. देवचन्द्रजी की) भी आगम हैं। मुझे तो बड़ी उम्र में अधिक याद नहीं रहता, अतः मेरे लिए ये ही आधार हैं, ये ही आगम हैं।

पू. देवचन्द्रजी के स्तवन तो द्रव्यानुयोग एवं भक्ति का खजाना है।

* आप विद्वान वक्ता हैं, लाखों को पहुंचाने वाले हैं, अतः आपके पास बात करता हूं।

अनेक व्यक्ति कहते हैं : इन वाचनाओं में बोलने का रहने दें। श्रम पड़ेगा। परन्तु मैं कहता हूं : यह श्रम नहीं है। यही श्रम उतारने वाला है। अभी ही वाचना पूर्ण होगी और वासक्षेप लेने वालों की कतार लगेगी। वासक्षेप आदि में समय जाये उसकी अपेक्षा इसमें समय व्यतीत हो तो अधिक अच्छा है।

तदुपरान्त, चिन्ता किस बात की? ध्यान रखने वाले भगवान बैठे हैं।

पं. जिनसेनविजयजी म. : द्रव्यानुयोग का विचार कैसे करें?

पूज्यश्री : पूछा है तो संक्षेप में कह दूं : शुद्ध आत्म-द्रव्य अर्थात् परमात्मा। हम संसारी जीवों का अशुद्ध द्रव्य है, कर्म से लिप्त है। यदि भगवान का आलम्बन लेंगे तो अपना आत्म द्रव्य भी शुद्ध बनेगा।

पू. देवचन्द्रजी कहते हैं : जब तक मेरी शुद्धता नहीं होगी, तब तक तेरी शुद्धता का आलम्बन मैं छोड़ने वाला नहीं हूं।

‘सकल सिद्धता ताहरी रे, माहरे कारण रूप।’

जगतसिंह सेठ ने ३६० व्यक्तियों को करोड़पति बनाया था। जो आये उन्हें करोड़पति बनाये। भगवान हम सबको अपने समान करोड़पति से भी अधिक बनाना चाहते हैं। सेठ का धन तो घटता जाता है। यहां प्रभु के पास कुछ भी कम नहीं होता।

ॐ ॐ ॐ





बाएं से पू. देवेन्द्रसूरिजी, पू. कनकसूरिजी आदि

२४-७-२०००, सोमवार

श्रा. कृष्णा-८

* 'संसार में थोड़ा सा ज्ञान प्राप्त कर के 'फूलणजी' बनने वाले हम जैसों की दशा क्या होती ? यदि ये जिनागम हमें नहीं मिले होते ?' ये उद्गार श्री हरिभद्रसूरिजी के हैं ।

हमारी बुद्धि कूप-मण्डूक जैसी है । कुंए का मैदक कूद-फुदक कर कहता है - क्या आपका समुद्र इससे भी बड़ा है ? असम्भव, हो ही नहीं सकता ।

हमारी ऐसी तुच्छ बुद्धि है, फिर भी आश्चर्य तो देखो । तुच्छ बुद्धि का भी अभिमान कितना ? यह अभिमान ही हमें जिनागम समझने नहीं देता । स्व-बुद्धि के अहंकार का परित्याग किये बिना जिनागम कदापि समझ में नहीं आते ।

* अध्यात्म-तत्त्व के गहन अभ्यासी आनंदघनजी ने भी नौवे भगवान के स्तवन में पूजा की विधि बताई है । जिसमें उल्लेख है कि सच्चा अध्यात्म-वेत्ता कदापि प्रभु-पूजा की उपेक्षा नहीं कर सकता । जो उपेक्षा करता है वह अध्यात्म-वेत्ता हो ही नहीं सकता ।

इस अध्यात्म का वर्णन ग्यारवे स्तवन में आया है, जिसमें लिखा है कि जहां अध्यात्म होता है वहां कामनाएं समाप्त हो जाती हैं ।

‘ते केवल निष्कामी रे ।’

कामनाएं समाप्त हो जायें तो ही अपने नाम एवं रूप का प्रभु में विसर्जन हो सकता है तो ही ‘अहं’ का ‘अहं’ में विलय हो सकता है ।

भक्ति के बिना ज्ञान की सफलता नहीं है । महान विद्वान् जंबूविजयजी म. जिनका नाम आपने सुना ही होगा । वे आगमों के श्रेष्ठ सम्पादक-संशोधक के रूप में प्रसिद्ध हैं, परन्तु उनका प्रभु-प्रेम तो देखो ।

बीस माला गिने बिना कभी पञ्चवक्त्राण पारते नहीं ।

भक्ति-युक्त ज्ञान ही प्रवर्तक ज्ञान बन सकता है ।

भक्ति-रहित ज्ञान तो केवल अहंकार-पोषक एवं अहंकार-प्रदर्शक ही कहलाता है ।

* ‘सभी जीव मोक्ष में जायें, बाद में ही मैं मोक्ष में जाऊंगा । जगत् के समस्त जीवों के पाप मुझ में संक्रान्त हो जायें ।’ बुद्ध की ऐसी करुणा की बातों से ही सिद्धार्थ प्रभावित हो गये थे । उन्हें हुआ होगा - ‘अपने भगवान तो वीतराग हैं । हमें संसार में भटकते छोड़कर वे मोक्ष में चले गये । करुणा तो सचमुच बुद्ध की ही है ।’

इस प्रकार सोच-सोचकर इक्कीस बार बौद्ध भिक्षु बनने के अभिलाषी सिद्धार्थ गणि का मस्तिष्क ठिकाने लाने वाला यह ‘ललित विस्तरा’ है । यह ‘ललित विस्तरा’ इस समय वाचना में चलता है ।

प्रश्न : सम्पूर्ण विधिपूर्वक स्थान, वर्ण, अर्थ, आलम्बन आदि सहित चैत्यवन्दन करने वाले कितने हैं ? अतः अपवाद मार्ग से अविधि से चैत्यवन्दन हो तो क्या हर्ज है ?

उत्तर : भाई ! आप अपवाद-उत्सर्ग के सम्यग् ज्ञाता नहीं हैं । अपवाद किसे कहते हैं ? चाहे जिसे अपवाद नहीं कहा जाता । मार्ग पर चढ़ाये वह अपवाद कहलाता है, जो उन्मार्ग का पोषण करे उसे अपवाद नहीं कहा जाता । इस प्रकार तो अविधि की ही परम्परा चलेगी । अपवाद सदा अधिक दोषों की निवृत्ति के लिए होता है । जंगल में मुनि जाते हों, और उस समय दोषयुक्त गोचरी वापरनी पड़े तो अपवाद है, क्योंकि उपवास तो अधिक समय तक नहीं किये जा सकते ।

पूर्व के सत्त्वशाली मनुष्य के द्वारा सेवित एवं शुभ के अनुबंध वाला अपवाद होना चाहिये । चाहे जिस प्रवृत्ति को अपवाद नहीं कहा जा सकता ।

सूत्र को बाधा आती हो, हित-अहित या गुरु-लाघव का सोच न हो उसे अपवाद नहीं कहा जाता । ऐसा अपवाद तो भगवान तथा भगवान के शासन की अपभ्राजना करने वाला है ।

क्षुद्र सत्त्वों के द्वारा आचरित को अपवाद नहीं कहा जाता । छोटे से घास के तिनके अथवा पत्ते को तैरता देखकर उसके आलम्बन से आप तर नहीं सकते । उस प्रकार ऐसे क्षुद्र अपवाद से आप टिक नहीं सकते ।

* इस शासन की गम्भीरता को आप सोचे, शासन की गम्भीरता आप लोगों को भी बतायें ।

इसी ग्रन्थ में आगे आएगा - अभय, चक्षु, मार्ग, शरण अथवा बोधि भगवान के पास से ही मिलेंगे, अन्य कहीं से नहीं मिलेंगे - यह बात अच्छी तरह समझायेंगे ।

इस ग्रन्थ में एक ओर भगवान की करुणा को बताने वाले विशेषण आते जायेंगे । साथ ही साथ अन्य अन्य दार्शनिकों के कुमत्तों का खण्डन भी आता जायेगा ।

अन्य दर्शनों का निरुपण एकांगी होगा । यहां अनेकान्त होगा । यह बड़ा अन्तर होगा ।

जैन दर्शन इतना विशाल है कि संसार के समस्त धर्म समा जायें । एक ऋजुसूत्र नय में बौद्ध दर्शन का समावेश हो गया ।

इसीलिए जैन दर्शन राजा है । समस्त धर्मों का एक पुरुष बना लें तो सिर के स्थान पर जैन-दर्शन है । अन्य समस्त दर्शन हाथ-पैर, पेट आदि के स्थान पर हैं । नास्तिक दर्शन भी पेट के स्थान पर है ऐसा आनन्दधनजी ने कहा है । जैन-दर्शन विशाल समुद्र है, जहां समस्त धर्मों की नदियों का समावेश है ।

जैन-दर्शन माला है, जिसमें सर्व धर्म मणकों के रूप में पिरोये हुए हैं ।

परन्तु याद रहे - सागर में नदियां हैं, नदी में सागर नहीं हैं । माला में मणके हैं, मणके में माला नहीं है । जैन-दर्शन

में सब धर्म हैं, सब धर्मों में जैन-दर्शन नहीं है ।

ऐसे स्याद्वादमय जैन-दर्शन को कौन परास्त कर सकता है ? काशी में एक वादी को काशी का कोई विद्वान परास्त नहीं कर सका, परन्तु हमारे उपा. श्री यशोविजयजी ने उसे परास्त किया था ।

यह जैन-दर्शन की विजय थी ।

* क्षुद्र पुरुषों द्वारा किया हुआ अपवाद के रूप में नहीं लिया जाता । सत्त्वशालियों का आलम्बन लेना है । वज्रमुनि को विचलित करने के लिए उस देव ने भिन्न-भिन्न रूप करके कैसे प्रयत्न किये थे ? एक भी दोष नहीं लगने दिया । अतः प्रसन्न होकर देव ने उन्हें आकाशगामिनी तथा वैक्रिय लब्धि की विद्या प्रदान की । ऐसे सत्त्वशाली पुरुषों का आचरण प्रमाण गिना जाता है । ऐसे व्यक्तियों का आलम्बन लिया जाता है, क्षुद्र सत्त्ववालों का आलम्बन नहीं लिया जाता ।

* वज्र के अक्षरों से हृदय की तरखती पर एक पंक्ति लिख रखें, जो मैं बार-बार कहता हूँ -

‘प्रभु-पद बलग्या ते रह्या ताजा;

अलगा अंग न साजा रे ।’

जिस गुफा में सिंह होता है, वहां अन्य क्षुद्र प्राणी क्या आ सकते हैं ? जहां भगवान् बिराजमान हों, वहां क्या मोह आदि आ सकते हैं ?

भगवान् मोक्ष में गये अतः उनके अतिशय आदि भी चले गये, यह न मानें । उनकी शक्तियां आज भी कार्य करती हैं - नाम रूप में, तीर्थ रूप में ।

उनके शासन से ही तो हमें इतना मान मिलता है । दक्षिण में देखा दूर-दूर से हजारों मनुष्य दौड़े आते हैं । यह किसका प्रभाव है ? यह पूजातिशय भगवान् का नहीं तो किसका है ? क्या मेरा है ? भगवान् का यह प्रभाव इक्कीस हजार वर्षों तक ऐसा ही रहेगा ।

यहां ही देखो न ? इतने ठाणे हैं, फिर भी वस्त्र, आहार, वसति के सम्बन्ध में क्या किसी को कष्ट हुआ ? किसी को कष्ट हुआ हो तो बताना । क्या यह शासन का प्रभाव नहीं है ?

बीस वर्ष पूर्व यहां चातुर्मास में २४० साध्वीजी थीं । किसी को कुछ कहना न पड़े । वस्त्रों आदि का ढेर स्वयमेव लगता जाये । आधोई संघ जो मुख्य चातुर्मास कराने वाला था, उसे कुछ भी लाभ नहीं मिला ।

* आप असत्य नहीं बोलोगे तो आपके वचनों में वचन-सिद्धि लब्धि प्रकट होगी । आप किसी को पीड़ा हो वैसा व्यवहार मन, वचन, काया से नहीं करो तो उपशम की लब्धि प्रकट होगी । आप संयम का उत्तम प्रकार से पालन करो तो अनेक अद्भुत लब्धियां उत्पन्न होंगी, परन्तु सुनो । ये लब्धियां आपकी हैं यह मत मानना । यह भगवान का प्रभाव है, यह मानना ।

लोग कैसी हवा फैलाते हैं ? मुझे अवधिज्ञान हुआ है । ऐसी बात कर्णाटक, आन्ध्र, तामिलनाडु आदि राज्यों में बहुत ही फैल गई । कितने ही फोन आदि आये । मैं कहता हूं, ऐसा कुछ हुआ नहीं है ।

पू. हेमचन्द्रसागरसूरिजी : हुआ हो तो क्या पता ?

पूज्यश्री : हमें अवधिज्ञान हो या न हो, लोगों को पहले ज्ञान हो जाता है ।

एक उदाहरण बताता हूं । राजनादगांव में चतुर्थ व्रत ग्रहण किया, अतः लोगों ने अफवाह फैलाई - ये अक्षयराजजी तो दीक्षा लेने वाले हैं । उस समय दीक्षा लेने की बात मेरे मन में भी नहीं थी । दीक्षा की कोई बात ही नहीं थी । संयोग भी नहीं था, परन्तु दो वर्षों में ही दीक्षा ग्रहण करने के भाव जगे ।^१ उस समय कहता - 'आपकी बात सच्ची सिद्ध हो ।'

यहां भी ऐसा ही होगा न ? अभी नहीं तो अगले भव में । कभी तो केवल ज्ञान होगा न ? हमें नहीं होगा तो किसे होगा ?

अवधि ज्ञान नहीं, अनुभव ज्ञान हो ऐसी तमन्ना है; जिसे हरिभद्रसूरिजी ने संस्पर्श ज्ञान कहा है ।

अवधि ज्ञान की क्या बात करते हैं । केवल ज्ञानी के ग्रन्थ कण्ठस्थ हों तो अपने पास केवल ज्ञान है । आप अवधि ज्ञान की कहां कहते हैं ?

* सकल कुशल वल्ली बोलें, तब जगचिन्तामणि० चैत्यवन्दन

नहीं बोलते । क्या कारण है ?

पूज्यश्री : जगचिन्तामणि का भाव सकल कुशल वल्ली० में आ गया । यही कारण है । आप सोचोगे तब ध्यान आ जायेगा । अक्षर अर्थ की ओर ले जाते हैं, अभिधान, अभिधेय की ओर ले जाते हैं । यह नियम है, परन्तु आप तो जगचिन्तामणि आदि के अक्षर इतनी तीव्र गति से बोलते हैं कि अक्षर ही पकड़े नहीं जाते तो फिर अर्थ कहां से पकड़े जायें ?

गोचरी में आप जो जो नाम गिनाओ, वे वस्तुएं आपके पात्रों में आ जाती हैं कि नहीं ?

क्या नाम - नामी का सम्बन्ध समझ में आता है ? यहां जगचिन्तामणि० बोलते समय उस प्रकार के भगवान हमारे मानस-पटल पर क्यों न आयें ?

चिन्तामणि तो जड़ है । भगवान परम चैतन्यरूप हैं । यह भारी अन्तर है ।

ऐसे चिन्तामणि से क्या मांगोगे ?

‘सकल प्रत्यक्षपणे त्रिभुवन-गुरु, जाणूं तुज गुण ग्रामजी;
बीजुं कांई न मागूं स्वामी ! एहिज छे मुझ कामजी ।’

पू. देवचन्द्रजी महाराज की इस प्रार्थना में क्या बाकी रहा ? केवलज्ञान तक का आ गया ।

यह सब समझ कर यदि आप जगचिन्तामणि बोलेंगे तब अपूर्व भावोल्लास बढ़ेगा ।

‘भगवान जगन्नाह’ - भगवान जगत् के नाथ हैं उस प्रकार वे जगत् के गुरु भी हैं, जगत् के रक्षक भी हैं । (जग-रक्खण)

दुर्गति दुर्भाव से होती है । भगवान दुर्भावों को रोक कर हमें दुर्गति से बचाते हैं । इस तरह भगवान जगत् के बन्धु हैं । भगवान ठेठ मोक्ष तक पहुंचाने वाले सार्थवाह हैं । जग-सत्थवाह !

भगवान के संघ में एक बार आप जुड़ जायें । फिर मोक्ष तक का उत्तरदायित्व भगवान का ।

ॐ ॐ ॐ



दक्षिण भारत में प्रतिष्ठा

२५-७-२०००, मंगलवार

श्रा. कृष्णा-९

गुणों आदि के लिए पुरुषार्थ करने पर भी वह गौण है, भगवान की कृपा ही मुख्य है। भगवान की कृपा से ही वे गुण आते हैं।

देव एवं गुरु की कृपा भक्ति के अधीन है। गुरु की इच्छा नहीं होने पर भी शिष्य भक्ति के द्वारा उनकी कृपा प्राप्त कर सकता है। एकलव्य उसका उत्कृष्ट उदाहरण है। द्रोणाचार्य की कहां इच्छा थी ? फिर भी एकलव्य अर्जुन से भी बढ़कर तीरन्दाज बन गया।

‘पत्ते में ये छेद किसने किये ? भौकते हुए कुत्ते को किसने शान्त किया ?’ यह कार्य एकलव्य का है, यह जानकर द्रोणाचार्य को भारी आश्चर्य हुआ। ‘द्रोण गुरु की कृपा से ही मैं यह सीखा हूँ।’ यह उत्तर सुनकर तो द्रोण के आश्चर्य का पार न रहा।

यह हकीकत हम जानते हैं।

गुरु की आप सेवा करते रहें। गुरु कदाचित् अल्प ज्ञानी होंगे तो भी आप उनसे भी अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकोगे। गौतम स्वामी के पचास हजार शिष्य इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। गौतम स्वामी के पास कहां केवल ज्ञान था ?, फिर भी पचास हजार

शिष्य प्राप्त कर पाये न ?

गुरु के विनय से प्राप्त ज्ञान अभिमान उत्पन्न नहीं करता । जिस ज्ञान से अभिमान उत्पन्न हो, उसे ज्ञान कहा भी कैसे जाये ?

* 'ललित विस्तरा' ग्रन्थ की पात्रता के तीन गुण अवश्य याद रखें । यही उसकी नींव है । नींव में ये गुण न हों तो 'ललित विस्तरा' का श्रवण आपका उद्धार नहीं कर सकेगा ।

* संसार-रसिक जीव धर्म नहीं कर सकता । कदाचित् करे तो अपने भौतिक मनोरथ पूर्ण करने के लिए ही करेगा । भले ही वह शंखेश्वर जाये, महुडी जाये अथवा यहां आये, परन्तु उसके मन में संसार बैठा होगा । ऐसे जीवों को भवाभिनंदी कहा है । ऐसे जीव धर्म के लिए अपात्र हैं ।

जिसके कर्म क्षीण हो गये हों,

जिसके हृदय में शुद्ध आशय हो,

जिसका संसार के प्रति राग मन्द पड़ गया हो,

वैसे जीव ही इसके श्रवण के लिए योग्य हैं ।

भारी कर्म किया हुआ, मलिन-आशयी, संसार-रसिक जीव तो इसके लिए सर्वथा अनधिकारी हैं ।

ऐसे अपात्र जीव भगवान की शुद्ध देशना सुन ही नहीं सकते । शुद्ध धर्मदेशना अर्थात् सिंहनाद ! उसे सुनते ही हिरनों के समान संसार-रसिक जीव तो कांप ही उठते हैं । ऐसे लोग विधि की बात सुनते ही चौंक पड़ते हैं, धर्म करना ही छोड़ देते हैं । ऐसे करना, ऐसे नहीं करना, ऐसे बोलना, ऐसे नहीं बोलना, ऐसे बैठना, ऐसे नहीं बैठना, ये फिर क्या है ? हमारा इसमें काम नहीं है ।

भवाभिनंदी को आप विधि समझाने बैठें तो ऊपर बताये अनुसार सोच कर जो करते हों वह धर्म भी छोड़ देगा ।

योग्य जीवों के पास योग्य पुस्तकें आदि या योग्य प्रवचन आदि मिलने पर नाच उठें ।

* ज्ञान भण्डार में जो पुस्तकें है वे निरर्थक नहीं हैं । उनके योग्य कोई न कोई जीव इस विश्व में हैं ही । योग्य समय पर वे आ ही पहुंचेंगे । पुस्तकें स्वयं के योग्य पाठकों की प्रतीक्षा करती हुई भीतर बैठी हुई हैं ।

अपात्र को शास्त्र श्रवण कराना अर्थात् चढ़ते हुए ज्वर में औषधि देना । इस प्रकार औषधि दोगे तो उल्टी अधिक हानी होगी ।

जिसकी बुद्धि शान्त नहीं हुई, जो सतत उफान एवं विह्वलताओं में जी रहा है, उसके पास ऐसी बातें करना व्यर्थ है ।

ऐसे मनुष्यों के पास भगवान की कृपा अथवा करुणा की बातें करेंगे तो भी उल्टा अर्थ लगायेंगे - बैठे हैं न भगवान ! करेंगे यह सब ! भगवान करुणा के सागर हैं !

स्वयं निष्क्रिय होकर बैठ जायेंगे । उसके लिए भगवान की करुणा को आगे धरेंगे ।

भगवान की करुणा की बात करने का भगवान के भक्त के अतिरिक्त अन्य किसी को अधिकार नहीं है ।

* प्रभु का भक्त भगवान के मन्दिर में जाकर निसीहि पूर्वक समस्त सांसारिक प्रवृत्तियों का त्याग करके, तीन प्रदक्षिणा देकर, तीन बार भूमि को पूंजकर भगवान को गद्गद् होकर नमस्कार करता है ।

भक्ति का प्रकर्ष ऐसा बढ़ता है कि हृदय में भक्ति का सागर हिलोरे लेता है ।

चन्द्रमा को देखकर सागर उछलता है, उस प्रकार प्रभु को देखकर भक्त का हृदय उछलता है ।

‘जिन गुण चन्द्र किरण शुं उमद्गो, सहज समुद्र अथाग;
मेरे प्रभु शुं प्रगद्गो पूरम राग ।’

- उपा. यशोविजयजी

भक्ति की अधिकता से ऐसा वेग आये कि नेत्रों में से हर्ष के आंसू आयें ।

सम्पूर्ण देह रोमांचित हो उठे, साढ़े तीन करोड़ रोमावलि भगवान के नाम से खड़े हो जायें । आज भगवान की भक्ति करने का अवसर प्राप्त हुआ है । उनके चरणों में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है । कैसी दुर्लभ है यह भगवान के चरणों की सेवा ? मेरे जैसे रंक को यह प्राप्त हो गई ? मैं अपने भाग्य का क्या वर्णन करूं ? कितने ही भवों के पुन्य एकत्रित हुए होंगे तब ऐसे भगवान मिले हैं ।

मानो, चाहे न मानो, पूर्व के अनेक भवों की कमाई के रूप में ही ऐसा भव और ऐसे भगवान मिले हैं । यह निश्चित बात है । ऐसे भव का एक पल भी आप व्यर्थ न जाने दें ।

‘समयं गोयम मा पमायए’ यह सूत्र सदा याद रखें ।

चिन्तामणि, कल्पवृक्ष, इन्द्रत्व, चक्रित्व अथवा अन्य कुछ भी मिलना सरल है, परन्तु प्रभु की सेवा मिलना कठिन है ।

संसार अर्थात् भयंकर सागर, जिसमें मिथ्यात्व का जल भरा हुआ है । अनेक कदाग्रहों के मगरमच्छ आदि जलचर जीव हैं । ऐसे इस संसार में भगवान मिलें कहां से ?

ऐसे दुर्लभ मानव-भव का जीवन भी कितना चंचल है ? क्षण भर पूर्व खुली आंख क्षण भर के पश्चात् बंद भी हो जाये । किसे खबर है ? मद्रास में हम देखते कि कितने ही विचारे ‘हार्ट’ आदि के ओपेरेशन के लिए आते । छोटे बच्चों के भी ‘हार्ट’ के ओपेरेशन ! उसमें भी जीवन-मरण के मध्य झोले खाते मनुष्य ! देखकर आयुष्य की अनित्यता याद आती है ।

मेरी नित्य की आदत, वापरने से पूर्व जिनालय में जाकर चैत्यवन्दन करने की ! उससे पूर्व मैं वर्षादान की शोभायात्रा में गया । (भुज-वि. संवत् २०४६) मुझे कहां पता था कि अब मैं जिनालय में नहीं, होस्पिटल में होऊंगा ?

हजारों मनुष्य थे, परन्तु किसी को नहीं, मुझे ही गाय के कारण धक्का लगा, फ्रैकचर हुआ, गोला टूटा । मैं होस्पिटल में दाखिल हुआ । याद रहे - यह क्षण अपने हाथ में है । आगामी क्षण हाथ में नहीं है । जितना हुआ उतना अपना । अतः करने का शीघ्र कर लो ।

मद्रास में भी चले जाने जैसी दशा हो गई थी । ऐसी स्थिति में से बचानेवाला भगवान है । मैं तो यह मानता हूं । भगवान में मैं माता का स्वरूप देखता हूं । वह अपने बालक को कैसे दुःख होने दे ?

भगवान अपना सच्चा स्वरूप भक्त को ही बताते हैं । भक्त के बिना भगवान एवं भक्ति की बात दूसरे को समझ में ही नहीं आती । उसे तो नशा अथवा पागलपन ही लगता



११ दीक्षा प्रसंग, भुज, वि.सं. २०२८, माघ शु. १४

२६-७-२०००, बुधवार

श्रा. कृष्णा-१० : सात चौबीसी धर्मशाला

सामुदायिक 'अरिहंत पद' जाप,

पू. हेमचन्द्रसागरसूरिजी : पूज्य आचार्यश्री विजयकलापूर्णसूरिजी बराबर समय पर आ गये हैं। मंत्र-ग्रहण का समय हो चुका है।

चलो, सब साथ बोलें :

जो शक्ति मुजने मले, आपुं सौने सुख;

कर्मना बंधन टाळीने, कापुं सहुना दुःख ॥ १ ॥

मुजने दुःख आपे भले, तो पण खमुं तास;

सुख पीरसवा सर्वने, छे मारो अभिलाष ॥ २ ॥

जगना प्राणीमात्रने, व्हाला छे निज प्राण;

माटे मन-वच-कायथी, सदा करुं तस त्राण ॥ ३ ॥

आशीर्वाद मुजने मळो, भवो भव ए मुज भाव;

त्रस-स्थावर जीवो बधा, दुःखीया को नव थाव ॥ ४ ॥

भवोभव ए मुज भावना, जो मुज धार्युं थाय;

तो श्रीजिनशासन विषे, स्थापुं जीव बधाय ॥ ५ ॥



भुज चातुर्मास, वि.सं. २०४३

२६-७-२०००, बुधवार
श्रा. कृष्णा-१०

* जिनागम में प्रत्येक सूत्र अनन्त अर्थपूर्ण होता है। क्या बात मस्तिष्क में बराबर नहीं बैठती ? अनेक व्यक्तियों को मस्तिष्क में नहीं बैठती। पंजाब में व्याख्यान-दाता समयसुन्दरजी की इस बात में वहां के श्रोताओं को विश्वास नहीं हुआ, तब उन्होंने ने दूसरे दिन एक ही वाक्य के आठ लाख अर्थ करके बताये। आज भी वह अष्टलक्षी ग्रन्थ विद्यमान है। 'राजानो ददते सौख्यम्।' उक्त ग्रन्थ में इस वाक्य के आठ लाख अर्थ हैं।

सामान्य वाक्य के भी आठ लाख अर्थ होते हैं तो भगवान की वाणी के अनन्त अर्थ क्यों नहीं हो सकते ?

गम्भीर अर्थों से परिपूर्ण ऐसे जिनागम मिलने पर कितना आनन्द होना चाहिये ?

'नमस्कार-स्वाध्याय' नामक पुस्तक में 'नमो अरिहंताणं' के १०८ अर्थ किये हुए हैं, पढ़ लें।

* चैत्यवन्दन नित्य सात बार करते ही हैं, परन्तु क्या यहां लिखे भाव हृदय में जगते हैं ? मैं कहता हूं - मेरे हृदय में ऐसे भाव नहीं जगते। श्री हरिभद्रसूरिजी अजैन कुल में उत्पन्न हुए

थे फिर भी उन्हें ऐसे भाव आते थे ।

इसीलिए उन्होंने ने लिखा - चैत्यवन्दन करते समय आंखों में से हर्ष के आंसू न आयें तो समझें कि अभी तक मेरी भक्ति अधूरी है । शोक, दीनता आदि के कारण अनेक बार आंसू गिर चुके हैं । क्या भक्ति के कारण कभी आंसू गिरे हैं ? यदि भगवान के प्रति अगाध प्रेम हो तो ही ऐसा संभव है ।

हरिभद्रसूरिजी को दीक्षा ग्रहण नहीं करनी थी, फिर भी ले ली । गुरु ने योग्यता देखकर उन्हें दीक्षा प्रदान कर दी । फिर भी उन्हें प्रभु के प्रति अपूर्व प्रीति जगे और हम प्रभु-प्रेम से लाखों योजन दूर रहें, यह कैसा ?

* मन प्रसन्न न हो तो कृपा करके मन्दिर न जायें, अन्यथा गुरु के समक्ष चाहे जैसे बोल देते हो, उस प्रकार कभी भगवान के समक्ष भी बोल जाओगे ।

प्रसन्न चित्त के बिना प्रभु-भक्ति नहीं होती । साथ साथ यह भी समझ लें कि प्रभु की भक्ति के बिना चित्त की प्रसन्नता भी नहीं मिलेगी ।

प्रश्न यह उठता है कि चित्त प्रसन्न हो तो भक्ति हो सकती है या भक्ति करें तो चित्त प्रसन्न बनता है ?

दोनों परस्पर सापेक्ष हैं । सामान्यतः चित्त प्रसन्न हो तब ही प्रभु की भक्ति करने से चित्त विशेष प्रसन्न होता है । अत्यन्त कलुषित मन प्रभु-भक्ति में एकाकार नहीं बनता ।

गृहस्थों के लिए इसी लिए द्रव्य-पूजा आवश्यक है । अनेक आरम्भ-समारम्भों, धन्धे से चित्त व्यग्र बना हुआ हो, द्रव्य-पूजा करते-करते मन तनिक निर्मल बनता है । उसके बाद चैत्यवन्दन में मन लगता है । इसी कारण से आनन्दधनजी ने नौवे स्तवन में द्रव्य-पूजा की बात की होगी न ?

चैत्यवन्दन करते समय स्वाध्याय बिगड़ता है, यह कदापि न मानें । स्वाध्याय के द्वारा आखिर यही करना है । समय बिगड़ता नहीं है, परन्तु सफल होता है, यह मानें ।

चैत्यवन्दन करते समय अन्य समस्त कर्तव्यों का त्याग चाहिये । गृहस्थों को धन्धे आदि के विचार नहीं करना चाहिये । साधुओं

को वसति आदि के विचार नहीं करने चाहिये । मन पूर्णतः भगवान में लीन चाहिये ।

श्री हरिभद्रसूरिजी ने लिखा है : 'न च अतः परं कृत्यमस्ति ।' चैत्यवन्दन से बढ़कर अन्य कोई कार्य विश्व में नहीं है ।

गृहस्थों को प्रधानमंत्री का पद प्राप्त हो जाये तो कितने प्रसन्न हों । उससे भी अधिक आनन्द यहां होना चाहिये । सत्ता के सिंहासन पर बैठने के आनन्द की अपेक्षा भगवान के चरणों में बैठने का आनन्द बढ़कर है । इसीलिए भक्त चक्रवर्ती बनने की इच्छा नहीं करता, परन्तु वह भगवान का सेवक बनने की इच्छा करेगा ।

संसार की सेवा तो बहुत की, अब प्रभु की सेवा करनी है ।

अभी आपणंदजी कल्याणजी पेढ़ी के समस्त कर्मचारी (पुजारी) आदि आये थे तब मैंने कहा था - 'किन्हीं बड़े सेढ़ों को भी न मिले ऐसा महत्त्वपूर्ण कार्य (आजीविका चलाने का धंधा) आपको मिला है । अत्यन्त पुन्योदय मानकर ये प्रभु की पूजा आदि के कार्य करें ।

उन्होंने उत्तर दिया : गुरुदेव ! अब हम ऐसा (हडताल करने का) कदापि नहीं करेंगे ।

* किसी भव में साथ न छोड़ें ऐसे मित्र, साथी, बन्धु अथवा रिश्तेदार भगवान के अतिरिक्त अन्य कोई है ?

अतः आनंदधनजी ने कहा है :

'ऋषभ जिनेश्वर प्रीतम माहरो रे, और न चाहूं रे कंत ।'

यहां चेतना ही अपने चेतन को कहती है, अब तो बस मेरे एक ही पति हैं, परमात्मा ! मुझे अब अन्य कोई कन्त नहीं चाहिये; क्योंकि इन परमात्मा का ही साथ ऐसा है जो कदापि छूटता नहीं है ।

ऐसा प्रेम जगे तो भक्ति जगे बिना नहीं रहेगी ।

सबका मूल प्रभु-प्रेम है । प्रीतियोग का विकास ही भक्ति-योग है । उसका विकास वचन एवं उसका विकास असंग योग है । भक्ति, वचन और असंग में प्रेम नहीं है, ऐसा नहीं माने । कमशः प्रेम वहां बढ़ता ही जाता है ।

भगवान के समान प्रेम अन्य कहीं भी न हो वह प्रीतियोग है । धन, शरीर, मकान, कीर्ति, शिष्य आदि समस्त पदार्थों से बढ़ जाये वैसा प्रेम प्रभु के प्रति होना चाहिये । यदि अन्यत्र प्रेम होगा तो भगवान नहीं आयेंगे । भगवान कदाचित् सोचते होंगे कि भक्त को अभी भटकना है, भटकने दो । थक कर आयेंगे तब बात ।

हम दोनों ओर प्रेम रखते हैं । दूध तथा दही में, संसार में तथा भगवान में प्रेम रखते हैं । इस प्रकार भगवान नहीं मिलते ।

मैं इतना कहता हूँ फिर भी आप में प्रभु-प्रेम प्रकट नहीं होता हो तो उत्तरदायित्व मेरा नहीं है । नहीं कहूँ तो उत्तरदायित्व मेरा, परन्तु कहने के पश्चात् भी आपमें परिवर्तन नहीं आये तो मैं क्या कर सकता हूँ ? जमालि एवं गोशाला के लिए भगवान भी क्या कर सके थे ?

* हमारे फलोदी में बिच्छु बहुत होते हैं । उसमें भी हमारा मकान अर्थात् बिच्छुओं का ही मकान । मेरे पिताजी नित्य बाल्टी में दस-पन्द्रह बिच्छु एकत्रित करके जंगल में छोड़ आते थे । एक बार बनियान उतार कर मैं 'स्थंडिल' गया था । लौटने के पश्चात् बनियान पहना और भुझे काटे जैसा लगा । देखा तो एक बड़ा बिच्छु था । संभाल कर उसे मैं ने बाहर रखा । उन तीस वर्षों में भुझे कदापि बिच्छु काटा नहीं ।

यह जीव दया का प्रभाव है । यदि हमारा अन्तःकरण जीवों की दया से परिपूर्ण हो तो कौन क्या कर सकता है ?

* मेरी इतनी बात तो मानो - चैत्यवन्दन तो शान्तिपूर्वक करो । मैं अनेक व्यक्तियों को पूछता हूँ - चैत्यवन्दन में कितना समय निकाला ? केवल १०-१५ मिनट ?

इधर-उधर की प्रवृत्तियों में तो अपना बहुत समय जाता है, परन्तु चैत्यवन्दन जैसी महत्त्वपूर्ण वस्तु के लिए हमें समय नहीं है । सचमुच तो चैत्यवन्दन हमें महत्त्वपूर्ण नहीं लगता होगा ।

कदाचित् ऐसा हो, जिन्दगी अधिक लम्बी प्रतीत होगी । मेरे जैसे वृद्ध के लिए आवश्यक होगा, आप युवानों को आवश्यक नहीं लगता होगा, या तो स्वर्ग अथवा मोक्ष निश्चित होगा, अन्यथा इतना प्रमाद किस कारण होगा ?

हंसने की बात नहीं है । आप सब सोचते हैं - महाराज दूसरों को कहते हैं, मुझे नहीं कहते । 'मुझे ही कहते हैं' ऐसा लगे तब ही परिवर्तन संभव होगा ।

छोटे थे तब माता को कितना कष्ट दिया था ? खेलने में इतने तल्लीन रहते कि भोजन करने जायें वे दूसरे । मां जबरजस्ती खींच कर लाती और भोजन कराती, वह याद है न ?

श्री हरिभद्रसूरिजी यहां माता बन कर आते हैं और कहते हैं, बालको ! समझो । बहुत खेले । अब महत्त्व का कार्य कर लो । इससे अधिक महत्त्व का अन्य कोई कार्य नहीं है । 'न चाऽतः परं कृत्यमस्ति ।'

* चैत्यवन्दन को, भक्ति को गौण करके ध्यान, काउस्सग करके देखो और भक्ति को मुख्य मानकर ध्यान काउस्सग करके देखो । दोनों में अन्तर होगा । भक्ति के बिना ध्यान काउस्सग सफल नहीं हो सकता ।

ध्यान किस का करे ? काउस्सग किसका करें ? लोगस्स (चउविसत्थो) में भक्ति ही है न ?

सम्यक् सामायिक भक्ति स्वरूप है ।

चारित्र सामायिक ध्यान स्वरूप है ।

गुरु, शास्त्र, भगवान या भगवान के उपदेश आदि के बिना सीधी ही सामायिक मिल जाती होती तो शेष पांच आवश्यक भगवान ने बताये ही नहीं होते । सामायिक प्राप्तव्य है, यह सही है, परन्तु वह मिलता है भगवान एवं गुरु की भक्ति के द्वारा ही ।

'मुझे भक्ति के द्वारा ही मिला है । आपको भी उसके द्वारा ही मिलेगा ।' इस प्रकार भगवान स्वयं जीवन के द्वारा कहते हैं -

भगवान ने स्वयं पूर्व के तीसरे भव में भक्ति के द्वारा ही प्राप्त किया है ।

धूमधाम से अथवा भाषणबाजी से तीर्थ नहीं टिकता, सामायिक-भाव से टिकेगा ।

मोहराजा आपके बड़े 'डांडे' से नहीं डरेगा । आपके भीतर हुए शुद्धात्मा के संस्पर्श से वह डरेगा । यह सोंचे ।



तीर्थमाल, शंखेश्वर, वि.सं. २०३८

२७-७-२०००, गुरुवार
श्रा. कृष्णा-११

(सामूहिक वाचना, समस्त समुदायों के पूज्यों का आगमन)

* अभिमानी इन्द्रभूति गौतम के अभिमान का विष नष्ट कर के उनमें विनय का अमृत सिंचन करने वाले भगवान महावीर स्वामी की करुणा-शक्ति का क्या वर्णन करें ?

* इन्द्रभूति के साथ उनके ५०० शिष्य भी साथ ही दीक्षित हुए । उनका स्वयं का गुरु के प्रति समर्पित भाव कैसा होगा ?

* परमात्म-गुणगान मंगलरूप है । उस गुण-गान में उपसर्गों को दूर करने की तथा चित्त को प्रसन्न करने की शक्ति है ।

* प्रीति आदि चारों अनुष्ठानों में उत्तरोत्तर प्रभु-प्रेम बढ़ा हुआ प्रतीत होगा । ज्यों ज्यों प्रेम बढ़ता जायेगा, त्यों त्यों प्रीति ही भक्ति में बदल जायेगी । भक्ति ही आज्ञा-पालन में परिवर्तित होगी और आज्ञा-पालन (वचन) ही असंग में रुपान्तरित होगा ।

असंगयोग प्रभु-प्रेम की पराकाष्ठा है, क्योंकि वहां प्रभु के साथ एकता हो गई है ।

प्रभु के प्रति बहुमान से ही इन्द्रभूति आदि गणधर प्रभु से प्राप्त कर सके थे ।

भगवान की प्रीति निष्काम होनी चाहिये । आनंदघनजी के शब्दों में कहें तो निरुपाधिक होनी चाहिये ।

भगवान का प्रेम ज्यों ज्यों बढ़ता जाता है, त्यों त्यों हम वैसे बनते जाते हैं । 'उत्तम संगे रे, उत्तमता वधे ।'

पू. आचार्यश्री नवरत्नसागरसूरिजी : ज्ञान की अपेक्षा भक्ति योग बढ़कर है ?

पूज्यश्री : भक्ति के बिना ज्ञान अहंकार करेगा । अच्छा व्याख्यान दिया, अच्छी स्तुति बोली अथवा कोई भी श्रेष्ठ कार्य किया वह अभिमान का कारण बन जायेगा । ज्ञान का इनकार नहीं है, परन्तु तुलना करने में भक्ति पहले हो । किसी का भी वर्णन चल रहा हो तब अन्य को गौण समझें, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि इसकी सर्वथा उपेक्षा करें ।

पू. आचार्यश्री नवरत्नसागरसूरिजी : भगवान की सर्वज्ञता ने ही इन्द्रभूति को आकर्षित किया था ।

पूज्यश्री : इसका इनकार नहीं है, परन्तु भगवान में रहे हुए अन्य गुण, गुणों के प्रति जागृत प्रेम भी कारण है न ?

* भगवान चार रूपों में हैं : नाम-स्थापना आदि के रूप में, उपासना करके, भाव रूप में हृदय में भगवान को प्रकट करना है ।

श्री ज्ञानविमलसूरिजी कहते हैं :

'नामे तू जगमां रह्यो, स्थापना पण तिमही;

द्रव्ये भवमांहि वसे, पण न कले किमही ।'

भावपणे सवि एक जिन, त्रिभुवन में त्रिकाले ।'

हम मानते हैं कि भगवान मोक्ष में गये, परन्तु ये महापुरुष हमें सान्त्वना देते हुए कहते हैं कि भगवान नाम आदि के रूप में यहीं पर हैं । चिन्ता क्यों करते हैं ?

तपागच्छ के आद्य महात्मा आचार्यश्री जगच्चन्द्रसूरिजी के शिष्य शासन को समर्पित आचार्यश्री देवेन्द्रसूरिजी भी स्व-रचित चैत्यवन्दन भाष्य में कहते हैं कि - 'नाम जिणा जिणानामा'

पू. आचार्यश्री नवरत्नसागरसूरिजी : समवसरण में देशना देते हैं तब ही भाव भगवान कहलाते हैं ?

करने के लिए अन्य पांच आवश्यक बताये हैं । सामायिक रूपी साध्य को सिद्ध करने के लिए अन्य पांच साधन हैं ।

देव के पास से दर्शन,

गुरु के पास से ज्ञान,

धर्म के पास से चारित्र मिलता है ।

ये देव आदि तीनों क्रमशः छःओं आवश्यकों में दिखाई देते हैं ।

सामायिक के परिणाम चउविसत्थो के द्वारा ही प्रकट होते हैं, प्रभु के आलम्बन से ही प्रकट होते हैं । अतः सामायिक के पश्चात् चउविसत्थो आवश्यक है । अतः दीक्षा देते समय सीधा ही ओघा (रजोहरण) न देकर उससे पूर्व देववन्दन कराते हैं ।

भक्ति जितनी सुदृढ होगी, सम्यग्दर्शन उतना ही शीघ्र प्राप्त होगा । यदि प्राप्त हो गया होगा तो भक्ति से अधिक निर्मल बनेगा ।

कल जो सामूहिक जाप किया था वह प्रभु-भक्ति ही है ।

यह पदस्थ ध्यान है -

पदस्थ ध्यान में प्रभु-नाम,

रूपस्थ ध्यान में प्रभु-मूर्ति,

पिण्डस्थ ध्यान में प्रभु की अवस्थाएँ,

रूपातीत ध्यान में प्रभु की सिद्ध अवस्था का ध्यान करना है ।

* भाव-तीर्थकर भी दो प्रकार के हैं -

एक तो साक्षात् भगवान स्वयं,

दूसरा भगवान के उपयोग में रही हमारी आत्मा ।

* प्रभु का नाम जपते रहें उस प्रकार प्रभु के सान्निध्य का अनुभव होगा ।

नाम ग्रहंता आवी मिले, मन भीतर भगवान ।

नाम के साथ एकाग्र बनने से प्रभु के सामीप्य का अजैन मीरा, रामकृष्ण अथवा नरसी भगत को अनुभव हुआ है । प्रभु-नाम के अतिरिक्त उन्हें कौन सा आधार था ?

प्रभु के हजारों नाम हैं । किसी भी नाम से प्रभु को जपो, प्रभु उपस्थित हो जायेंगे ।

हूँ। आप विद्वान् वक्ता हैं। हजारों व्यक्तियों को यह बात पहुँचायेंगे, ऐसा विश्वास है।

सर्व प्रथम हृदय को मैत्री एवं भक्ति से भावित बनायें, फिर सकल संघ में इस बात का प्रचार करें।

* प्रभु के नाम आदि का आलम्बन हम लें, पवित्रता का संचार भगवान् करेंगे।

जल का स्वभाव है, सफाई करने का।

प्रभु का स्वभाव है, पवित्रता फैलाने का।

(पूज्यश्री के जाने के पश्चात्)

पू. मुनिश्री धुरन्धरविजयजी म. :

* पूज्यश्री ने आनन्द-दायक बातें कही। कदाचित् किसी को नहीं भी सुनाई दी हों। प्रभु के साथ एकता करनेवाले के अश्राव्य शब्द भी प्रभाव डालते ही हैं। अश्राव्य ध्वनि के तरंगों का भी प्रभाव होता है। मेरे गुरुदेव पू.पं. भद्रंकरविजयजी म. तथा पूज्यश्री का मुख्य स्वर यही है, इतने वर्षों की साधना के पश्चात् भी इतने हताश क्यों? स्वयं को हलकी दृष्टि से क्यों देखना? कारण यह है कि प्रभु के धर्म के साथ सम्बन्ध हुआ नहीं है। क्रिया करते हैं। उसके द्वारा धर्म प्राप्त करना है, परन्तु गर्व है कि मैं धर्म करता हूँ। धर्म मैं क्या करूँ? प्रभु कराता है।

धर्म हमसे उत्पन्न नहीं होता, इसीलिए धर्म प्रभु का है, अपना नहीं। अपना धर्म नहीं, प्रभु का धर्म कल्याण करता है।

यह बात समझनी है।

तृप्ति मिले यह अपनी क्रिया का फल है या अन्न का फल? स्पष्ट बात है कि अन्न का फल है। हाथ-मुँह की क्रिया का फल नहीं है। प्यास बुझाने का स्वभाव जल का है, अपनी क्रिया का नहीं।

क्रिया अपनी परन्तु कर्तृत्व पानी आदि का है।

क्रिया अपनी है परन्तु धर्म प्रभु का है।

जब तक अपनी प्रधानता है तब तक धर्म नहीं मिलेगा। प्रभु की प्रधानता के पश्चात् ही धर्म मिलेगा।

भूर्ति घड़नेवाले हम हैं, परन्तु फिर परम-तत्त्व का फल प्रभु

पूज्यश्री इसीलिए यह सब कहते हैं -

* भक्ति के द्वारा प्रभु को और मैत्री के द्वारा प्रभु के समस्त जीवों को स्वीकार करो। भगवान के जीवों को नहीं स्वीकार करें, वह भी नहीं चलेगा। परिणीता स्त्री पति को ही स्वीकार करती है, दूसरों को स्वीकार नहीं करे वह नहीं चलता।

प्रभु ने जिन्हें निज स्वरूप में देखा, उन जीवों को स्वीकार नहीं करो तो नहीं चलेगा। जब धर्म होता है तब तू (प्रभु) ही होता है।

* प्रभु कहां नहीं है ? नाम आदि के रूप में सर्वत्र है। एक भी आकाश-प्रदेश ऐसा नहीं है जहां अनन्त द्रव्य-अरिहंत न हों। निगोद में विद्यमान अनन्त जीव अरिहंत बनने वाले ही हैं। सभी पास ही हैं। आप जब उस स्वरूप में स्वीकार करो तब - वे कार्यकारी बनते हैं। मूर्ति को जब भगवान के रूप में स्वीकार करो तब वह कार्यकारी बनती है। उस प्रकार चारों ओर अरिहंतों के मध्य हम हैं।

आपके गुणों की वृद्धि करनी भगवान का स्वभाव है। कमल के विकास का स्वभाव जैसे सूर्य का है।

शरीर, उपकरण आपके परन्तु शक्ति उनकी (प्रभु की) जिसकी शक्ति हो उन्होंने ने ही कार्य किया कहलाता है। मुंबई आप गये, परन्तु आप गये या गाड़ी गई ? मुख्य कौन ? गाड़ी या आप ? गाड़ी के स्थान पर आप प्रभु को देखें।

गाड़ी में बैठे उन सबको मोक्ष में ले जाने का उत्तरदायित्व भगवान का है।

यही शरणागति है। कुछ भी अच्छा हो जाये तो तुरन्त ही 'मैंने किया' भाव आ जाये।

'तूने क्या किया ?' तेरे माध्यम से भगवान ने किया। तू क्या दर्शन करेगा ? भगवान ही भगवान को देखता है। हमारे भीतर रहे हुए भगवान ही भगवान को देखते हैं।

पूजा भी प्रभु की प्रभु ही करते हैं। अशुद्ध चेतना प्रभु की पूजा नहीं कर सकती। राजा भिखारी को क्या गोद में बिठायेगा ? आप स्वयं स्वयं को अशुद्ध करते हैं, अशुद्ध मानते हैं।

कर्तृत्व भाव के कारण हम अशुद्ध बनते हैं, प्रभु अशुद्ध नहीं बनते ।
मात्र बोलने के लिए नहीं, परन्तु हृदय से यह स्वीकार करना है ।

पू. आचार्य भगवंत तो स्पष्ट कहते हैं : मैं क्या बोलूंगा ?
भगवान मुझ से बुलवाते हैं । गाड़ी की क्या शक्ति ? चलानेवाला
इइवर है ।

धर्म की स्खलनाएं अपनी, धर्म प्रभु का !

शुद्ध धर्म का प्रारम्भ कराने के लिए ही इस आयु में
पूज्यश्री इतना परिश्रम उठाते हैं । आज पूज्यश्री की आवाज
भारी थी, क्योंकि भगवान बोलते थे ।

गुरु भगवत्-रूप बनते हैं तभी गुरु बनते हैं । प्रभु उनके
भीतर आये तो ही वे शुद्ध धर्म बता सकते हैं । अन्यथा 'अहो
रूपम् अहो ध्वनिः' जैसी ताल होगी ।

गुरु-शिष्य दोनों परस्पर प्रशंसा करते रहते हैं ।

चित्त की प्रसन्नता प्रभु के प्रविष्ट होने का चिन्ह है । यही
अनुभव कर्तृत्व-भाव हरता है ।

ॐ ॐ ॐ

पूज्यश्री (आचार्यश्री विजयकलापूर्णसूरिजी) ने एक
बार ज्ञानसार के शमाष्टक के सार स्वरूप कहा कि आत्मा
ज्ञान स्वरूप है । उस ज्ञान के प्रकट होने पर उसकी
परिपक्वता के रूप में आत्मा समतामय बनती है, क्योंकि
आत्मा जैसी ज्ञान स्वरूप है, वैसी समता रूप है ।
दोनों गुण अभेद बनते हैं तब जीव सच्चिदानन्द स्वरूप
में प्रकट होता है ।

- सुनन्दाबेन बोरा



पट्टधर के साथ

२८-७-२०००, शुक्रवार

श्रा. कृष्णा-१२

* साक्षात् तीर्थंकर मिले हों वैसा आनन्द जिनागम पठन से होता है, जिन मूर्ति के दर्शन करने से होता है, क्योंकि जिनागम एवं जिनमूर्ति भगवान के ही रूप हैं ।

भगवान के समवसरण में भी तीन बिम्ब मूर्ति के ही हैं । वहां समवसरण में बैठे हुए लोग मूर्ति नहीं, भगवान के रूप में ही उसे देखते हैं ।

* नाम जिनकी स्तवना गणधरों ने सर्व प्रथम लोगस्स के द्वारा की है। 'अभिथुआ' अर्थात् सामने बिराजमान भगवान की स्तवना की ।

'जय वीयराय !' हे भगवन् ! तेरी जय हो, ऐसा तब ही बोला जा सकता है जब भगवान सामने हैं ऐसा लगता हो ।

* पुक्खरखदी० वैसे तो श्रुतस्तव है, फिर भी पहले गाथा में श्रुत की नहीं, ढाई द्वीप में विद्यमान भगवान की स्तुति की है जो बताती है कि श्रुत एवं भगवान भिन्न नहीं हैं ।

श्रुत अर्थात् भगवान ।

श्रुत को आगे किया अर्थात् भगवान को ही आगे किया कहा जाता है ।

शास्त्रे पुरस्कृते तस्माद्०

पं. वीरविजयजी म. कहते हैं :

‘जिनवर जिनागम एक रूपे, सेवंता न पडो भव-कूपे ।’

यह पंक्ति तो सबको याद है न ?

यह सब आप मात्र सुनते हैं या याद रखकर भीतर उतारते हैं ? दुकान पर आकर केवल माल देख कर जानेवाले ग्राहक क्या आपको पसन्द आते हैं ?

अन्य कुछ नहीं तो श्रद्धा तो बढ़ती है न ? श्रद्धा बढ़ जाये तो भी प्रयास सफल है ।

* इस ‘ललित विस्तरा’ में अद्भुत भाव भरे हुए हैं । दिन में सात बार ‘नमुत्थुणं०’ बोलते ही हैं । यह पढ़ेंगे तो बोलते समय अहोभाव बहुत ही बढ़ेगा ।

इस नमुत्थूणं में नौ सम्पदाएं हैं । सम्पदाओं का अर्थ मात्र विश्राम स्थान नहीं है, परन्तु भगवान की परोपकार आदि सम्पदाओं को बतानेवाले भी हैं ।

चाहे जिसकी स्तुति नहीं की जाती । दोषी-पापी की स्तुति करोगे तो उनके दोषों की पापों की अनुमोदना हो जायेगी । जगत् में सर्वोत्कृष्ट गुणवान् एक मात्र भगवान है । उनकी यहां स्तुति है ।

स्तुति करने वाले गणधर जानते हैं - हम तो दोषों के ढेर से युक्त थे । हमारे दोषों को दूर करके गुण प्रकट करने वाले भगवान हैं । उन भगवान का उपकार कैसे भूला जाये ?

‘प्रभु उपकार गुणे भर्या, मन अवगुण एक न माय रे ।’

- उपा. यशोविजयजी म.

भगवान ने समस्त गुणों के संग्रह एवं दोषों का निरसन किया है ।

‘गुण सघला अंगी कर्या, दूर कर्या सवि दोष’

हमें उस मार्ग पर चलना है ।

दोष दूर करते जायें तो गुण स्वयमेव प्रकट हो जायेंगे ।

क्रोध दूर करो तो क्षमा हाजिर !

मान दूर करो तो नम्रता हाजिर !

दोषों को हटाने के लिए प्रयत्न करना है, गुण तो भीतर विद्यमान ही हैं । दोषों का पर्दा हटाने पर गुण अपने आप प्रकट होंगे ।

क्रोध के आवेश के समय क्षमा नहीं होती, यह बात नहीं है । वह भीतर दबी हुई होती है । अतः लगता है मानो क्षमा है ही नहीं ।

सचमुच, क्षमा न हो ऐसा कदापि होता ही नहीं । क्षमा आदि तो हमारे स्वभाव रूप है । यह न हो ऐसा संभव ही नहीं है ।

भगवान को बुलाओ, समस्त गुण आयेंगे ।

भगवान को भूलो, समस्त गुण भाग जायेंगे ।

मेरा तो यह अनुभव है । भगवान जाते हैं तो सब कुछ जाता है । फिर भगवान को मनाने पड़ते हैं, विनती करनी पड़ती है ।

‘आज मारा प्रभुजी ! सामुं जुओ ने, रूठडा बाल मनावो रे !’

हरिभद्रसूरिजी यह बात अपने भीतर जचाना चाहते हैं ।

सिंहत्व जाने हुए सिंह को बकरा या ग्वाला (चरवाहा) डरा नहीं सकता, उस प्रकार अपना परमात्मत्व पहचान गई आत्मा को मोह आदि डरा नहीं सकते ।

*** ‘गुरुत्वं स्वस्य नोदेति ।’**

गुरुत्व कब प्रकट होता है ? क्षपक श्रेणी में प्रकट होता है । गुरुत्व अर्थात् परमात्मत्व । भीतर का परम तत्त्व प्रकट होने के पश्चात् गुरु की आवश्यकता नहीं रहती । तब तक गुरु आवश्यक हैं ।

क्षपक श्रेणि के समय इतनी भयंकर ध्यान की आग होती है कि विश्वभर के जीवों के कर्म उसमें डाले जायें तो सब भस्म हो जायें, परन्तु ऐसा संभव नहीं है ।

***** दीपक अपना प्रकाश अन्य दीपक को दे सकता है, उस प्रकार ज्ञान आदि गुण दूसरे को दिये जा सकते हैं । गुण आप दूसरों को देंगे तो कम नहीं होंगे । ऋण पर देने वाले की रकम घटती नहीं और लेने वाला कमा लेता है, ऐसा होता है न ? वहां कदाचित् ऐसा न भी बने, परन्तु यहां तो बनता ही है । देने वाले का घटता नहीं और लेने वाला समृद्ध हुए बिना रहेगा नहीं ।

- (१) नमुत्थुणं अरिहंताणं : ये दो स्तोतव्य सम्पदा हैं ।
- (२) आइग : आदि तीन, साधारण-असाधारण हेतु सम्पदा ।
- (३) पुरिसुत्त : आदि चार, असाधारण हेतु सम्पदा ।
- (४) लोगुत्त : आदि पांच, सामान्य उपयोग सम्पदा ।
- (५) अभयदयाणं : आदि पांच, उपयोग सम्पदा की करण सम्पदा ।
- (६) धम्मदयाणं : आदि पांच, विशेषोपयोग सम्पदा (उपयोग अर्थात् उपकार)

- (१) नमुत्थुणं अरिहंताणं : ये दो स्तोतव्य सम्पदा हैं ।
- (२) आइग : आदि तीन, साधारण-असाधारण हेतु सम्पदा ।
- (३) पुरिसुत्त : आदि चार, असाधारण हेतु सम्पदा ।
- (४) लोगुत्त : आदि पांच, सामान्य उपयोग सम्पदा ।
- (५) अभयदयाणं : आदि पांच, उपयोग सम्पदा की करण सम्पदा ।
- (६) धम्मदयाणं : आदि पांच, विशेषोपयोग सम्पदा (उपयोग अर्थात् उपकार)
- (७) अण्णडि : स्वरूप सम्पदा ।
- (८) जिणाणं : आदि चार आत्मतुल्य परफल कर्तृत्व सम्पदा ।
- (९) सव्वन्नणं : आदि तीन अभयसम्पदा ।

गुरु कहते हैं : आयरिय संतियं - मेरा नहीं, यह तो आचार्य भगवन का है ।

गणधर कहते हैं : सब भगवान का है । हमें भगवान के द्वारा ही मिला है ।

* प्रभु ने धर्म पर सम्पूर्ण अधिकार जमाया है ।

आपको धर्म प्राप्त करना हो तो भगवान के पास जाना ही पड़ता है । अन्य कहीं से नहीं मिल सकता । इसी लिए कदम-कदम पर अपने यहां 'देव-गुरु-पसाय' बोला जाता है । यह बोलने के लिए नहीं है, वास्तविकता है ।

विषयों से निवृत्ति, तत्त्व-चिन्ता या सहज अवस्था में स्थिति, ये सब गुरु की कृपा के बिना मिल नहीं सकता । यह आप जानते हैं न ? गुरु के माध्यम से यहां भगवान ही देते हैं ।

‘शुद्धात्मद्रव्यमेवाहं’ यह बोलकर शुद्ध आत्म-द्रव्य पकड़ लें। अब गुरु अथवा किसी की आवश्यकता क्या? यह मानकर देव-गुरु को छोड़ मत देना। ज्ञान का विपरीत अर्थ नहीं निकालें।

निन्दा-स्तुति, तृण-मणि, वन्दक-निन्दक और मोक्ष अथवा संसार दोनों पर समभाव रहे वह समता है। ऐसी समता भगवान्

की कृपा के बिना नहीं मिलती ।

कवि धनपाल कहते हैं :

‘जहां आपकी भक्ति प्राप्ति न हो, वैसी मुक्ति मुझे नहीं चाहिये ।’

यहां मुक्ति की उपेक्षा नहीं है, परन्तु भक्ति के प्रति दृढ़ विश्वास है । भक्ति होगी तो मुक्ति कहां जायेगी ?

गौतमस्वामी इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं । उन्होंने ने भक्ति के लिए केवल ज्ञान छोड़ दिया था । क्या आवश्यकता है केवल ज्ञान की ? भगवान का केवल ज्ञान मेरा ही केवल ज्ञान है । ऐसा उच्च समर्पण भाव उनका था । इसी लिए वे उच्च गुरु बन सके, स्वयं में नहीं होने पर भी सभी शिष्यों को केवलज्ञान दे सके ।

* भगवान की भक्ति होगी तो सभी गुण आ जायेंगे ।
ऐसा कोन सा पदार्थ है जो भक्ति से न मिले ? यह तो बताओ ।

समस्त आत्मसम्पत्तियों का मूल जिन का अनुराग है ।
यह हो जाये तो काम हो जाये ।

अन्य पदार्थों की अपेक्षा विशेष अनुराग भगवान के प्रति हो गया है न ?

‘सर्व-सम्पदां मूलं जायते जिनानुरागः ।’

यह मेरा नहीं, सिद्धसेन दिवाकरसूरिजी का वाक्य है ।

भगवान केवल उपदेश नहीं देते, सब प्रकार की संभाल रखते हैं ।

आपका कार्य है केवल रथ में बैठने का, शेष समस्त उत्तरदायित्व भगवान का है ।

चलेंगे घोड़े (अश्व), चलायेगा सारथी । आपको केवल एक ही कार्य करना है - बैठने का ! क्या अधिक सरल प्रतीत नहीं होता ? सरल है फिर भी दुष्कर है, क्योंकि यहां पूर्ण समर्पण-भाव होना चाहिये जो अत्यन्त ही दुष्कर है, कठिन है ।

भगवान के प्रति समर्पण-भाव रखना अर्थात् उनके रथ में बैठ जाना । भगवान अपने जीवन-रथ के सारथी बनेंगे ।

भगवान को कह दें :

‘यावन्नाप्नोमि पदवीं, परां त्वदनुभावजाम् ।

तावन्मयि शरण्यत्वं, मा मुञ्च शरणं श्रिते ॥’



पालिताना, वि.सं. २०५६

२९-७-२०००, शनिवार

श्रा. कृष्णा-१३

भगवान के निर्वाण के पश्चात्, उनकी ओर से उनका कार्य धर्म करता है। आदिनाथ भगवान का तो चौससी लाख पूर्व का ही आयुष्य ! उसमें भी दीक्षा पर्याय तो केवल एक लाख पूर्व ! परन्तु उनके द्वारा स्थापित तीर्थ का आयुष्य पचास लाख करोड़ सागरोपम ! तब तक तीर्थ सतत उपकार करता ही रहता है। भगवान का नाम तो उससे भी अधिक समय तक उपकार करता रहेगा।

भगवान के विशेष नाम (आदिनाथ) बदलते रहते हैं, परन्तु सामान्य नाम (अरिहंत) नहीं बदलता।

नामाकृतिद्रव्यभावैः - श्लोकों में सामान्य अरिहंतों की स्तुति है, विशेष की नहीं।

भगवान आदिनाथ से लगाकर सभी तीर्थंकर अभी सिद्ध हैं, तो फिर 'अरिहंते कित्तइस्सं।' क्यों लिखा ?

इस समय भी वे द्रव्य अरिहंत हैं ही और हमें अरिहंत के रूप में उनका ध्यान करना है।

* क्षायिक भाव के गुण सिद्ध अवस्था में लुप्त नहीं होते। परार्थव्यसनिता गुण भी सिद्ध अवस्था में लुप्त नहीं होता। इस

कथयितव्य को मुख्यता से कहा जाता है । सामने श्रोताओं को जिसकी आवश्यकता हो, उस नय को आगे करके भगवान् देशना देते हैं ।

‘अर्पिताऽनर्पितसिद्धेः’

- तत्त्वार्थ

ऐसा न हो तो कुछ भी बोला ही नहीं जा सके ।

अतः प्रश्न पूछते समय ख्याल रखें कि मैं इस समय किस नय को आगे करके बोल रहा हूँ । जिस नय को आगे करके बोला जाता हो उसका अर्थ यह नहीं है कि दूसरों का महत्त्व नहीं है । उस समय अन्य नय गौण होते हैं ।

* शास्त्रों की व्याख्या छः प्रकार से होती है :

संहिता, पद, पद का अर्थ, पद का विग्रह, चालना एवं प्रत्यवस्थान ।

* ‘नमोऽस्तु’ में ‘नमः’ पूजा के अर्थ में है । द्रव्य-भाव से संकोच करना पूजा है । काया एवं वाणी का संकोच द्रव्य-संकोच कहलाता है ।

मन का संकोच भाव-संकोच कहलाता है ।

हजारों स्थानों पर भटकते मन को एक ही स्थान (प्रभु में) पर केन्द्रित करना भाव-संकोच है । द्रव्य-संकोच से भाव-संकोच कठिन है ।

मन को सूत्र, अर्थ अथवा आलम्बन में कही जोड़ देना चाहिये । यदि मन जुड़ जाये तो आपको अलग ध्यान करने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

रूपातीत अवस्था का भावन अनालम्बन योग है । हम यह बात समझते नहीं हैं अतः तीव्रता से चैत्यवन्दन करके ध्यान में बैठने का प्रयत्न करते हैं । आप चैत्यवन्दन छोड़ कर अन्य कौन सा ध्यान करेंगे ?

क्या काउस्सग में ध्यान नहीं है ? ‘झाणेणं’ शब्द का अर्थ क्या होता है ? क्या चैत्यवन्दन में काउस्सग नहीं आता ?

* आगे की भूमिका आने पर तो अर्थ चिन्तन पूर्वक का एक लोगस्स भी पर्याप्त है, फिर वहां संख्या का आग्रह नहीं रहता ।

पुरुषार्थ छोड़ना नहीं है, परन्तु अधिक से अधिक करना है और प्रभु को प्रार्थना करते रहना है - 'प्रभु ! आपके पसाय से मेरा यह पुरुषार्थ सफल हो ।'

'होउ ममं तुह प्यभावओ ।'

- जय वीयराय

'होउ मे एसा सम्मं गरिहा ।'

- पंचसूत्र

कई मनुष्य क्या नहीं कहते ? 'गुरुदेव ! मासक्षमण करने की मुझमें शक्ति नहीं है । आपकी कृपा चाहिये ।' इसका अर्थ यह नहीं कि मासक्षमण करने का पुरुषार्थ छोड़ दें । पुरुषार्थ चालु रख कर भगवान के पास नम्रता पूर्वक बल मांगना है, कृपा की याचना करनी है ।

* व्याख्या के सात अंग हैं : (१) जिज्ञासा, (२) गुरुयोग, (३) विधिपरता, (४) बोध-परिणति (५) स्थिरता, (६) उक्तक्रिया, (७) अल्प भवता (अल्प संसार)

जिज्ञासा : अपने शब्दों में कहे तो झंखना ! तमन्ना ! ये हो तो ही गुरु आदि का योग मिलता है, और आगे का काम होता है ।

ऐसी लगन लगने के कारण ही घोड़े को मुनिसुव्रत स्वामी का और उदायन राजा को श्री महावीर स्वामी का योग हुआ था । आपकी लगन प्रबल बने तब गुरुयोग होता ही है ।

अनेक बार देखा है - आपको जो ग्रन्थ पढ़ने की तीव्र उत्कण्ठा हो, गुरु को भी वही ग्रन्थ पढ़वाने की तीव्र उत्कण्ठा हो ।

* जिज्ञासा के साथ साधक में स्थिरता भी चाहिये । यह नहीं हो तो पूरा पढ़ा नहीं जायेगा । आर्यरक्षितसूरिजी पढ़ते थे और घर में से बार-बार बुलावा आया - 'जन्मभूमि में आइये ।'

वज्रस्वामी को पूछा : कितना अध्ययन बाकी है ?

'बिन्दु अध्ययन किया है, सागर बाकी है ।'

वज्रस्वामी के इस उत्तर से अधीर एवं अस्थिर बने आर्यरक्षितसूरिजी ने जन्मभूमि की ओर विहार किया, पदार्पण किया । इसी कारण से साढ़े नौ पूर्व से अधिक फिर वे अध्ययन नहीं कर सके ।



पदवी प्रसंग, मद्रास, वि.सं. २०५२, माघ सु. १३

३०-७-२०००, रविवार
श्रा. कृष्णा-१४

सात चौबीसी धर्मशाला मण्डप - सामुदायिक प्रवचन
विषय - भक्ति

पूज्य आचार्यश्री विजयकलापूर्णसूरिजी :

* महान् पुण्योदय से इस मानव-जन्म में प्रभु का शासन मिला, सच्ची पहचान कराने वाले गुरु मिले, दुःख-मुक्ति एवं सुख-प्राप्ति का मार्ग मिला । इन्द्र को भी ईर्ष्या हो ऐसी प्राप्ति हुई है ।

सच्चा भक्त याचना करता है - इन्द्र - चक्रवर्ती का पद नहीं चाहिये, मुझे तो प्रभु का शासन ही चाहिये । आप इन्द्र के साथ यह सौदा करें तो इन्द्र तैयार हो जाये और इन्द्र को आप मूर्ख समझो और इन्द्र आपको मूर्ख समझे ।

* आज विषय है - भक्ति । श्रावक को भक्ति बतानी नहीं पड़ती, वह तो उसमें व्याप्त ही होती है ।

* संसार में कौन सी वस्तु है जो प्रभु भक्त को न मिले ? यह सिद्धसेनदिवाकरसूरिजी का 'शक्रस्तव' में टंकार है ।

'शक्रस्तव' में स्वरूप-सम्पदा बताने के पश्चात् उपकार-सम्पदा

***** उपमिति में एक दृष्टान्त आता है ।

एक बाबाजी को चोरों ने ऐसा वश में किया कि वे सभी सम्पत्ति लूट कर भाग गये तो भी उन्हें तब पता नहीं लगा । रिश्तेदारों की बात बाबाजी ने नहीं मानी ।

हमारी आत्मा की कर्मों ने ऐसी ही दशा की है ।

भूखे, प्यासे बाबाजी को हाथ में चप्पणिया देकर भीख मांगते कर दिये । जिन्हें हम मान-सम्मान देते हैं वे विषय-कषाय ऐसे ही चोर हैं ।

पिंजरे में पड़े हुए बाबाजी जैसे हमें देखकर क्या प्रभु को करुणा नहीं आती ? बिचारा चोरों से कैसा दब गया है ?

गुरु के माध्यम से प्रभु उसे अपना स्वरूप समझाना चाहते हैं । परन्तु समझे कौन ?

‘भूख्या ने जिम घेवर देतां, हाथ न मांडे घेलोजी ।’

***** छः आवश्यकों में प्रथम मुख्य सामायिक है, क्योंकि यही साध्य है, परन्तु उसकी प्राप्ति चउविसत्थो आदि पांच से होती है, यह न भूलें ।

जो जो सम्बन्ध आपने दुनिया के साथ बांधे हैं वे समस्त सम्बन्ध अब आप भगवान के साथ जोड़ दें । भगवान के अतिरिक्त कुछ याद न आये, ऐसा वातावरण बनाएँ ।

प्रभु के प्रति प्रेम प्रकट हो यही बीजाधान है ।

हम शाब्दिक शरण लेते हैं, परन्तु मुझे ऐसा लगता है कि हृदय शून्य है । गौतम स्वामी को शरणागति इतनी प्रिय थी कि उसके लिए उन्होंने ने केवल ज्ञान छोड़ दिया । छट्ट के पारणे प्रभु की गोचरी का लाभ मिले न ? केवलज्ञान के पश्चात् गोचरी कौन जाने दै ? पांचवे आरे के जीवों को उन्होंने ने मानो जीवन के द्वारा गुरु-भक्ति सिखाई है ।

‘मुक्ति से अधिक तुझ भक्ति मुझ मन बसी’ - यह बात गौतम स्वामी में चरितार्थ थी । इसी कारण यशोविजयजी ने इस प्रकार गाया है और कहा है कि समग्र शास्त्रों का सार प्रभु-भक्ति है । भक्ति पदार्थ को सम्यग् समझने के लिए ‘ललित विस्तर’ अवश्य पढ़ें । प्रभु के उपकार कितने असंख्य हैं और हम कैसे कृतघ्न हैं, यह ध्यान में आयेगा । प्रभु के गुण गाते ही दोष भाग

जाते हैं, और गुण आने लगते हैं ।

अतः हम ऐसी साधना करें कि ऐसे प्रभु हमारे हृदय में, हमारी रग रग में निवास करें ।

भक्ति के बिना मुक्ति प्राप्त हुई ही नहीं है और किसी को मिलेगी भी नहीं, यह बात लिख रखें । आखिर ज्ञान आदि सब प्रभु-प्रेम में पर्यवसित होते हैं । ज्ञानयोग आदि सब मार्ग बाहर से अलग लगते हैं, परन्तु अन्त में प्रभु-प्रेम में सब एक हो जाते हैं ।

प्रभु-भक्ति को तात्त्विक बनानी हो तो विशेषतः आप 'वीतराग स्तोत्र' कण्ठस्थ कर लें । उसमें लिखा है - भवत्प्रसादेनैवाहं०

'प्रभु ! आप ही निगोद में से बाहर निकाल कर मुझे यहां तक लाये हैं । अब आपको ही मुझे मुक्ति तक पहुंचाना है । ऐसी प्रार्थना हेमचन्द्रसूरिजी जैसे करते हों तो हम किस खेत की मूली हैं ?

* मेरे कहने मात्र से सामुदायिक प्रवचन के विषय में भक्ति के सम्बन्ध में सब सहमत हुए उसका आनन्द है । भक्ति के सम्बन्ध में अन्य वक्ता आपको समझ में आये ऐसी भाषा में कहेंगे ।

जैन संघ का उज्ज्वल भविष्य मैत्री एवं भक्ति से ही बनेगा, ऐसा दृढ़ विश्वास होना चाहिये । यदि विश्वास होगा तो सर्व प्रथम उसे जीवन में उतारेंगे और उसके बाद जगत् में फैलावेंगे ।

पूज्य हेमचन्द्रसागरसूरिजी :

अगर वे सत्य संयम का हृदय में बीज न बोते,
सभी संसार-सागर में खाते रहते गोते;
न पावन आत्मा होती, न जीवित मन्त्र ये होते,
कभी का देश मिट जाता, जो ऐसे सन्त न होते ।

सर्व प्रथम अषाढ़ शुक्ला ११ को तलहटी पर सब मिले । उस समय का माहौल देखते ही प्रत्येक पूज्य के हृदय में भाव उत्पन्न हुआ कि प्रत्येक रविवार को मंच पर साथ-साथ क्यों न मिलें ?

प्रथम रविवार को मैत्री पर प्रवचन रहे ।

बुधवार को अरिहंत का जाप हुआ ।

आज भक्ति पर प्रवचन है ।

मैत्री-भाव सरल नहीं है, बीच में मोह पड़ा है, जिसे भक्ति के बिना दूर नहीं किया जा सकता ।

मोह जीव के साथ मैत्री एवं जड़ के प्रति अनासक्ति पनपने नहीं देता ।

मैत्री भाव को सिद्ध करने के लिए भक्ति अनिवार्य गिनी गई है । प्रभु-प्रेमी पू. आचार्यश्री कलापूर्णसूरिजी ने २७ मिनट तक भक्ति पर प्रवचन दिया, परन्तु सबने नहीं सुना होगा । उन्होंने ने सुन्दर मुद्दों पर कहा, कैसे रहस्य खोले, उन्हें स्पष्ट करने के लिए मैं श्री धुरन्धरविजयजी को विनती करूंगा ।

दूसरे गच्छाधिपति पू. सूर्योदयसागरसूरिजी अस्वस्थ होते हुए भी उपस्थित हुए हैं, यह हमारा पुण्योदय है । कैसा उत्तम योग बना है । ऊपर बिराजमान दोनों गच्छाधिपति एवं धुरन्धरविजयजी भी परिवार से साथ दीक्षित हुए हैं ।

दोनों गच्छाधिपतियों की आयु ७७ वर्ष है । नहीं सुनाई दे तो भी शान्ति से बैठें ।

पू. मुनिश्री धुरन्धरविजयजी म. :

(पूज्य मुनिश्री धुरन्धरविजयजी ने पूज्य कलापूर्णसूरिजी की बात बुलन्द आवाज में कही ताकि सबको सुनाई दे ।)

प्रभु के परम भक्त पू. आचार्य कलापूर्णसूरिजी को जिन्होंने ने नहीं सुना, उन्हें भी झरने की तरह उनके शब्दों के स्पन्दनों का स्पर्श तो हुआ ही है ।

इस मंच पर पूज्यश्री ने भक्ति विषय पर चर्चा की ।

गत रविवार को चर्चित मैत्री यहां स्पष्ट दिखाई देती है ।

मैत्री भक्ति से ही सिद्ध होती है । छोटी-छोटी बातों में वाडे बांधने वाले हम मैत्री को कैसे समझ सकेंगे ? यह आदत भक्ति से ही मिट सकती है ।

पूज्यश्री ने कहा : गौतम स्वामी ने केवलज्ञान का लोभ भी छोड़ दिया । अइमुत्ता की बात आप सभी सुन चुके हैं ।

क्या प्रभु के प्रथम गणधर गोचरी लेने जाते हैं ? कितनी नम्रता ?

* गुरु अपने नहीं, प्रभु के भक्त बनाते हैं ।

* पूज्यश्री भी ये बातें भगवान की ओर से कहते हैं, अपनी ओर से नहीं । इस प्रकार ऋण-मुक्ति की पूज्यश्री ने कोशिश की है; मैं तनिक माध्यम बना, इस बात का हर्ष है ।

पूज्य आचार्यश्री सूर्योदयसागरसूरिजी : अरिहंत मंगलमय है । जैन-शासन का बुनियादी मन्त्र 'नमो अरिहंताणं' है । 'नमो अरिहंताणं' समर्पण भाव है ।

यहां पहले 'नमो' है, तत्पश्चात् 'अरिहंत' है । अरिहंत में नहीं, 'नमो' में देने की शक्ति है ।

'नमो' अर्थात् भक्ति ! समर्पण !

अरिहंत तब ही फलदायी बनते हैं, यदि आप नमस्कार करो ।

* आप जिनालय में जाओ और 'निसीहि' कहें, परन्तु फिर कौन आया और गया यह ध्यान रहे तो 'निसीहि' कैसी गिनी जायेगी ?

कांसे के बर्तन में पानी भरकर २४ घंटे रखे । खाली करने पर पानी कैसा होगा ? मिट्टी के बर्तन में पानी कैसा ठण्डा रहेगा ? आपको कैसा बनना है ? मिट्टी का बर्तन भले टूट सकता है, परन्तु अरिहंत का योग मिले तो वह अटूट बन सकता है ।

अनादि के भव्यत्व को तथाभव्यता के रूप में परिणमित करना हो तो तीन बातें करनी चाहिये : शरणागति, दुष्कृत गर्हा और सुकृत अनुमोदना ।

'धम्मं सरणं पवज्जामि ।' यह शरणागति है ।

पापों के पश्चात्ताप के द्वारा फिर अन्तर की शुद्धि करें, यह दुष्कृत गर्हा है ।

दुष्कृत गर्हा करेंगे तो जगत् में सभी प्राणी सरस लगेंगे और उससे सुकृत-अनुमोदना होगी ।

पूज्य कलापूर्णसूरिजी के हृदय में भावना है कि समस्त अनुयायी भगवान के भक्त बन जाये ।

भगवान की 'सवि जीव करं शासन-रसी' की भावना साकार करने के लिए हम सब मिल कर प्रयत्न करें ।

पूज्य मुनिश्री धुरन्धरविजयजी : पूज्यश्री की ओर से सूचना आई है कि उपद्रव शान्त नहीं हुए, अतः प्रत्येक आराधक अपने

कमरे में नित्य नौ स्मरणों का तीनों समय पाठ करे ।
 प्रभु-भक्त जो निर्देश करे, वह प्रभु का निर्देश है ।
 यदि तदनुसार करें तो प्रभु को वैसा करना अनिवार्य हो जाता है ।

पू. मुनिश्री भाग्येशविजयजी : शाश्वत गिरिराज की गोद में इतने विशाल श्री चतुर्विध संघ के दर्शन कदाचित् जीवन में प्रथम बार हुए हैं । बोलने का प्रसंग भी पहली बार है ।

* एक सन्त के पास एक युवक कहने लगा : 'अनेक वर्षों से एक तमन्ना है कि मुझे प्रभु के साथ मिलाप करना है, मार्ग बतायें ।'

'सामने जो वृक्ष है उसके पांच पत्ते तोड़ कर ला ।' सन्त के कहते ही उस व्यक्ति ने वैसा ही किया ।

'पांचो पत्ते पुनः वृक्ष पर लगा कर आ ।'

'गुरुदेव ! तोड़ तो सकता हूं, परन्तु जोड़ नहीं सकता ।' जोड़ना कठिन है, तोड़ना सरल है ।

आप सभी साथ जुड़े, इसीलिए प्रथम मैत्री भावना है ।

अनन्त जीव रह सकें वैसे दो ही स्थान हैं - निगोद और निर्वाण ।

जीवों के साथ अभेद करे वह निर्वाण में और भेद करे वह निगोद में जाता है ।

दशवैकालिक टीका में हरिभद्रसूरिजी :

'साधुत्वं किं नाम ?'

'सर्व जीव - स्नेह - परिणामत्वं साधुत्वम् ।'

साधुता अर्थात् प्रेम के वर्तुल का विस्तार, संकोच नहीं । पहले साधु घर का था, अब सर्व का हो गया है ।

आप भी जितने अंशों में विस्तारते हैं, उतने अंशों में साधु हैं ।

'समणो इव सावओ हवइ जम्हा ।'

सामायिक में प्रेम का वर्तुल विकसित होता है ।

चण्डकौशिक के प्रसंग में भगवान ने ये ही बात बताई है । चण्डकौशिक को प्रभु मिल गये और उसका उद्धार हो गया ।

एक भाई ने पूछा : 'हमारा उद्धार क्यों नहीं होता ?'

मैं ने कहा : एक बात है । चंडकौशिक को जब तक भगवान नहीं मिले तब तक सर्वत्र विष था, परन्तु हम कदाचित् जीभ पर से विष दूर करते हैं परन्तु हृदय में विष भरा रखते हैं ।

मैत्री का अमृत आने पर हृदय का विष चला जाता है ।

भगवान कहां जन्म लेते हैं ? कल्पसूत्र में लिखा है : तुच्छ, दरिद्र, कृपण आदि के कुल में प्रभु का जन्म नहीं होता ।

तुच्छ कुल में भगवान का जन्म नहीं होता तो

तुच्छ हृदय में भगवान का आगमन कैसे होगा ?

हृदय को विशाल बनायें ।

हरा वृक्ष समस्त पक्षियों के निमन्त्रण का कारण बनता है ।

हरा हृदय समस्त जीवों के आश्रय का कारण बनता है ।

* तुकाराम मार्ग में चल रहे थे और आहट से दाना चुगते कबूतर उड़ गये । तुकाराम के हृदय पर आघात लगा - मेरे द्वारा इन्हें कितना कष्ट हुआ ? कितना अन्तराय हुआ ? किसी की भूख तो कदाचित् मैं न मिटा सकूँ, परन्तु क्या किसी को खाने भी न दूँ ? ऐसा मेरा जीवन ?

वे वहीं बैठ गये, निश्चय किया - जब तक कबूतर पुनः नहीं आयेंगे तब तक अन्न-जल का त्याग ।

तुकाराम की संकल्प-शक्ति से कबूतर पुनः आकर उनके कंधे पर बैठे ।

* एक बहन के हाथ में से अंगूठी नीचे गिर गई ।

दूसरी बहन बोली : बहुत बुरा हुआ ।

उसने कहा : बहुत बुरा नहीं हुआ । कोई चुरा ले जाता तो अच्छा होता । कम से कम किसी के उपयोग में तो आती । खो गई अतः किसके काम आयेगी ? योगी न बनें तो किसी के लिए उपयोगी तो बनें ।

सर्वप्रथम घर से मैत्री का प्रारम्भ करना पड़ेगा । घर में नौकर आदि से प्रारम्भ करो । इसीलिए कल्पसूत्र में नौकरों के लिए कौटुम्बिक शब्द का प्रयोग हुआ है ।

नौकर आपको कभी भी कुटुम्बी लगा ?

प्लास्टिक के फूल सुन्दर प्रतीत होते हैं, परन्तु हूँफ वाले नहीं।
हूँफ वाले बनने के लिए मैत्रीमय बनना पड़ता है।

भक्ति, मैत्री एवं शुद्धि को जन्म देती है । भक्ति से शुद्धि, शुद्धि से सिद्धि प्राप्त हुए बिना नहीं रहती ।

भक्ती की व्याख्या : जिस प्रकार पूज्यश्री ने (पूज्य आचार्य कलापूर्णसरिजी ने) कहा उस प्रकार प्रभु को पूर्ण रूपेण समर्पण ।

I am nothing. मैं कुछ नहीं हूँ ।

I have nothing. मेरे पास कुछ नहीं है ।

उसके बाद ही पूर्ण समर्पण-भाव आता है ।

I am something. था, तब तक गौतम स्वामी भी समर्पित हो सके नहीं ।

* एकाग्रता नहीं है यह अखरता है अथवा अहोभाव नहीं है वह अखरता है ?

एकाग्रता नहीं है वह अखरता है, परन्तु अहोभाव नहीं है वह अखरता नहीं है ।

जल के दो गिलास हैं - एक में पत्थर है, दूसरे में पताशा है ।

हमें पत्थर की तरह केवल मिलना नहीं है, परन्तु पताशे की तरह प्रभु में धुल मिल जाना है। प्रभु सब देने के लिए तैयार हैं। हमारी ओर से मात्र समर्पण की आवश्यकता है।

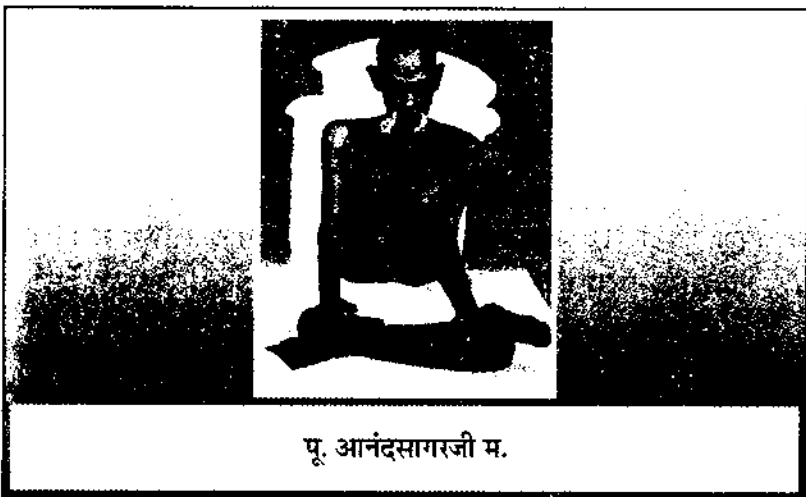
पूज्य मुनिश्री धूरन्धरविजयजी :

आज परम शासन-प्रभावक पूज्य आचार्यश्री विजयरामचन्द्रसूरिजी की स्वर्ग-तिथि है। पूज्यश्री के गुणानुवाद महाराष्ट्र भुवन में हुए। कल प्रातः पूज्य सागरजी महाराज के गुणानुवाद आगम-मन्दिर में होंगे।

✦ ✦ ✦

इस पुस्तक को पढ़ने से हमें ऐसी पाप-भिरुता, प्रभु-भक्ति में स्थिरता, गुरु-भक्ति में समर्पितता और धर्म के प्रति दृढता प्राप्त हो, वैसी प्रभु से प्रार्थना करते हैं।

- साध्वी जयपूर्णाश्री



३१-७-२०००, सोमवार
श्रा. कृष्णा अमावस : आगम मन्दिर प्राङ्गण

पूज्य आचार्यश्री सागरानन्दसूरिजी के गुणानुवाद

पूज्य आचार्यश्री सूर्योदयसागरसूरिजी :

चाहे जितनी गालियों अथवा पत्थरों की वृष्टि हो परन्तु पूज्य सागरजी की धीरता एवं वीरता गजब की थी। उनका रोम भी नहीं फरकता था। शंखेश्वर में अभयसागरजी की दीक्षा के समय हमने प्रत्यक्ष देखा। चबूतरे पर स्वस्थतापूर्वक बैठे थे। वे पूज्यश्री आज भी मुझे याद आते हैं।

* आचार्य पद प्राप्त होने के पश्चात् भी वे अपने लिए आचार्य आनन्दसागरसूरि नहीं लिखते थे। कारण पूछने पर कहते - व्यवहार के लिए आचार्य पदवी स्वीकार करनी पड़ी, परन्तु सचमुच मुझ में आचार्य की योग्यता नहीं है, पात्रता नहीं है। केवल दो ही आगम मन्दिरों में (पालीताणा-सूरत) आचार्य आनन्दसागर लिखा हुआ है। यह भी इस कारण कि भविष्य के इतिहासकार कहीं भूल न करें।

* पूज्य सागरजी में सागर जितने गुण थे। वक्ता अनेक हैं, समय सीमित है। अतः मैं अपना वक्तव्य यहीं समाप्त करता हूँ।

*** पूज्य आचार्य जगवल्लभसूरिजी के शिष्य पू. मुनिश्री दर्शनवल्लभविजयजी :**

आग लगी आकाश में, जर-जर पड़े अंगार ।

यह शासन न होता अगर, जल मरता संसार ॥

सागर को चम्मच से उलीच नहीं सकते । पू. सागरजी के गुणानुवाद करने वाला मैं कौन ? मैंने उन्हें न देखे हैं, न जाने हैं, परन्तु उनकी कृतियों ने उन्हें अमर बनाया है । वे भले ही विद्यमान नहीं है, परन्तु उनकी प्रतिकृति एवं कृति विद्यमान है ।

पूज्यश्री आगमों की सुन्दर परम्परा चलाने वाले थे । जिनके बिना जीने का भालूम न पड़े वे आगम हैं ।

प्रतिकृति कदाचित् विलीन हो जायेंगी, परन्तु आगम मन्दिर रूपी यह कृति कहाँ जायेगी ?

उनके गुणगान करके उठ जायें, उसकी अपेक्षा एक-आध गुण ग्रहण करें । हम आगमों का अध्ययन करें, आप श्रवण करें, यह सच्ची भावांजलि होगी ।

*** पू. बालमुनिश्री आगमसागरजी :**

सब मनुष्य जानते हैं कि यह तस्वीर किसकी है ?

(थोड़ा सा बोलकर अटक गये, तो भी लोग प्रसन्न हो गये)

*** पूज्य आचार्य यशोविजयसूरिजी :**

पूज्य सागरजी ज्ञान के सागर थे ही, ध्यान के भी सागर थे । दर्शन करने का लाभ तो मुझे नहीं मिला, परन्तु तस्वीर में ध्यानस्थ मुद्रा देखकर नत मस्तक हो गया । उनमें स्वरूप रमणता की अनुभूति दिखाई दी ।

दशवैकालिक का एक श्लोक है :

पाणमेगग-चित्तो अ ठिओ अ ठावइ परं ।

सुयाणि अहिज्जित्ता, रओ सुअ-समाहिए ॥

ज्ञान को स्वरूप-रमणता में बदलने का कार्य उन्होंने ने करके बताया । 'टीम-वर्क' के लिए विराट् कार्य कहा जाता है, वैसा कार्य अकेले हाथ से वे कैसे कर सके होंगे ?

प्रतीत होता है कि ध्यान की पृष्ठभूमि पर प्रभु के ज्ञान को अवतरित किया था । ध्यान के बिना प्रभु का ज्ञान संभाला नहीं जा सकता ।

ज्ञानविमलसूरिजी ने आनन्दधनजी पर स्तबक लिखने का निश्चय किया परन्तु लगा कि विवेचन बैठ नहीं रहा है । उन्हें तुरन्त समझ में आया कि आनन्दधनजी की प्रसादी ध्यान के बिना समझ में नहीं आयेगी ।

सूरत में सूरजमण्डन पार्श्वनाथ का छः माह तक ध्यान किया । उन्होंने ने प्रार्थना की कि प्रभु ! तू मुझे शक्ति प्रदान कर । उसके बाद उन्होंने ने कलम चलाई । आज भी वह 'टबा' विद्यमान है ।

इसे कहते हैं ज्ञान के लिए पृष्ठ भूमिकारूप ध्यान ।

अन्तिम समय में १५-१५ दिनों तक ध्यानावस्था में रहते थे, यह तो आपको ख्याल है, परन्तु उनका सम्पूर्ण जीवन ध्यानमय था, क्या यह आपको पता है ? आज तो ज्ञान-ध्यान की परम्परा विलीन होने लगी है । पूज्य ज्ञानविमलसूरिजी कहते हैं :

'वींझे छे शुद्ध मुज चेतना...'

महाविदेह में भले ही नहीं जा सके, परन्तु विदेह अवस्था में यही पर अपने भीतर महाविदेह प्रकट किया जा सकता है ।

भक्तिनगरी ही पुण्डरीकिणीनगरी है ।

मेरा साहिब आत्मदेव ही सीमंधर स्वामी हैं ।

ऐसा पूज्य सागरजी ने प्रेक्षितकल किया था ।

नित्य ज्ञान-ध्यान में डुबकी लगाकर ही उन्हें सच्ची अंजलि दी जा सकती है ।

पू. धुरन्धरविजयजी म. :

पूज्य कलापूर्णसूरिजी के प्रतिनिधि के रूप में पूज्य गणिश्री पूर्णचन्द्रविजयजी तथा पूज्य गणिश्री मुनिचन्द्रविजयजी दोनों पांच-पांच मिनट बोलेंगे ।

*** पूज्य गणिश्री पूर्णचन्द्रविजयजी :**

मन्त्र-मूर्ति-आगम उत्कृष्ट साधना पद्धति है ।

मन्त्र-मूर्ति-आगम के द्वारा प्रभु का भाव-मिलन किया जा सकता है ।

(पूज्य आचार्यश्री कलापूर्णसूरिजी महाराज के पधारने के कारण वक्तव्य अपूर्ण रहा ।)

पूज्य आचार्यश्री विजयकलापूर्णसूरिजी :

* शासन-नायक भगवान महावीर के अनुग्रह से तीर्थ की स्थापना हुई है तब से गणधरों से लगाकर आज तक परम्परा मिली है। उनमें से प्रत्येक महापुरुष को याद करके हम पवित्र बन सकते हैं। भगवान की तरह गुरु को याद करने से भी पवित्र बना जा सकता है।

शास्त्रों में कहा गया है : 'गुरु-बहुमानो मोक्षो ।'

जीवन में गुरु का बहुमान जगे वही मोक्ष है। आठ कर्मों का क्षय होने पर मोक्ष होगा, तब तब की बात। उससे पूर्व ऐसा मोक्ष प्रकट करना है। गुरु को भगवान के रूप में देखना है। भगवान का परिचय कराने वाला भगवान से भी बढ़ जाता है। यदि गुरु न होते तो भगवान कहां से पहचान पाते ?

गुरु बहुमान से मोक्ष किस प्रकार ? मोक्ष तो कर्मों का क्षय होने से होता है। कर्म-क्षय से होने वाला मोक्ष गुरु के बहुमान से ही मिलेगा। इसीलिए गुरु-बहुमान को ही मोक्ष कहा है। इतनी बात जानने के पश्चात् गुरु के प्रति अपार बहुमान उत्पन्न होना चाहिये।

गुरु-भक्ति के प्रभाव से अपनी आत्मा भगवान के साथ जुड़ जाती है।

जो भगवान प्रतिमा में हैं, वे ही भगवान गुरु में भी हैं। न हो ऐसा सम्भव ही कैसे ?

मुनिराज के मानस में हंस की तरह सिद्ध रमण कर रहे होते हैं।

सिद्ध सिद्धशिला पर भले रहे, परन्तु मुनि जब ध्यान करते हैं तब वे उनके हृदय में आते ही हैं।

* अभी आगम मन्दिर के दर्शन करते समय क्या पू. सागरजी के दर्शन नहीं होते ? हृदय में आगम अंकित हो जायें, तत्पश्चात् दीवारों पर उत्कीर्ण करने की क्या आवश्यकता है ? आपको ऐसा होता होगा, परन्तु जिन आगमों के स्पर्श से लोहे के समान मेरी आत्मा स्वर्ण तुल्य बन गई, उसका दर्शन अन्य भी क्यों न करें ? आगम उत्कीर्ण कराने के पीछे पूज्यश्री की ऐसी भावना थी।

*** कलिकाल में दो ही भगवान हैं ।**

जिनागम = बोलते भगवान ।

जिनमूर्ति = मौन भगवान ।

आगमों के प्रति जितना आदर बढ़ेगा, उस प्रमाण में भगवान मिलेंगे ।

जिन आगमों की सुरक्षा के लिए हमारे पूर्वाचार्यों ने प्राण देने के लिए भी तत्पस्ता दिखाई उन्हें हम कितना धन्यवाद दें ?

जैसलमेर में ताड़पत्रियां क्यों एकत्रित की गई हैं ? क्योंकि किसी का वहां शीघ्र आक्रमण न हो ।

इस प्रकार आगमों की सुरक्षा के लिए पूज्य सागरजी ने इस आगम मन्दिर का निर्माण करवाया ।

अपने जीवन को आगममय बनाकर जीयें यही पूज्य सागरजी महाराज को सच्ची श्रद्धांजलि दी कहलायेगी ।

उन महापुरुषों के सम्बन्ध में जितना कहें उतना कम है ।

उन्होंने ने कपडवंज, पाटन आदि स्थानों पर दो-चार बार आगम वाचनाओं का आयोजन किया था, जिनमें हमारे पूज्य कनकसूरिजी ने भी लाभ लिया था ।

आगमों में भगवान हैं यह समझा जाये तो स्वाध्याय करते समय भी भगवान याद आयें ।

भगवान अलग नहीं है, परन्तु भक्त की भूल के कारण भगवान अलग लगते हैं ।

यदि हम आगमों का पाठ करेंगे तो निश्चित रूप से पूज्य सागरजी की आत्मा प्रसन्न होगी ।

*** पूज्य पं. भद्रकरविजयजी म. के प्रशिष्य धुरन्धरविजयजी म. :**

‘जीवंता जग जस नहीं, जस विण का जीवंत ?

जे जस लेई आतमा, रवि पहेला उगंत ।’

- श्रीपाल रास, पुतली के मुंह से, उपा० यशोविजयजी जीते जी यश नहीं, उसका कोई मूल्य नहीं, जिसका यश होता है उसका नाम सूर्योदय से पूर्व गाया जाता है ।

पूज्य सागरजी महाराज ने वृद्धों को समझा-समझा कर हस्तलिखित प्रतों में सुरक्षित आगमों को बाहर निकाले ।

यह उनका महान् उपकार है ।

शासन में आगम स्थिर (स्थायी) रहें, सुरक्षित रहें इस हेतु से तीन बार बड़े परिवर्तन हुए हैं ।

(१) वीर संवत् ९८० में देवर्द्धिगणि ने वलभीपुर में श्रमण सम्मेलन करके आगमों को ग्रन्थों में लिखवाये ।

(२) विक्रम की नौवी-दसवी शताब्दी में शीलांकाचार्य एवं कपडवंज में स्वर्गवासी हुए आचार्यश्री अभयदेवसूरि ने आगमों पर टीकाएँ लिखीं । उन्हें शासनदेवी का संकेत प्राप्त हुआ था कि दुरूह आगमों पर टीका लिखें ।

शासनदेवी ने सूरिजी को निःशंक करने के लिए ओढ़नी देकर कहा, 'प्रथम प्रत को आप इस रत्नजड़ित ओढ़नी में लपेटना । उसकी धनराशि से प्रतें लिखवाना ।

उक्त ओढ़नी को बहुत अधिक धनराशि देकर तत्कालीन गुर्जर राजा ने खरीदी थी और उस धनराशि से वे प्रतें लिखवाई ।

(३) सौ वर्ष पूर्व हस्तलिपि जानने की परम्परा लुप्त प्रायः हो गई । पैसों के खातिर हस्त-प्रतें बिकने लगी ।

आपको एक प्रसंग बताता हूँ । सूरत में एक व्यक्ति हस्तप्रत बेचने के लिए आया । उसने उसके पैतीस हजार रूपये मांगे ।

पूज्य सागरजी ने कहा : 'तैंतीस हजार रूपये दिला सकता हूँ ।'

वह बोला : 'मैं देखता हूँ ।'

तत्पश्चात् दो घंटों के पश्चात् उसे बुलाकर कहा : 'ला पैतीस हजार रूपयों में दे दे ।'

वह बोला : 'एक अंग्रेज छत्तीस हजार रूपये देकर ले गया ।'

इस प्रकार इतने ग्रन्थ बाहर गये कि मत पूछो बात ।

अतः पूज्य सागरजी महाराज ने आगम-सुरक्षा के निर्णय को वेगवंत बनाया । उस समय उसका अत्यन्त विरोध हुआ कि आगम छपाये नहीं जा सकते । आगम साधुओं के अतिरिक्त अन्य किसी से देखे भी नहीं जाते ।

जिसका विरोध होता है वही सर्व स्वीकृत होता है । जिसका विरोध न हो, उसे बल ही नहीं मिलता । विरोध से ही बल पूरा पड़ता है ।

अकेले हाथ से सटीक ४५ आगम छपवाये । अन्य अनेक ग्रन्थ भी छपवाये । उनकी प्रस्तावना मूल ग्रन्थ से भी कठिन होती है । केवल प्रस्तावना लिखने में भी कितना समय लगा होगा ? सभी प्रस्तावनाओं के संग्रह के रूप में एक अलग पुस्तक भी छपी है ।

अभयदेवसूरिजी के गांव में ही जन्मे इन सूरिजी ने टीका तो नहीं लिखी, परन्तु प्रस्तावना भी अद्भुत है । उनके व्याख्यान भी अद्भुत थे ।

हमारे पूज्य मुक्तिचंद्रसूरिजी कहते थे : सूत्र को चौड़ा करना हो तो पूज्य रामचंद्रसूरिजी का व्याख्यान और गहरा करना हो तो पूज्य सागरजी के व्याख्यान पढ़ने चाहिये ।

आगम तो उन्हें कण्ठस्थ थे ।

उनके व्याख्यान तो आगम तत्त्वों के भण्डार थे ।

अभी व्याख्यान साहित्य अप्रकाशित भी बहुत है ।

वे छोटे से जीवन में सब पूरा करके गये । हमारे पास 'टीम' होने पर भी हम वह कार्य पूरा नहीं कर सकते ।

पूज्य पं. भद्रंकरविजयजी म. का साहित्य पढ़ता हूँ तो विचार आता है कि यह शैली किसकी है ? पूज्य रामचंद्रसूरिजी की तो है ही नहीं । पूज्य भुवनभानुसूरिजी तो छोटे थे । तो यह प्रदान किसका है ?

मेरे गुरुदेव पूज्य पं. भद्रंकरविजयजी म. कहते थे : मैं आठ वर्ष का था तब बड़े पिताजी (भोगीभाई ने) पाटन में वि. संवत् १९७३ में पूज्य सागरजी को वाचनाओं के लिए तीन वर्ष रखे थे । आठ वर्ष का मैं, नित्य वहां बैठा रहता । वे लिखने-पढ़ने में व्यस्त रहते थे, ज्ञान की जगमग ज्योति जलती ।

पूज्य सागरजी के पास बैठे रहने से ही उनका प्रभाव उनके साहित्य पर पड़ा है ।

*** भूराभाई पंडित** (सरस्वती पुस्तक भंडारवाले) कहते थे कि शासन के चार स्तम्भ हुए हैं :

(१) मन्दिरों का जीर्णोद्धार करनेवाले पूज्य नेमिसूरिजी ।

(२) आगमों का जीर्णोद्धार करनेवाले पूज्य सागरजी महाराज ।

आजके शुभ दिन हम संकल्प करें कि ४५ आगमों का एक बार तो अवश्य वांचन करेंगे । श्रावक गण संकल्प करें कि हम आगमों का श्रवण करेंगे और बालकों को धार्मिक विद्यापीठों में अध्ययन करायेंगे ।

आज दिगम्बर समाज में विद्वान् श्रावक देखने को मिलते हैं, परन्तु श्वेताम्बरों में विद्वान् श्रावक देखने को नहीं मिलते । आगमों में विद्वान् श्रावकों के लिए विशेषण आते हैं - 'लन्द्रद्वा' आदि ।

गुरुकुल, श्राविकाश्रम, मेहसाना संस्था आदि अनेक विद्याधाम हैं । यदि हम उन्हें प्रोत्साहन देंगे तो ही पूज्य सागरजी महाराज को सच्ची श्रद्धांजलि दी गिनी जायेगी ।

अन्तिम पन्द्रह-पन्द्रह दिनों तक ध्यान-दशा में रहना कितना दुष्कर कहा जाये ?

‘ज्ञाणज्झयणसंगया’

- पंचसूत्र

काल के प्रभाव से ध्यान-साधना लुप्त प्रायः हो गई है । प्रत्येक क्रिया ध्यानमय होने पर भी उसे उस प्रकार कर नहीं सकते । अतः अन्य शिविरों में जाकर जैन-शासन से विमुख होने वाले जैन देखने को मिलते हैं ।

यहां ध्यान-मार्गी पूज्य कलापूर्णसूरिजी, पूज्य यशोविजयसूरिजी जैसे यदि दस-पन्द्रह दिन तक चले वैसी ध्यान-पद्धति चलायेंगे तो अत्यन्त आनन्द होगा ।

पूज्यश्री हेमचन्द्रसागरसूरिजी :

‘गुर्वाधीन्यं सुसत्त्वं च, संयमे सुप्रतिष्ठितम् ।

महतां लक्षणं तुर्यं, विपुलो ज्ञानवैभवः ॥’

प्रश्न है : महान कौन ? महापुरुष बनने के अरमान तो सबके होते हैं परन्तु कौन महापुरुष बन सकता है ?

इस श्लोक में चार बातें हैं :

(१) गुरु - अधीनता ।

(२) सत्त्वशीलता ।

(३) संयम में चुस्तता ।

(४) विपुल ज्ञान - वैभव ।



पालिताना, वि.सं. २०५६

३१-७-२०००, सोमवार

श्रा. कृष्णा अमावस

* जिसके हाथों दीक्षा हुई हो वह अपनी शक्ति दीक्षित में स्थापित करे । भगवान जैसे दीक्षा-दाता हों वहां कितनी शक्ति प्रकट होगी ? भगवान ने इस तीर्थ में शक्ति डाली है, वह आज भी कार्यशील है ।

(१) जिज्ञासा :

‘ भयवं किं तत्तं ? ’ गणधरों का यह प्रश्न भीतर की उत्कट जिज्ञासा व्यक्त करता है । यह जिज्ञासा भी भगवान के समक्ष विनयपूर्वक, प्रदक्षिणा एवं वन्दनपूर्वक प्रस्तुत की है ।

प्रश्न भीतरी जिज्ञासा प्रकट करता है । जिज्ञासा के बिना प्रश्न हो ही नहीं सकता । जिज्ञासा के बिना आप किसी को ज्ञान देते हैं अर्थात् भूख के बिना आप उसे भोजन कराते हैं । ग्राहक की मांग के बिना यदि आप उसे माल देते हो तो आपको भाव घटाना पड़ेगा ।

एक प्रश्न से समाधान नहीं हुआ तो गणधरों ने दूसरा तथा तीसरा प्रश्न भी पूछा और उस में से उन्हें त्रिपदी मिली । त्रिपदी ध्यान की माता है । उसमें से द्वादशांगी का जन्म हुआ । उत्पत्ति, व्यय एवं ध्रौव्य तीन मूल बीज हैं, जिनमें से समग्र ज्ञान का जन्म

होता है। छोटे से बीज में से बड़ा जंगल उत्पन्न होता है। मरुदेवी एक थे, परन्तु उनकी सन्तति कितनी थी ? कितने समय तक यह परम्परा चली ?

इन तीन पदों में ध्यान के बीज हैं। उन शब्दों में प्राणों का संचार करने वाले भगवान हैं, ग्रहण करने वाले गणधर हैं। इसीलिए उन्हें विशिष्ट ध्यान लगता है और उसमें से द्वादशांगी का सृजन होता है। वही त्रिपदी में बोलूं और आप सुनें तो द्वादशांगी का सृजन नहीं होता।

* यहां लिखा है - 'धर्म प्रति मूलभूता वन्दना ।'

आन्तरिक भाव से वन्दन नहीं हो तब तक धर्म का जन्म नहीं होता। मन-वचन-काया तीनों नम्र बनें तो ही भाव-नमस्कार आयेगा।

* भूख प्रत्येक व्यक्ति को लगती है, परन्तु जिज्ञासा किसी विरले को ही होती है। 'इसका क्या अर्थ होता है ?' यह जानने की इच्छा ही जिज्ञासा है। जिज्ञासा के बिना सम्यग्ज्ञान नहीं होता, सम्यग्ज्ञान के बिना सम्यक् किया नहीं होती। मिथ्यात्वी को यह कदापि प्राप्त नहीं हो सकती।

(२) विधि-परता :

किसी भी वस्तु के निर्माण के लिए विधि का ज्ञान चाहिये। खिचड़ी बनानी हो तो भी ज्ञान चाहिये। हण्डिया में कैसे रखनी ? चावल और मूंग कितने डालने ? आदि बातें जाने बिना क्या खिचड़ी बनाई जा सकती है ?

* आप धैर्य रखें; भगवान एवं भगवान का शासन आपको सब देने के लिए तैयार ही है। भगवान पर अटल आस्था होनी चाहिये -
'देशो तो तुमही भलूं, बीजा तो नवि याचूं रे ।'

- पूज्य उपाध्याय यशोविजयजी
यह अचल धैर्य है। भगवान मिलने के पश्चात् उपाध्याय महाराज गाते हैं -

'मारे तो बननारूं बन्युं ज.छे,
हूं तो लोकने वात सिखाऊं रे ।'
'धन्य दिन वेला धन्य घड़ी तेह ।'

यह प्रभु-मिलन का आनन्द है, जो इन पंक्तियों में व्यक्त हुआ है ।

* ज्ञानी कहते हैं : पल-पल, सांस-सांस में प्रभु का स्मरण करो । प्रभु को याद नहीं करते तब निश्चय मानें कि मन संक्लिष्ट है । प्रभु हो तो मन कदापि संक्लिष्ट नहीं होता ।

‘तुम न्यारे तब सब ही न्यारा...’

(३) गुरु योग :

भगवान दूर तो सब दूर । भगवान निकट तो सब निकट । ऐसे भगवान को नमस्कार करो । इस ‘नमो’ में विनय है । नवकार में प्रथम ‘नमो’ है, उसके बाद अरिहन्त है । ‘नमुत्थुणं’ में प्रथम ‘नमो’ है । दशवैकालिक में लिखा है -

‘आधारस्स मूलं विणओ ।’

यह समस्त विनय नमो का महत्त्व बताता है ।

गुरु के विनय के बिना सम्यग् क्षयोपशम कदापि खुलता नहीं है ।

ऐसे मनुष्य को पढ़ने की (अध्ययन करने की) इच्छा भी नहीं होती । उसे विचार भी ऐसे ही आते हैं कि अनपढ़ के भी शिष्य हो जाते हैं तो मुझे पढ़ने की सिर-पच्ची करने की आवश्यकता क्या ? ये अज्ञानी के विचार हैं ।

जिज्ञासा उत्पन्न करने के लिए सर्व प्रथम मोह का क्षय आवश्यक है । यदि यह क्षय नहीं हो तो क्षयोपशम चाहिये । इसीलिए यहां ‘विशिष्ट क्षय - क्षयोपशमनिमित्ता इयं (जिज्ञासा) न असम्यग्दृष्टेः भवति ।’ ऐसा लिखा है, अन्यथा, क्षय के पश्चात् क्षयोपशम लिखने की आवश्यकता नहीं थी ।

* हम गृहस्थों को तो उपदेश देते हैं, परन्तु हम अपनी ही आत्मा को भूल जाते हैं । बारात में दुल्हा को ही भुला दिया गया है ।

* बोध देने वाले गुरु में कम से कम चार गुण चाहिये ।
(१) यथार्थ नामवाले :

‘तत्त्वं गृणातीति गुरुः ।’ यह व्याख्या लागू हो ऐसे गुरु होने चाहिये ।

(२) स्व-पर शास्त्रों के ज्ञाता ।

(३) पर-हित में तत्पर ।

(४) सामने वाले के आशय के ज्ञाता ।

गुरु केवलज्ञानी थोड़े ही हैं जो दूसरों का आशय समझ लें ? केवलज्ञान चाहे न हो, केवलज्ञानी का सहाय तो है न ? कई बार श्रोतागण मुझे कह कर जाते हैं कि हमारे ही मन की बातें आपने कह दीं । हमारे मन का समाधान हो गया ।

शिष्य किस आशय से अवकाश मांगता हो ? गुरु उसे बराबर समझ जाते हैं । चाहे वे बोलें नहीं ।

मैं पहले स्पष्टीकरण कर देता हूँ कि मुझमें चारों में से एक भी गुण नहीं है । कदाचित् आप ये पूछें कि फिर व्याख्या करने क्यों बैठे ? तो मैं कह दूँ - पूज्य हरिभद्रसूरिजी की टीका, पूज्य मुनिचन्द्रसूरिजी की पंजिका, पूज्य भुवनभानुसूरिजी की व्याख्या मेरे सामने है । उन पर बहुमानपूर्वक बोलता हूँ । अन्यथा, मुझ में शक्ति कहाँ है ? मेरी भूलों के लिए आप मुझे क्षमा करें ।

उमास्वाति महाराज कहते हैं : मैंने भिखारी की तरह दाने चुन-चुनकर सब एकत्रित किया है । मैंने भी इसी प्रकार से एकत्रित किया है ।

हमें गौतम स्वामी जैसे गुरु चाहिये । इसीलिए प्राप्त गुरु का विनय नहीं करते । परन्तु हम जानते नहीं हैं कि गौतम स्वामी जैसे गुरु के शिष्य बनने की भी योग्यता चाहिये न ? अपनी योग्यता का हम विचार नहीं करते ।

वर्तमान समय में प्राप्त गुरु का बहुमान करोगे तो आगामी भव में गौतम स्वामी जैसे गुरु मिलेंगे ।

यशोविजयजी को अपने गुरु नयविजयजी के प्रति कितना बहुमान था ? विनयविजयजी तो अपने गुरु कीर्तिविजयजी के नाम को मन्त्र मानते थे ।

इस प्रकार का गुरु के प्रति बहुमान हो तो ही ज्ञान आता है ।

गुरु का बहुमान करने से ज्ञान प्राप्त हुआ है, इसलिए यह गुरु का कहलाता है ।

* चाण्डाल का स्पर्श वर्जित गिना जाता है, परन्तु प्रभु के चरणों के स्पर्श के लिए उतावल की जाती है, कारण क्या ?

अशुभ स्पर्श का प्रभाव अशुभ होता है और शुभ का शुभ । यह बात इससे स्पष्ट हो जाती है ।

तांबे को स्वर्ण-रस का स्पर्श होने पर वह स्वर्ण बन जाता है, ऐसा कहते हैं । यह स्पर्श का प्रभाव है ।

जब तक प्रभु का स्पर्श न हो तब तक हम तांबा हैं । भगवान का स्पर्श तो वेधक-रस है । उनका स्पर्श होते ही अपनी पामर आत्मा परम बन जाती है । अप्रकाशित दीपक प्रकाशित दीपक के स्पर्श के बिना प्रकाशित नहीं बन सकता, उस प्रकार प्रभु के स्पर्श के बिना अपनी आत्मा परम आत्मा नहीं बन सकती ।

प्रभु के गुण कदाचित् प्राप्त न कर सको, विकसित न कर सको, परन्तु उनके प्रति प्रेम तो बढ़ा सको न ? प्रभु के गुणों का प्रेम ही वेधक रस है, जो आपको स्वर्ण-मण्डित कर देगा ।

गुरु में भी भगवान की शक्ति कार्य कर रही है । इसीलिए गुरु के चरणों को स्पर्श करने की इतनी महिमा है । वे जहां बैठे हों उस पाट, आसन आदि को कितने भावपूर्वक स्पर्श करते हैं ? वांदणा में क्या है ? 'अहो, कायं-काय-संकासं' के द्वारा गुरु के चरणों की कल्पना कर के उनका भाव से स्पर्श करते हैं ।

भावपूर्वक स्पर्श करने से बहुमान उत्पन्न होता है । बहुमान गुणों के लिए प्रवेश-द्वार है ।

(३) विधिपरता :

गुरु को वन्दन की आवश्यकता नहीं है, परन्तु यह विधि है । इसके बिना ज्ञान नहीं आता ।

कितनी ही विधियां हैं जैसे - मांडली में बैठना, स्थापनाचार्य, गुरुजनों का अनुक्रम, औचित्यपूर्वक आसन आदि बिछाना, विक्षेप का सर्वथा त्याग करना (वाचना आदि का फल प्राप्त करना हो तो विक्षेप का त्याग करना ही पड़ता है, टेढ़े-मेढ़े प्रश्न, टेढ़ी-मेढ़ी दृष्टि आदि विक्षेपकारी परिबल हैं) उपयोग पूर्वक सुनना ।

यह गुरु के पास ज्ञान प्राप्त करने की विधि है । ऐसा करेंगे तो

कल्याण हुए बिना रहेगा ही नहीं, शास्त्रकार ऐसी 'गारंटी' देते हैं ।

उपाय उपेय को देकर ही शान्त रहता है । यह नियम है । दीपक जलाओगे तो प्रकाश होगा ही । पानी पियोगे तो प्यास बुझेगी ही । विधि पूर्वक करो तो कल्याण होगा ही ।

भगवान की भक्ति करो तो मंगल होता ही है, दुर्गति का भय नष्ट होता ही है । भगवान के भक्त को दुर्गति का भय कैसा ? भक्त निश्चिन्त होता है । क्या हम इतने (ऐसे) निश्चिन्त हैं ?

ॐ ॐ ॐ

जब तत्त्व की बात समझ में आती है

अहमदाबाद में तत्त्वज्ञान के वर्ग चलते हैं । एक बहन मंडल की सदस्या होने से वर्ग में आतीं । दो माह के पश्चात् एक बार मिलने आईं । अत्यन्त रोईं । कारण पूछने पर बताया कि, 'मैं अधोगति में जाऊंगी, अतः रोती हूँ ।'

'तुझे ऐसा किसने कहा ?'

'आपने ।'

'अरे ! मेरे पास ऐसा ज्ञान कहां है कि तुझे बता सकूँ कि तेरी गति क्या होगी ?'

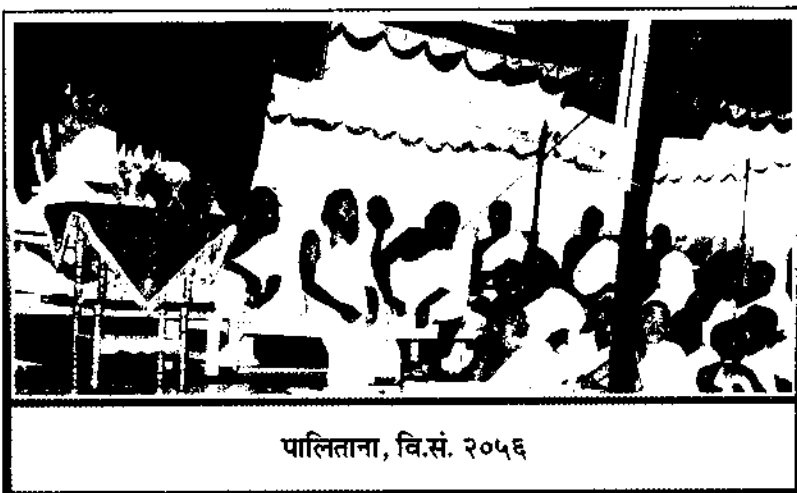
'आपने तत्त्व के वर्ग में कहा था कि अति क्रोध, असत्य आदि के परिणाम से जीव अधोगति में जाता है ।'

'तू एक काम कर, अभी तक आयुष्य का बंध हुआ है या नहीं, उसका पता नहीं है, परन्तु तू प्रभु-भक्ति में लग जा । दर्शन-पूजन ही तेरा उद्धार कर लेंगे ।'

और असत्य नहीं बोलने आदि के नियम ग्रहण कराये ।

एक वर्ष के पश्चात् उसके पति मिलने के लिए आये और कहने लगे कि बहन ! जीवन में घर में शान्ति-शान्ति हो गई है जिसके लिए आपका आभार ।

- सुनन्दाबेन वोरा



पालिताना, वि.सं. २०५६

१-८-२०००, मंगलवार
सावन शुक्ला-२

* पंचांगी आगम का अपमान भगवान का अपमान है ।
आगमों में से किसी भी अंग को आप नहीं मानते अर्थात् भगवान
को ही नहीं मानते । उनके अंग का छेदन करते हो अर्थात् भगवान
का ही छेदन करते हों ।

‘चूर्णि भाष्य सूत्र निर्युक्ति,
वृत्ति परस्पर अनुभव रे;
समयपुरुषना अंग कहा ए,
जे छेदे ते दुर्भव्य रे ।’

- पूज्य आनन्दधनजी

अनुभव एवं परम्परा भी साथ ले लिये हैं । इन छः में से
एक का भी अपमान अर्थात् भगवान का अपमान मानें ।

टीकाकार हरिभद्रसूरिजी स्वयं आगम पुरुष हैं । उनकी रचना
आगम तुल्य गिनी जाती हैं ।

उपाध्याय यशोविजयजी द्वारा रचित सवासौ गाथों के स्तवन
पर पद्मविजयजी महाराज ने टबा लिखा है, जिसमें उल्लेख है कि
हरिभद्रसूरि के ग्रन्थ भी आगम ही गिने जाते हैं । उनकी बात
आप नहीं मानते तो आगमों को ही नहीं मानते ।

* आगमों आदि को पढ़ने में तो नया-नया आने से फिर भी रस आता है, परन्तु दैनिक किये जाने वाले चैत्यवन्दन आदि में प्रायः रस नहीं आता । हरिभद्रसूरिजी के समय में भी कदाचित् ऐसी स्थिति होगी, अतः उनकी 'ललित विस्तार' लिखने की इच्छा हो गई होगी ।

* उपमिति, समराइच्च, वैराग्य कल्पलता आदि पढ़ने से भी वैराग्य उत्पन्न नहीं हो तो समझें कि यह जीव दुर्भव्य अथवा अभव्य होगा ।

अनन्त भव नहीं करने हों तो इस भव में तनिक सहन कर लें । तनिक साधना कर लें तो काम हो जाये ।

वयोवृद्ध महात्मा इसीलिए पहले वैराग्यकारक ग्रन्थ कण्ठस्थ करकर फिर व्याकरण आदि में प्रवेश करते थे ।

* हम तो अमुक वर्षों में चले जायेंगे परन्तु ये आगम स्थायी रहेंगे । हजारों वर्षों तक इनके आधार पर ही शासन चलेगा । इन आगमों की हम उपेक्षा नहीं कर सकते । भावी पीढ़ी की उपेक्षा नहीं की जा सकती ।

जैन श्रावक अपनी सन्तान की चिन्ता करता है कि कहीं मेरा पुत्र दुर्गति में न जाये । हमारे यहां एक बात आती है न ? किसी भी तरह से धर्म-क्रिया नहीं करने वाले अपने पुत्र को धार्मिक बनाने के लिए उसके पिता ने चौखट की साख पर भगवान की मूर्ति बिठाई, द्वार छोटा करवाया ।

भले ही वह पुत्र मृत्यु के पश्चात् मछली बना परन्तु बाद में तो ठिकाना पड़ा न ? वहां से मर कर आठवे देवलोक में गया न ?

श्रावक चिन्ता करे तो क्या हमें अपनी भावी पीढ़ी की चिन्ता नहीं करनी ? यह सब बात मैं कोमलता से करता हूं । ठिकाना पड़ेगा न ? या ओर अधिक कठोर भाषा की आवश्यकता पड़ेगी ? 'लातों के देव बातों से नहीं मानते' ऐसा तो नहीं है न ?

युगलिक काल में तो केवल हकार, मकार, धिक्कार से कार्य हो जाता था । परन्तु ज्यों ज्यों पतनोन्मुख काल आया, त्यों त्यों अधिक शिक्षा की आवश्यकता पड़ने लगी ।

जीवों की चक्रता, जड़ता अधिक होती है त्यों अनुशासन कठोर बनता जाता है ।

(४) बोध परिणति :

* बोध सच्चा वही कहलाता है जो परिणाम प्राप्त हो । परिणाम में कुछ नहीं हो वह ज्ञान किस काम का ?

व्यावहारिक ज्ञान भी परिणाम प्राप्त न करें तो क्या सफल होगा ?

ज्ञान भण्डार में से चौपडे मंगवाये । यहां सुनते समय खोले, फिर बंध कर दिये । वहां जाकर खोले कौन ?

ऐसा ज्ञान कल्याणकारी बनेगा, ऐसा प्रतीत होता है ? क्या ऐसा ज्ञान मोह के पिंजरे में से मुक्ति दिला सकेगा ? क्या ऐसा ज्ञान ग्रन्थियों में से मुक्ति दिला पायेगा ?

चौदह ग्रन्थियां हैं । इन ग्रन्थियों से मुक्त हो वही निर्ग्रन्थ है । चौदह ग्रन्थियां सुन लो : नौ नोकषाय + ४ कषाय + मिथ्यात्व = ये चौदह ग्रन्थियां हैं ।

सम्पूर्ण भव-चक्र में मोहनीय का उपशम पांच बार ही हो सकता है । क्षयोपशम असंख्य बार होता है । क्षय एक ही बार होता है । क्षय हो गया अर्थात् क्षायिक सम्यक्त्व मिल गया । क्षायिक सम्यक्त्व मिलने के पश्चात् जाता ही नहीं है ।

मोह का जोर घटने के पश्चात् ही बोध परिणाम पाता है । फिर वहां कुतर्क नहीं होते । ऐसा व्यक्ति जहां तहां जाकर अपने ज्ञान का प्रदर्शन नहीं करता । रत्नों को तो ढक कर रखे जाते हैं, प्रदर्शन नहीं किया जाता ।

कोई बात चलती हो, हम कुछ जानते हों और बिना पूछे तुरन्त ही बोल जाते हों तो समझें कि अपना ज्ञान प्रदर्शक है ।

सच्चा ज्ञान मार्गानुसारी होता है ।

जो उन्मार्ग पर ले जाये वह उल्टा ज्ञान है । मार्गानुसारी ज्ञान भले थोड़ा हो, परन्तु उल्टा तो नहीं ही होता । कभी कुछ बोला जाये अथवा गैर समझ आ जाये, परन्तु वह हठाग्रह में परिणमित हो वैसा न हो । दवा से मिटने वाले दर्द जैसा यह अज्ञान होता है ।

गृहस्थों के पास धन-सम्पत्ति हो, उस प्रकार अपनी सम्पत्ति ज्ञान है। धन नष्ट हो जाता है। यह सम्पत्ति अखूट है। धन को चोर लूटता है। यहां तो कोई नहीं लूटता। कदाचित् कोई लूट लें तो भी यहां तो कम नहीं होता।

चक्रवर्ती का साम्राज्य टिकता नहीं है। अन्त में छोड़ना ही पड़ता है। नहीं छोड़ें तो नरक में ले जाता है। अन्त में उसे यही साधुत्व की शरण में आना पड़ता है। जो नहीं आये वह नरक में जाता है।

कतिपय गृहस्थों को धन से अभिमान आ जाता है, उस प्रकार साधु-जीवन में ज्ञान आदि सम्पत्ति से कइयों को अभिमान आ जाता है। ज्ञान का ही नहीं, अन्य किसी भी लब्धि का अभिमान करने योग्य नहीं है।

दूसरे के अज्ञान पर हास्य एवं मजाक करने की इच्छा हो तो समझे कि अपना ज्ञान अभिमान-कारक है।

आणंदजीभाई पंडितजी पाठ याद नहीं होने पर कहते - 'सर्वथा बुद्ध है, 'ढ' है।' यद्यपि वे तो विद्यार्थी पाठ अच्छी तरह याद करें उसके लिए कहते। यह अभिमान नहीं कहलाता, परन्तु दूसरे का अपकर्ष करने की बुद्धि से ऐसे वाक्य कहे जायें, उसमें अभिमान है।

सच्चा ज्ञानी अपनी ऋद्धि का गर्व नहीं करता, अन्य अज्ञानियों का उपहास नहीं करता, व्यर्थ विवाद नहीं करता, भोले मनुष्यों में बुद्धि-भेद न कराये, समझदार व्यक्तियों को वह समझाता है, दूसरों को नहीं।

इसका नाम ही पात्रता है।

पूज्य पं. श्री भद्रंकरविजयजी म. हमें अनेक बार पूछते - आपको क्या बनना है? वक्ता कि पण्डित? प्रभावक कि आराधक? गीतार्थ कि विद्वान? तत्पश्चात् वे कहते - आराधक, गीतार्थ बनें। यदि गीतार्थ उत्तर दिया हो तो वैसे बनें।

पू. नूतन आचार्यश्री : 'आपने तो पूछ लिया होगा?'

पूज्यश्री : मैंने तो पहले से ही निश्चित कर लिया था, पूछने की आवश्यकता ही नहीं थी।

मैं उन्हें वन्दन करता । वे मुझे इनकार करते, वे कहते - आप आचार्य हैं, आप वन्दन नहीं कर सकते; परन्तु मैं कहता - इस समय मैं आचार्य नहीं हूँ, विद्यार्थी हूँ, शिष्य हूँ; तो भी पाट पर तो मुझे समीप ही बिठाते । उनकी उपस्थिति में मैं प्रवचन भी करता ।

भगवान् ज्यों बुलवायेंगे वैसे बोलूंगा । कोई टेढ़ा-मेढ़ा होगा तो पंन्यासजी म. बतायेंगे वैसे करूंगा । चिन्ता क्या है ? ऐसे विचार के साथ प्रवचन भी कर चुका हूँ ।

(५) स्थिरता :

सच्चा ज्ञानी कदापि विवाद नहीं छेड़ता ।

आप भी देखते हैं, कितनों का जीवन वाद-विवाद में ही पूरा हो जाता है । अनेक गृहस्थ कोर्ट-कचहरी के लफरों में जीवन पूरा कर डालते हैं ।

सच्चा ज्ञानी भोले मनुष्यों की बुद्धि में भेद नहीं करता ।

योग्य व्यक्ति को वह अपना ज्ञान देता है । इसका नाम ही पात्रता है ।

यह पात्रता ही गुणवान् मनुष्यों को मान्य है । यह तो मूर्तिमंत शमश्री है ! भाव-सम्पत्ति का स्थान है !

द्रव्य सम्पत्ति तो अनेक व्यक्तियों को मिलती है । जिसै भाव-सम्पत्ति प्राप्त हो वह सच्चा भाग्यशाली गिना जाता है ।

ज्ञान का अध्ययन करना हाथ की बात है, गुण प्राप्त करने हाथ की बात नहीं है । ध्यान लगाना, स्थिरता-प्राप्ति क्या हाथ की बात है ? आप निश्चय करो कि आज मुझे अपना मन स्थिर रखना है और मन भागने लगेगा । इसीलिए आनन्दधनजी ने कहा है -

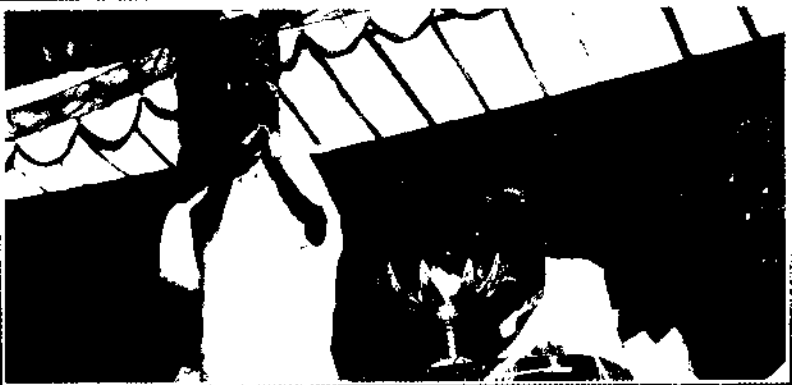
‘मनडुं किमही न बाझे हो कुंशुजिन !’

उनकी भी ऐसी दशा हो तो अपनी तो बात ही कहाँ ?

मन को स्थिर करने का प्रयत्न करो तब लगता है कि मानों खटमल हो । पकड़ने जाओ तो भागे ।

मन की चार अवस्थाएँ समझ लो - विक्षिप्त, यातायात, सुश्लिष्ट और सुलीन ।

प्रारम्भ में आप स्थिर रखने का प्रयत्न करोगे तो मन विक्षिप्त



पू. जगवल्लभसूरजी के साथ, पालिताना, वि.सं. २०५६

२-८-२०००, बुधवार
सावन शुक्ला-३

* किसी कैदी को कारागार से मुक्त करने के लिए कोई सज्जन प्रयत्न करे उस प्रकार मोह की कैद में से छुड़ाने के लिए भगवान ने प्रयत्न किया ।

सम्यक्त्व अर्थात् कैद में से मुक्त होने की लगन ।

सम्यक्त्व में भी अपूर्व आनन्द आता हो तो मोक्ष में कितना आनन्द आता होगा ?

सम्यक्त्व आदि की प्रभावना करके भगवान सबको आनन्द की प्रभावना कर रहे हैं । यही भगवान की करुणा है, परार्थ व्यसनिता है ।

‘मुझे एक हजार वर्षों में मिला वह पलभर में कोई क्यों प्राप्त कर ले ?’ (मरु देवी आदि) ऐसा भाव हमारे मन में आ सकता है, भगवान के मन में नहीं ।

ब्रह्माण्ड में सर्वत्र अरिहंत की करुणा कार्य कर रही है । सिद्धों ने हमें निगोद में से बाहर निकाला यह सही है, परन्तु सिद्धों को सिद्ध बनाने वाले भी अरिहंत ही हैं न ?

हमें मान-सम्मान मिलता है वह क्या अपने नाम से मिलता

है ? यहां प्रत्यक्ष भगवान का उपकार है, उसे तो स्वीकार करें । आप भगवान के शासन में न हो तो आपको कौन पूछे ?

* आत्मा निमित्तवासी है । जिसके पास रहेगी वैसी बनेगी । यदि हमारा जन्म कसाई आदि के घर हुआ होता तो ? कैसे संस्कार आते ? मारने-काटने के दृश्य हमें कभी कभी देखने को मिलते हैं तो भी क्षुब्ध कर देते हैं । (अहमदाबाद में स्थंडिल के लिए जाते समय मुर्गे कटते हुए देखने को मिलते । बचपन में हैदराबाद में खुले आम लटकते प्राणियों के शव देखने को मिलते, परन्तु मैं वह मार्ग ही छोड़ देता ।) तो ये दृश्य जिन्हें नित्य देखने को मिलते हों, वे धीरे-धीरे ढीठ हो जाते हैं । यह है संगति का प्रभाव ।

* आप इतना निश्चय करें कि यह जन्म सब व्यर्थ नहीं जाने देना है । भले कम अध्ययन हो, परन्तु अध्ययन किया हुआ भावित बना हुआ होगा तो आत्म-कल्याण होकर ही रहेगा । ज्ञान दूसरे का काम में आ जायेगा परन्तु भावितता आपकी ही आवश्यक होगी, श्रद्धा आपकी ही आवश्यक होगी ।

* बोध-परिणति :

ज्ञान परिणति में आने के पश्चात् स्थिरता चाहिये । अभिमान ज्ञान को स्थिर होने नहीं देता । इसीलिए सर्वप्रथम ज्ञान के अनुत्सेक की बात कही । ज्ञान बढ़ने के साथ अज्ञान का भान होता रहना चाहिये । ज्यों ज्यों अध्ययन करते जायें, त्यों त्यों अपना अज्ञान दृष्टिगोचर होता जाये तो अभिमान नहीं आता ।

* मुझे अभी एक स्वप्न आया था कि चारों ओर हरियाली है, चारों ओर निगोद है । कहां पांव रखे ? जहां निगोद नहीं थी, वहां मैंने पांव रखा ।

जयणा एवं करुणा भावित होने पर ही ऐसे स्वप्न आ सकते हैं । स्वप्न आपके भीतर की परिणति का सूचक है ।

आजकल हैजे (कोलेरा) के वायरस चलते हैं । किसी को भी उल्टी-दस्त होने लगती हैं तब तुरन्त ही होस्पिटल में प्रविष्ट होकर बोटल लेना प्रारम्भ करते हैं, 'गोलियां लेते हैं' उस प्रकार आत्मा थोड़ी भी भूल करे तो तुरन्त सचेत हो कर उसकी प्रतिक्रिया करनी चाहिये ।

वर्तमान ज्ञान मुझे निरन्तर पर-लक्ष्मी प्रतीत होता है । व्याख्यान आदि में उपयोगी होगा, यह मानकर अध्ययन करते हैं । आत्म-लक्ष से अध्ययन करनेवाले कितने हैं ?

* जीव शरीर से भिन्न है यह सत्य है, परन्तु हम उसे भिन्न देख नहीं सकते । दूध और जल मिश्रित हो तो हंस उसमें से दूध-दूध पी लेता है और पानी छोड़ देता है । यही सच्चा विवेक है ।

इस समय हम चेतन होते हुए भी जड़ जैसे बन गये हैं, पुद्गल के पक्ष में बैठ गये हैं, निरन्तर देह-भाव का पोषण कर रहे हैं । अपना षट्कारक चक्र उल्टा घूम रहा है, जो बाधक बन कर सतत कर्म-बन्धन कराता रहता है । अब यदि इसे साधक बनायें तो इसके द्वारा ही कर्म-विसर्जन का कार्य किया जा सकता है ।

* अभी 'भगवती' में निगोद की अत्यन्त सूक्ष्म चर्चा चल रही है । गोले, निगोद, जीव आदि की चर्चा पढ़ने पर लगता है कि अपने ही आत्म-बन्धु कैसी दशा में हैं ? हम भी एक दिन यहीं थे ।

किसी सिद्ध का उपकार है कि उसमें से हम बाहर निकले । बाहर निकलकर ठेठ मानव-भव तक पहुंचे, परन्तु यहां आने के पश्चात् सब जीवों का उपकार ले रहे हैं, परन्तु प्रायः किसी पर उपकार करते नहीं हैं । हमें जीवित रखने के लिए पृथ्वी, पानी, हवा, वनस्पति आदि के कितने जीव निरन्तर अपने प्राणों की आहुति देते रहते हैं ? इस विषय में कभी तो सोचो ।

* ज्ञान एवं दर्शन दोनों मिलकर ही चारित्र मिलता है ।

'ज्ञाननी तीक्ष्णता चरण तेह,

ज्ञानं एकत्वता ध्यान गेह ।'

- पू. देवचन्द्रजी, अध्यात्मगीता ।

आगमों में हो तो ही पू. देवचन्द्रजी यहां ऐसी व्याख्या लिखते, अन्यथा कदापि नहीं लिखते । देखो, पू. उपा. यशोविजयजी कहते हैं -

'ज्ञानदशा जे आकरी, ते चरण विचारो;

निर्विकल्प उपयोगमां, नहीं कर्मनो चारो ।

दोनों एक ही बात कहते हैं ।

जिस रीतिसे जाना हुआ हो उस रीति से जीना यही ज्ञान की तीक्ष्णता है, वही चारित्र्य है ।

यहां चैत्यवन्दन के विषय में आप सीखते हैं । सीखने के पश्चात् चैत्यवन्दन तदनुसार ही करो तो वह ज्ञान तीक्ष्ण बन जाता है ।

* अशुभ विकल्प में पाप का आश्रय ।

शुभ विकल्प में पुण्य का आश्रय ।

निर्विकल्पदशा में सम्पूर्ण संवर ।

(६) उक्त क्रिया :

जिस रीति से मुद्रा आदि के लिए लिखा, उस रीति से शक्ति के अनुसार करना 'उक्त क्रिया' है । मैं आजकल बांया पांव ऊंचा नहीं कर सकता, क्योंकि उतनी शक्ति नहीं है । इसीलिए लिखा है - 'यथा शक्तिः' ।

आहार के ज्ञान मात्र से भूख नहीं मिटती ।

दवाई की जानकारी मात्र से आरोग्य नहीं मिलता ।

चैत्यवन्दन की जानकारी मात्र से सफलता नहीं मिलती ।

दवाई न लेकर आप रोग के लिए शिकायत नहीं कर सकते । 'उक्त क्रिया' न करके आप शिकायत नहीं कर सकते कि चैत्यवन्दन में आनन्द नहीं आता । यदि पूर्ण फल चाहिये तो जाना हुआ अमल में लेना ही पड़ता है । यहां कथनानुसार आप चैत्यवन्दन करेंगे तो इसी जन्म में आप निहाल हो जाओगे । यहां ही आनन्द का अनुभव होगा ।

* 'लोगस्स' अर्थात् क्या ?

स्वयं गणधरों के द्वारा २४ भगवानों की की गई स्तुति । गणधरों के गृहस्थ-जीवन की स्थिति हम जानते हैं । भगवान मिलने के पश्चात् की स्थिति भी हम जानते हैं । वे तो यही मानते हैं कि 'हम सर्वथा लोहा थे । भगवान ने हमें स्वर्ण बनाया ।'

वे भगवान को कैसे भूल सकते हैं ?

वे स्तुति के द्वारा हमें सिखाते हैं कि भगवान के द्वारा ही आरोग्य, बोधि, समाधि आदि मिलेगी । भगवान नहीं मिले होते तो कर्म के इस रोग में से तनिक भी मुक्त नहीं बन सके होते ।

‘मैं रोगी हूँ’ ऐसा भान भी भगवान के बिना नहीं होता । शरीर का रोग हमें अखस्ता है, परन्तु शरीर में बैठी आत्मा को जो रोग है, उसका विचार तक नहीं आता । विचार आये तो भगवान के पास आरोग्य मांगने का मन हो न ?

‘प्रभु ! प्रसन्न हो और मुझे ये तीन पदार्थ अवश्य दें : आरोग्य, बोधि और समाधि ।’ इन तीनों में गणधरों ने पूर्ण मोक्ष-मार्ग मांग लिया ।

गणधरों की यह मांग है ।

आप की मांग क्या है ?

भगवन् ! अकेला हूँ । एकाध शिष्य मिल जाये तो काम हो जाये । ऐसा कुछ नहीं मांगते न ? गृहस्थों की अपने क्षेत्र की इच्छाएँ होती हैं । यहां भी इस प्रकार की इच्छाएँ हो सकती हैं । ऐसी इच्छाएँ हों तो समझें - यहां आकर हम नया संसार खड़ा कर रहे हैं ।

* निष्णात के कथनानुसार औषधि न लें तो रोग तो नहीं मिटेगा परन्तु उल्टा रोग बढ़ जायेगा ।

यहां भी प्रत्यपाय संभव हो सकता है ।

कालग्रहण आदि में गलती हो जाये तो कई बार पागलपन, भूत-पिशाच-डाकिनी का उपद्रव आदि होते प्रतीत होते हैं, गुरु चाहे कुछ न करें परन्तु आसपास के देव थोड़े ही क्षमा करेंगे ?

एक साध्वीजी ने ‘गर्म पानी से कुछ रोग हुआ है ।’ यह कहा तब शासनदेवी ने उसकी खबर ले ली । बाद में साध्वीजी ने अपनी भूल स्वीकार कर ली ।

गर्म पानी से रोग आता है कि जाता है ? इस समय हैजे (कोलेरा) के वातावरण में तो डॉक्टर विशेष तौर पर उबाला हुआ पानी पीने की सलाह देते हैं ।

ॐ ॐ ॐ





दीक्षा प्रसंग, लुणावा (राज.), वि.सं. २०३२

३-८-२०००, गुरुवार
सावन शुक्ला-४

* जिनके कर-कमलों से इस तीर्थ की स्थापना हुई, उनका सामर्थ्य अप्रतिहत एवं अचिन्त्य था। आज भी उक्त सामर्थ्य सक्रिय है। तीर्थ की भक्ति करने से उस सामर्थ्य का अनुभव होता है।

स्वयं को पूर्ण समर्पित हो जाये उसे तीर्थ, तीर्थकर बनाते हैं। प्रत्येक तीर्थकर तीर्थ के द्वारा ही तीर्थकर बने हैं जो उनके नमस्कार ('नमो तित्थस्स') के द्वार ज्ञात होता है। तीर्थकर भले ही नहीं मिले, परन्तु जिस में से तीर्थकर उत्पन्न होते हैं वह तीर्थ मिला है, यह कम पुण्य की बात नहीं है।

दिव्य नेत्रों वाले तीर्थकर चाहे नहीं है, परन्तु उनके शासन के रागी ज्ञानी मिलते ही हैं।

'वस्तु विचारे रे दिव्य नयनतणो रे,
विरह पड्य निरधार;
तरतम जोगे रे तरतम वासना रे,
वासित बोध आधार ॥

- पू. आनंदधनजी

तीर्थकर भगवान का प्रभाव गणधरों पर तो स्पष्ट प्रतीत होता

ही है अन्यथा उनकी देशना के पश्चात् गणधरों की देशना सुनने के लिए कौन रुके ? परन्तु श्रोताओं को गणधरों की देशना भगवान के जैसी ही लगती है ।

यहां भगवान का प्रभाव कार्य करता है । वही प्रभाव आज भी कार्य कर रहा है । गणधरों की स्थापना भगवान ने की है उस प्रकार तीर्थ की स्थापना भी भगवान ने ही की है ।

* आगमों में स्थान-स्थान पर 'त्तिबेमि' शब्द बताता है कि मैं मेरी ओर से नहीं, भगवान की ओर से कहता हूं । 'सुअं मे आउसं तेणं भगवया' मैंने भगवान से यह सुना है । जो सुना है वह तुझे कहता हूं ।

* भगवान चाहे आज विद्यमान नहीं हैं, फिर भी गुरु आज भी ध्यान के द्वारा मिलती समापत्ति के योग से भगवान के दर्शन करा सकते हैं ।

'सामायिक धर्म' नामक पुस्तक में भाव-स्पर्श द्वार अवश्य पढ़ें । उससे यह समापत्ति का पदार्थ अधिक स्पष्ट होगा - गुरु किस प्रकार शिष्य को भगवान का स्पर्श कराते हैं ?

प्रीति हुई हो उस व्यक्ति को देखने का मन होना स्वाभाविक है । आनंदधनजी की चौबीसी के प्रथम स्तवन में प्रभु की प्रीति बताई है । चौथे स्तवन में दर्शन की उत्कट अभिलाषा व्यक्त की है ।

अभिलाषा तीव्र बने तो ही प्रभु के दर्शन होते हैं, प्रभु के दर्शन करने वाले गुरु मिलते हैं ।

यह बात याद कराने के लिए ही मानो गुरु आपको नित्य प्रति जिनालय में दर्शनार्थ भेजते हैं ।

आगे बढ़ कर सच्चा प्रभु-भक्त मूर्ति की तरह गुरु में, तीर्थ में और आगमों में भी भगवान के दर्शन करते हैं । भगवान ने जिनकी स्थापना की हो उनमें उनके दर्शन क्यों न हों ?

इक्कीस हजार वर्षों तक शासन चलेगा, जिसमें अपनी शक्ति कार्य नहीं करती, भगवान की शक्ति कार्य कर रही है, क्या यह समझ में आता है ? तीर्थकर प्रभु की अप्रतिम शक्ति थी, इसी लिए तो इन्द्र ने अन्त में कुछ ही क्षणों का आयुष्य बढ़ाने

की विनती की थी । इन्द्र जानते थे कि भगवान की मात्र दृष्टि पड़ जायेगी तो भी यह क्रूर ग्रह कुछ भी नहीं कर सकेंगे । क्षणभर की दृष्टि में भी इतनी शक्ति हो तो तीर्थंकर की समग्र क्षणों की शक्ति कितनी होगी ? उसका अनुमान हम लगा सकते हैं । उक्त शक्ति के प्रभाव से ही इतने तूफानों के मध्य जैन शासन का जय जय कार हो रहा है । मुसलमानों के आक्रमण हुए, मन्दिर-मूर्ति टूटी, पुस्तक जल गई आदि बहुत हुआ, फिर भी शासन अभी तक चलता है और चलता ही रहेगा ।

भगवान की इस शक्ति की गुरु के माध्यम से हम अनुभूति कर सकते हैं । इसीलिए कहता हूँ कि गुरु को कदापि छोड़े नहीं । गुरु को छोड़ा तो भगवान छूट जायेंगे । यदि भगवान छूट गये तो सब छूट जायेगा ।

* क्या भगवान की स्तुति मात्र करने से कोई मनुष्य भगवान जैसा बन जायेगा ? वह कैसे बनेगा ?

कवि अपने ही प्रश्न का उत्तर देते हुए कहता है कि इसमें क्या आश्चर्य है ? एक सेठ भी अपने आश्रित को अपने समान सेठ बना देता हो, तो भगवान क्यों नहीं बना सकें ?

शक्कर भी अपने सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक को मधुर बना देती है । जल में शक्कर डालो तो जल मधुर हो जाता है, घी युक्त आटे में यदि शक्कर मिल जाये तो 'सीरा' बन जाये, मावे में शक्कर मिले तो उसके पेड़ें बन जाते हैं, बरफी बन जाती है । एक शक्कर कितने पदार्थों को मधुर बना देती है ? शक्कर में भी इतनी शक्ति हो तो क्या भगवान में नहीं होगी ?

* 'योगसार' के प्रथम प्रस्ताव में अन्त में प्रभु को दो विशेषण प्रयुक्त हुए हैं ।

भविनां भवदम्भोलिः 'स्वतुल्य पदवी प्रदः ।'

संसार को तोड़ने में वज्र तुल्य । - निग्रह गुण ।

अपने समान पदवी देने वाले । - अनुग्रह गुण ।

निग्रह गुण से भगवान आपको शून्य बना देते हैं । अनुग्रह गुण से भगवान आपको पूर्ण बना देते हैं ।

* कौन सी पीड़ा अधिक खतरनाक होती है ? कांटे,

तलवार, आदि से होने वाली बाह्य पीड़ा खतरनाक होती है कि भीतर कषाय आदि की पीड़ा खतरनाक होती है ? गहराई से देखोगे तो भीतर की (आन्तरिक) पीड़ा खतरनाक प्रतीत होगी । आन्तरिक पीड़ा को नष्ट करने वाले भगवान हैं ।

‘तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ ।’

भगवान तीनों भुवनों की ऐसी पीड़ा को नाश करने वाले हैं ।

- भक्तामर

क्रोध की कैसी वेदना से चंडकौशिक पीड़ित था ? उसके नेत्रों में विष कहां से आया ? पूर्व भव में क्रोध के जो गहरे संस्कार पड़े थे उनके प्रभाव से चंडकौशिक के नेत्रों में विष आया । क्रोध को विष कहा गया है । यह केवल उपमा ही नहीं है, परन्तु इस प्रकार वास्तविक भी है ।

अपनी दृष्टि में भरे हुए विष से वह अन्य को भस्म कर देता था । अतः आप यह न मानें कि दूसरे ही पीड़ा प्राप्त करते थे और वह स्वयं पीड़ा-मुक्त था । कोई भी क्रोधी व्यक्ति दूसरों को पीड़ित करता है, उससे पूर्व वह स्वयं को ही पीड़ित करता है । इस महान् सत्य को समझ लें ।

* जैन गुरु का सम्मान जगत् में सर्वोत्कृष्टता पूर्वक होता है, यह भगवान का प्रभाव मानें । मद्रास में प्रतिष्ठा के अवसर पर हजारों अजैन मनुष्य दर्शनार्थ आते थे । उस समय यह प्रतीत हुआ कि अजैनों में भी जैन सन्तों के प्रति कितना आदर है ? भले वे लोग मांसाहारी थे, परन्तु हृदय के सरल थे । सात व्यसन खतरनाक हैं । इतनी बात करें और वे सातों व्यसन छोड़ने के लिए तत्पर हो जायें । यहां आपको केवल कन्दमूल छुड़वाना हो तो भी हमें खून का पानी करना पड़ता है । एक डॉक्टर को मैंने मांसाहार छोड़ने की बात कही और उसने तुरन्त स्वीकार कर ली । कोई बात समझाने की आवश्यकता नहीं पड़ी । फीस लेने की तो बात ही कहां ?

ओसवाल सभी मांसाहारी क्षत्रिय थे, परन्तु पार्श्वनाथ सन्तानीय पू. स्वप्रभसूरिजी के उपदेश से (अम्बिका देवी की प्रेरणा से) मांसाहार

का परित्याग करते जैन बने । आज भी समस्त ओसवाल उस देवी को (सच्चाई मात को) मानते हैं ।

ओसिया में राजकुमार को सांप ने डस लिया । उस समय दैवी-प्रभाव से पू. रत्नप्रभसूरिजी ने उसे निर्विष कर दिया । उनके प्रभाव से उस समय एक लाख राजपूत वीर संवत् ७० में जैन बने ।

वे ही सब ओसवाल बने । ओसवालों का इतना प्रभाव था कि जोधपुर आदि स्थानों पर मंत्री आदि के पदों पर इन की ही नियुक्ति होती थी ।

इसके द्वारा मैं गुरु-तत्त्व की महिमा बताना चाहता हूँ ।

ये साध्वियों का समूह भी कोई कम उपकार नहीं करता ।

आचार्य हरिभद्रसूरिजी नहीं होते तो 'ललित विस्तर' कहां से प्राप्त होता ?

याकिनी साध्वीजी नहीं होती तो हरिभद्रसूरिजी कहां से मिलते ?

यह साध्वीजी का उपकार है ।

मुनिचंद्रसूरिजी नहीं हुए होते तो उनकी पंजिका के बिना 'ललित विस्तर' किस तरह बराबर समझ में आता ?

भुवनभानुसूरिजी नहीं हुए होते तो परम तेज के बिना 'ललित विस्तर' का विस्तारपूर्वक वर्णन कैसे जाना जाता ?

ये समस्त गुरु भगवंतों का हम सब पर महान् उपकार है ।

गुरु मोक्ष के अवन्ध्य कारण कहे गये हैं । वन्ध्य अर्थात् सन्तानहीन - जिसके सन्तान उत्पन्न न हों । वन्ध्य आम पर फल नहीं लगते । गुरु ऐसे वन्ध्य नहीं, अवन्ध्य कारण हैं । अवश्य फल-दाता अवन्ध्य कारण कहलाते हैं । अतः 'गुरु-बहुमाणो मोक्खो ।' कहा गया है ।

गुरु-समागम का प्रथम ही प्रसंग याद करो । जब गुरु ने आपको समझाने का प्रयत्न किया था, आपको नियम लेने का समझाया था । मैं अपनी स्वयं की ही बात करता हूँ । ऐसे नियमों के कारण ही मेरा धर्म में प्रवेश हुआ ।

गुरुने मधुर वचनों से बुलाकर समझाकर शपथ नहीं दी होती तो क्या इस स्टेज तक हम पहुंचे होते ?

कल्याण की परम्परा गुरु के द्वारा ही चलती है ।

पुण्य गुरु के बहुमान के द्वारा ही बढ़ता है ।

गुरु आपको भगवान के साथ जोड़ देता है । भगवान के साथ जुड़ते ही आपकी कल्याण-परम्परा अखण्ड बन जाती है ।

जितने तीर्थकरों ने पूर्व के तीसरे भव में तीर्थकर नाम-कर्म की निकाचना की है, उन सबने गुरु का आलम्बन लिया है ।

भगवान महावीर स्वामी के समय में ही देखिये न । नौ जने तीर्थकर पद के लिए योग्य घोषित हुए । जो गुरु मिले हैं, उनकी सेवा करें । उनकी योग्यता देखने का प्रयत्न न करें । यह आपका काम नहीं है । कदाचित् योग्यता कम होगी, ज्ञान कम होगा तो भी आपको कोई आपत्ति नहीं है । आप उनसे अधिक ज्ञानी और अधिक योग्य बन सकेंगे । उपाध्याय यशोविजयजी इसके उत्तम उदाहरण हैं ।

गुरु-तत्त्व विनिश्चय में तो 'महानिशीथ' का पाठ देकर स्पष्ट लिखा है कि भगवान के विरह में गुरु ही भगवान हैं, गुरु ही सर्वस्व हैं ।

गुरु चंडरुद्राचार्य क्रोधी थे, फिर भी क्षमाशील शिष्य ने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया । गौतमस्वामी के पास केवलज्ञान नहीं था, फिर भी पचास हजार शिष्यों ने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया ।

यह गुरु-तत्त्व का प्रभाव है ।

यहां व्यक्ति गौण है, तत्त्व मुख्य हैं । व्यक्ति में अयोग्यता हो तो भी स्थायी रूप से थोड़े ही रहती है ? स्वर्ण के कटोरे में मदिरा भरी हुई हो तो भी स्वर्ण स्वर्ण ही है । मदिरा स्थायी थोड़ी ही रहने वाली है ? आप में योग्यता होगी तो आप गुरु के पास प्राप्त कर ही लेंगे ।

प्रश्न यह नहीं है कि गुरु कैसे हैं ?

प्रश्न यह है कि आप कैसे हैं ? आपका समर्पण कैसा है ?

* व्याख्या का सातवां अंग है - 'अल्प भव' ।

दीर्घ संसार वाला आत्मा इस ग्रन्थ के लिए सर्वथा अयोग्य है । चरम पुद्गलावर्त में भी द्विर्बन्धक, सकृद्बन्धक अथवा अपुनर्बन्धक जीव ही इसके लिए योग्य है, दूसरे नहीं ।

दरिद्र एवं अभागे व्यक्ति को चिन्तामणि नहीं मिलता, उस प्रकार दीर्घ संसारी को ऐसा चैत्यवन्दन नहीं मिलता ।

चैत्यवन्दन आपको मिला, उसमें आपका कितना पुण्य है यह सोचना ।

हरिभद्रसूरिजी का कथन है कि यह बात मैं नहीं कहता । आगमों के रहस्य के ज्ञाताओं ने यह बात कही है ।

ॐ ॐ ॐ

पूज्यश्री का वात्सल्य एवं वचन-लब्धि

यह बात है सन् १९८५ की । एक बार किसी गृहस्थ के वहां पुरानी पुस्तकें बेचने के लिए रखी थीं । उनमें से 'तत्त्वज्ञान प्रवेशिका' पर दृष्टि गई । दो तीन पृष्ठ पढ़े और मानो कोई नवीन रहस्य मिला हो, वैसा भाव हुआ । आगे-पीछे के पृष्ठ फट गये थे, अतः ज्ञात नहीं हो सका कि लेखक कौन हैं । जांच करने पर ज्ञात हुआ कि पू. आचार्यश्री की यह कृति है । मन में हुआ कि यह तत्त्वदोहन तो जैन मात्र को प्राप्त करने योग्य है ।

इतने में कच्छ की तीर्थयात्रा पर जाने का काम पड़ा । सायंकाल में मांडवी पहुंचे । ज्ञात हुआ कि आचार्यश्री पधारे हैं । संध्या हो चुकी थी । जांच की तो किसी भाई ने कहा कि सन्ध्या हो गई है, पूज्यश्री अब मिलेंगे नहीं ।

मैंने कहा कि पूछो कोई बहन अहमदाबाद से आई है और 'तत्त्वज्ञान प्रवेशिका' के विषय में बात करनी है । कोई पुन्योदय होगा, अनेक जीवों के सद्भाग्य जुड़े हुए होंगे, और पूज्यश्री बाहर के बरामदे में आये । हम तीन बहनें थी । आदरपूर्वक वन्दन करके बैठी ओर पूछा, 'साहेबजी ! 'तत्त्वज्ञान प्रवेशिका' विदेश ले जानी है और जिज्ञासुओं तक उसका रहस्य पहुंचाना है । आप कुछ बोध दें । पूज्यश्री ने एक पाठ का रहस्य समझाया, परन्तु चमत्कार यह हुआ कि उक्त पुस्तक एक बार पढ़ी और प्रथम बार ही उसके भीतर के रहस्य स्पष्ट होते गये । यह पूज्यश्री की वचन-लब्धि ही थी । फिर तो ५०० पुस्तकें मंगवाई । अफ्रीका, लन्दन और अमेरिका तक पुस्तकें पहुंची । लगभग दो हजार जिज्ञासुओं में अध्ययन हुआ ।

- सुनन्दाबेन वोग



४-८-२०००, शुक्रवार

सावन शुक्ला-५

* किसी आशंसा से किया जाये तो हमारा अनुष्ठान विष अथवा गरल बनेगा, गतानुगतिक से करेंगे तो अनुष्ठान बनेगा, भगवान की आज्ञा सामने रख कर करेंगे तो तद्धेतु बनेगा और तन्मय बन कर करेंगे तो अमृतानुष्ठान बनेगा ।

अनुष्ठान तो करते ही है, परन्तु वह अनुष्ठान कैसा बनाना है ? यह अनुष्ठान विष भी बन सकता है और अमृत भी बन सकता है । हमें कैसा बनाना है ?

* 'नमुत्थुणं' में पहली स्तोतव्य सम्पदा है । स्तोतव्य अरिहंत है । यहां कहा - नमोऽस्तु । नमस्कार हो ।

नमोऽस्तु में भी रहस्य है । रहस्य-दर्शियों को ही यह समझ में आता है । नमस्कार अभी तक हुआ नहीं है, इसीलिए मैं कहता हूं - नमस्कार हो ! मैं तो मूढ़ हूं । अज्ञानी हूं । मैं नमस्कार करने वाला कौन हूं ? नमस्कार करने की मुझ में कौन सी शक्ति है ?

* हम द्रव्य-प्राण की तो चिन्ता करते हैं, परन्तु क्या हमें भाव-प्राण की चिन्ता है ? द्रव्य-प्राण भी आखिर भाव-प्राण के

कारण मिले हैं, फिर भी (ज्ञान-दर्शन आदि) वह याद न आये तो क्या हमारी करुणता नहीं है ?

हम जितनी सावधानी द्रव्य-प्राण की रखते हैं, उतनी ही यदि भावप्राणों की रखें तो काम हो जाये । मुझ में भाव-प्राण हैं उसका पता भी असंजी को नहीं लगता । इसीलिए धर्म का सच्चा अधिकारी संजीपंचेन्द्रिय है ।

इन ग्रन्थों के द्वारा भाव-प्राणों की पुष्टि होगी ।

* 'नमस्कार करता हूँ, नमस्कार किया है' यह न कह कर 'नमस्कार हो' यह कहा उससे स्व की असमर्थता बताना ही है । असमर्थता जानें तो ही मांगने की इच्छा होगी न ? पुत्र पिता के पास मांगता है, भक्त भगवान के पास मांगता है ।

भक्त की यही मांग है कि प्रभु ? मेरा एक ही भाव नमस्कार हो जाये तो काम हो जाये । इसीलिए लिखा है - 'दुःशपो भाव-नमस्कारः ।' मनुष्य-जन्म की तरह भाव-नमस्कार अत्यन्त ही दुर्लभ है ।

आत्मा में यदि बीजाधान हुआ हो तो ही भाव नमस्कार आ सकता है ।

यदि किसान विधिपूर्वक बीज बोये तो ही वह फल प्राप्त कर सकता है । किसान पहले हल चलाता है, फिर बीज बोता है । बीज यदि न बोये तो क्या उगेगा ?

अपने हृदय में भी धर्म-बीज नहीं बोया गया हो तो फल नहीं मिलेंगे । धर्मात्माओं की प्रशंसा ही धर्म-बीजों का वपन है । जीवन में धर्म भले ही न हो परन्तु उसकी प्रशंसा आ गई तो सच्चा धर्म आयेगा ही ।

भाव-धर्म सदा बाद में ही आता है । उससे पूर्व उसकी प्रशंसा ही आती है । हमें आज यह धर्म मिला है, जिसका मूल कारण यही है कि हम उसकी प्रशंसा कर चुके हैं ।

प्रशंसा करना अर्थात् वह वस्तु जीवन में लाने की इच्छा करना । वास्तव में तो 'मुझे प्रिय है' उसका अर्थ ही यह होता है कि - 'मुझे चाहिये ।' आप किसी जेवर की प्रशंसा करते हो उसका अर्थ यह होता है कि मुझे ऐसा जेवर (आभूषण)

चाहिये । किसी का बंगला आप को प्रिय लगता है उसका अर्थ इतना ही है कि वह बंगला आप को चाहिये । धर्म प्रिय है, उसका अर्थ यही होता है कि मुझे धर्म की आवश्यकता है ।

फल की आशा से ही बीज बोया जाता है ।

मुक्ति रूपी फल की आशा से ही धर्म की प्रशंसा होती है ।

यहां पालीताना में चातुर्मास क्यों हुआ ? पहले पालीताना में चातुर्मास करना प्रिय लगा । प्रिय नहीं लगा होता तो चातुर्मास होता ही नहीं ।

आज आप क्यों शिक्षित हैं ? कारण यही हैं कि पहले आप को शिक्षा प्रिय लगी । आज आप धनाढ्य क्यों हैं ? कारण यह है कि पहले आप को पैसे प्रिय लगे, धनवान बनना प्रिय लगा ।

जो वस्तु प्रिय लगने लगती है, उसके लिए अथक पुरुषार्थ होगा ही ।

धर्म प्रिय लगने लगता है तब सर्व प्रथम यह चिन्तन चलता है कि वह कैसे प्राप्त होता है ? तत्पश्चात् धर्म-श्रवण होता है और उसका पालन होता है । फल स्वरूप देव-मनुष्य रूप सद्गति प्राप्त होती है । इसी धर्म-बीज के अंकुर, तना, शाखा, फूल आदि समझें ।

ये सभी आनुषंगिक फल हैं । मुख्य फल तो मोक्ष ही है । किसान के लिए मुख्य फल अनाज है, घास नहीं ।

धर्म के मन से मुख्य फल मोक्ष है, स्वर्ग आदि नहीं । इसीलिए प्रधान फल-रूप लक्ष्य से कदापि च्युत न हो जायें ।

धर्म का चरम एवं परम फल केवल परम-पद है, यह कदापि न भूलें । विहार में जिस प्रकार अमुक गांव आदि का लक्ष्य हो तो मार्ग में चाहे जितनी विनती आयें, आकर्षण आयें फिर भी हम रुकते नहीं हैं, उस प्रकार यहां भी परम-पद के अतिरिक्त कहीं भी रुकना नहीं है ।

मार्ग मार्ग ही कहलाता है, भले चाहे जितना आकर्षण हो । इसी कारण से समझदार व्यक्ति मंजिल तक पहुंचे बिना बीच में कहीं भी रुकता नहीं है ।

भाव-नमस्कार सम्यग्दर्शन सूचित करता है। इससे पूर्व अपुन-र्बन्धक आदि में प्रशंसा देखने को मिलेगी। प्रशंसा सदा गुणवान की, धर्मात्मा की होगी क्योंकि गुण अथवा धर्म गुणवान अथवा धर्मात्मा के अतिरिक्त अन्यत्र देखने को नहीं मिलते।

दूसरे के धर्म की प्रशंसा का अर्थ यह हुआ कि वह धर्म मुझ में भी आये, ऐसी इच्छा हुई। दूसरे का भोजन उत्तम लगा, उसका अर्थ यह हुआ कि मेरे घर पर नित्य ऐसा भोजन बना कर खाने की इच्छा हुई।

* नमोऽस्तु। यहां इच्छा योग है। मुझ में भाव-नमस्कार करने की शक्ति नहीं है, परन्तु इच्छा अवश्य है। मुझे कब ऐसा नमस्कार मिले ? यह इच्छायोग है।

इच्छा हुई यह भी बड़ी बात है। धर्म के अभिलाषियों को भी अनुभवी मनुष्य धन्यवाद देते हैं।

‘धन्य तू आत्मा जेहने, एहवो प्रश्न अवकाश रे।’

- पूज्य आनन्दघनजी

तुझे शान्ति की चाह हुई ? तुझे ऐसी प्रसन्नता प्राप्त करने की इच्छा हुई ? अधन्य व्यक्ति को ऐसी इच्छा भी नहीं होती।

क्या तुझे खाने की इच्छा हुई ? अब तेरा रोग गया। रोग में खाने की इच्छा नहीं होती। संसार-रोग की तीव्रता में धर्म की इच्छा भी नहीं होती। विषय-अभिलाषा का अतिरेक कदापि धर्म की ओर जाने नहीं देता।

जो खाने-पीने में से ऊंचे नहीं आते, वे पशु धर्म नहीं कर सकते, क्योंकि प्राथमिक इच्छा ही उनकी पूर्ण नहीं हुई। जिन में विषय-कषाय की तीव्रता है, वे धर्म की इच्छा नहीं कर सकते। क्योंकि अभी तक उसकी चेतना अन्धकार में भटक रही है। उसकी चेतना अभी तक अत्यन्त निम्न स्तर की है। उसे शिखर की कल्पना कहां से होगी ? उसे परम का प्रकाश कहां से प्रिय लगेगा ? वह तो अन्धकार में ठोकरें खा रही है। अन्धकार में धूमनेवाले उल्लू को प्रकाश अच्छा नहीं लगता, उस प्रकार भवाभिनंदी को धर्म अच्छा नहीं लगता। ऐसा व्यक्ति कदम-कदम पर विषय-कषायों की प्रशंसा करता ही रहता है।



अमेरिकी को आशीर्वाद, बेंगलूर, वि.सं. २०५२

५-८-२०००, शनिवार
सावन शुक्ला-६

* 'मुक्ति के मार्ग में प्रभु के अतिरिक्त कोई सहायक नहीं है।' इस बात की दृढ़ प्रतीति ही प्रभु के प्रति अनन्य प्रेम-भाव एवं भक्ति-भाव उत्पन्न कराती है।

भगवान मात्र धर्म का प्रतिपादन करके रुक नहीं जाते, परन्तु साधना भी कराते हैं। प्रारम्भ से लेकर ठेठ शैलेशीकरण तक भगवान सहायक बनते हैं।

बीज खेत में अपने आप नहीं गिरता, किसान बोता है। धर्म-बीज भी हमारे भीतर भगवान के द्वारा डाला जाता है, क्या यह समझ में आता है? चतुर्विध संघ के किसी सदस्य के द्वारा ही धर्म का बीज पड़ता है। इस चतुर्विध संघ के स्थापक भगवान हैं। यह तो हमें स्वीकार करना पड़ेगा न?

अष्ट प्रातिहार्य, चौतीस वाणीगुण आदि धर्म के ही फल हैं। धर्म को भगवान ने सिद्ध किया है। ऐसा सिद्ध किया है कि धर्म उन्हें छोड़कर कहीं जा ही नहीं सके।

* क्या धर्म का प्रभाव दिखाई देता है। आजकल कुछ समय तक कोलेरा (हैजा) का वातावरण चला।

राजनाद गांव में तेरह वर्ष का लड़का बाहर घूमने गया था । गन्दी बस्ती में जाने से उसे हैजा हो गया । उस समय कोई ऐसे उपचार नहीं थे । निरन्तर दस्तें लगने और वमन होने से वह लड़का मर गया ।

उस समय कोई विशेषज्ञ डॉक्टर मिल जाये तो ? अभी इतने हैजे के केस बने, किन्तु सभी बच गये न ? यह डॉक्टर का उपकार है ।

भगवान भी इस प्रकार हम पर सतत उपकार करते रहते हैं, परन्तु भगवान का उपकार समझ में नहीं आता, यही कष्ट है ।

भगवान का यही कार्य है, रोग-ग्रस्त मनुष्यों की देखभाल करनी ।

हम बीमार हैं । भगवान धन्वन्तरी वैद्य हैं । कठिनाई यह है कि हमें अपनी ही बीमारी समझ में नहीं आती ।

सभी वक्ताओं का उत्तरदायित्व है कि वे श्रोताओं को भगवान तथा धर्म का उपकार अच्छी तरह बतायें, उनके हृदय में भगवान तथा धर्म के प्रति आदर-भाव उत्पन्न करें । इतना हो जाये तो अन्य कार्य अत्यन्त सरल हो जायेगा ।

* धर्म निरन्तर विधिपूर्वक एवं आदरपूर्वक होना चाहिये । ऐसा धर्म होता रहे तो दूरन्त संसार का भी अन्त हो सकता है ।

* सही संसार तो भीतर है । जन्म-मरण आदि तो बाह्य फल हैं । इन्हें उत्पन्न करने वाला कर्म है, सहजमल है । इस पर मुख्य प्रहार होना चाहिये । डालियों, पत्तों पर प्रहार न होकर मूल पर प्रहार होना चाहिये ।

* यहां प्रश्न उठता है कि भाव नमस्कार के लिए ही यह धर्म है । तो जिसे भाव नमस्कार मिल गया है, उसे तो नमस्कार की आवश्यकता नहीं है । वे तो कृत-कृत्य हो गये । कदाचित् वे यह पाठ बोलें तो भी मृषावाद गिना जायेगा । जो सिद्ध हो गया है उसे पुनः सिद्ध करने की क्या आवश्यकता ?

उत्तर : अभी तक आपने तत्त्व का परिज्ञान नहीं पाया । भाव नमस्कार में भी तारतम्यता है ही । भाव नमस्कार वाले को भी अभी तक अधिक उत्कर्ष प्राप्त करना होता ही है ।

हम जिस भूमिका पर हों वहां स्थिर रहकर आगे की भूमिका को प्राप्त करने का प्रयत्न करना ही चाहिये । यदि प्रयत्न नहीं करें तो जहां हैं वहां भी स्थिर नहीं रह सकते । किसी सीढ़ी पर बीच में खड़े रह कर देख लें, चलने वाले कहेंगे कि भाई ! आप बीच में क्यों खड़े हैं ? या तो नीचे जायें, अथवा ऊपर जायें । बीच में खड़े न रहें । हम भी बीच में खड़े नहीं रह सकते । ऊपर जाने का प्रयत्न नहीं करें तब अपने आप नीचे आ जाते हैं ।

आगे की भूमिका प्राप्त करने की इच्छा न हो तो विद्यमान भूमिका भी नहीं टिकेगी ।

* 'गुणवद्-बहुमानादे नित्यस्मृत्या च सत्क्रिया ।
जातं न पातयेद् भावमजातं जनयेदपि ॥'

- ज्ञानसार

गुणवान के बहुमान आदि से, नित्य स्मरण से शुभ क्रिया उत्पन्न भाव को जाने नहीं देती और नहीं उत्पन्न हुए भाव को उत्पन्न करती है । अतः गुणों की वृद्धि हेतु नित्य यह क्रिया करनी ही चाहिये ।

कतिपय साधक इसके लिए ही १२, ५०, १००, १००० लोगस्स के काउस्सग तक पहुंचते हैं ।

'मैं उच्च कक्षा में पहुंच गया हूं । मुझे किसी बाह्य क्रिया आदि की आवश्यकता नहीं है', यह मान कर कदापि क्रिया-काण्ड का त्याग न करें । एक समान भाव तो केवल केवली भगवान को ही रहता है । हम केवली भगवान बने नहीं हैं ।

(हाथ लगने से पुस्तक गिर गई)

देखा ? तनिक ध्यान नहीं रखने पर यह पुस्तक कैसी गिर गई ? हमारे भाव इस प्रकार के हैं । अतः सतत सावधानी की आवश्यकता है ।

प्रारम्भ में गुरु आपको प्रेरणा देते हैं ।

तत्पश्चात् गुरु के द्वारा प्राप्त विवेक आपको निरन्तर प्रेरणा देता ही रहता है । आपके भीतर उत्पन्न विवेक ही आपका गुरु बन सकता है ।

उपमिति में यही बात समझाई गई है। गुरु की अनुपस्थिति में वह भिखारी बार-बार गन्दा अनाज खोलता है तब वह निवेदन करता है कि 'गुरुदेव ! कुछ ऐसा करिये, कोई ऐसी परिचारिका दें जो मुझे गन्दा खाने से रोके ।'

गुरु की प्रेरणा ने उसे सद्बुद्धि नामक दासी प्रदान की, जो उसे मलिन अनाज खाने से रोकने लगी ।

यही विवेक है ।

* 'भगवन् ! आप मोक्ष में गये हैं, फिर भी नाथ कहलाते हैं । योग-क्षेम करते तो प्रतीत नहीं होते, फिर नाथ कैसे हुए ?' पूज्य देवचन्द्रजी ने सातवे भगवान के स्तवन में ऐसा प्रश्न उठाया है ।

जहां वीतरागता हो वहां करुणा कैसे होगी ? ऐसे प्रश्न हमारे भीतर उठते हैं, परन्तु समझ लो कि भगवान चमत्कारों के भण्डार हैं, भगवान में कृपालुता है उस प्रकार कठोरता भी है; निर्ग्रन्थता है उस प्रकार चक्रवर्तित्व भी है । ऐसे एक-दो नहीं, अनन्त विरोधी धर्म भगवान में रह सकते हैं । यह बात स्याद्वाद के ज्ञाताओं को समझानी नहीं पड़ती । भगवान जगत् के जीवों के प्रति कृपालू है और कर्मों के प्रति कठोर है ।

भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से परस्पर विरोधी धर्म भी एक वस्तु में घटित हो सकते हैं ।

पूज्य आनंदधनजी म. का वह स्तवन 'शीतल जिनपति ललित त्रिभंगी' परस्पर विरोधी गुणधर्मों का सूचक है ।

पूज्य देवचन्द्रजी का भजेदार प्रश्न है - 'संरक्षण के बिना आप नाथ हैं, धन के बिना आप ईश्वर हैं, धनवान हैं ।

'संरक्षण विण नाथ हो, द्रव्य विण धनवंत हों ।'

पानी वापरते समय यह पंक्ति अभी ही मुझे याद आई । बार बार घोट घोट कर याद की हुई ये पंक्तियां कैसे भूलें ? इसलिए बार-बार कहता हूं कि ये तीन चौबीसी विशेषतः आप कण्ठस्थ करें ।

अप्राप्त गुणों को प्राप्त करानेवाले और प्राप्त गुणों की रक्षा करने वाले भगवान नाथ हैं । हमारे भीतर गुण नहीं आते हों

तो समझ लें कि उन भगवान को हमने नाथ के रूप में स्वीकार नहीं किया । भगवान की आज्ञा के बिना एक भी गुण आ नहीं सकता । भगवान का गुणों पर अनन्य स्वामित्व है । मेरी इस बात का खण्डन करके देखो । मेरी सहायता करने के लिए सिद्धार्थि गणि का वह वचन आता है - एक भी शुभ भाव भगवान की कृपा के बिना मिलता नहीं है । शुभ भावों से ही गुण प्राप्त होते हैं । शुभ भाव भगवान की कृपा से प्राप्त होते हैं । इसीलिए कहता हूँ कि गुणों पर भगवान का स्वामित्व है ।

आज प्रातः वन्दन के समय पञ्चक्खाण नहीं दे सका । शंका थी कि आज कदाचित् वाचना नहीं दे सकूंगा, परन्तु भगवान बैठे हैं न ? उन्होंने मुझे तैयार कर दिया । मैं भगवान को कैसे भूलुं ? ठेठ बचपन में मैं भी भगवान को इस प्रकार नहीं जानता था, परन्तु आज जानता हूँ । पल-पल भगवान याद आयें, ऐसी भूमिका पर भगवान ने ही पहुँचाया है । ये भगवान मैं कैसे भूल सकता हूँ ?

गुरु के द्वारा, पुस्तक के द्वारा, किसी घटना के द्वारा अथवा किसी के भी द्वारा आपके जीवन में गुण आयें तो वे आखिर भगवान के द्वारा ही आते हैं । मुख्य धारा एक ही है । जहाँ कहीं भी बिखरा हुआ है वह भगवान का ही है । इतना मानने लग जायें तो काम हो जाये ।

ॐ ॐ ॐ

यह पुस्तक पढ़ने से सम्यक्त्व की प्राप्ति हो ।

- साध्वी विरतिश्रीश्री

ॐ ॐ ॐ

यह पुस्तक पढ़ने से मेरा रोम-रोम पुलकित हो गया । ओह ! गुरुदेवश्री के जीवन में इतनी पवित्रता ?

- साध्वी वाचंयमाश्री

शब्द है। भगवान की शक्ति की स्थापना चतुर्विध संध, द्वादशांगी और प्रथम गणधर में हो चुकी है। क्या यह समझ में आता है? एक आदिनाथ भगवान की यह शक्ति (तीर्थ में रखी हुई शक्ति) पचास लाख करोड़ सागरोपम - आधे चौथे आरे तक चली।

यह शक्ति आज भी कार्य करती है। इसीलिए तो हम 'देव-गुरु-पसाय' शब्द का प्रयोग पुनः पुनः करते रहते हैं। 'देव-गुरु-पसाय' कहना अर्थात् भगवान एवं गुरु की शक्ति को स्वीकार करना।

अपनी उपादान शक्ति का प्रकटीकरण पुष्ट निमित्त भगवान के द्वारा ही हो सकता है, इतना तो स्वीकार करना ही पड़ेगा। देव-गुरु की कृपा से ही मुक्ति का मार्ग मिलेगा।

इस समय भले साक्षात् भगवान नहीं हैं, परन्तु नाम आदि तीन तो हैं ही। यह बात गुरु के द्वारा जानने को मिलती है। इसीलिए गुरु की आराधना से मोक्ष मिलता है, 'गुरु बहुमाणो मोक्षो।' यह कहा गया है।

गुरु के प्रति बहुमान रखने वाला व्यक्ति अवश्य मोक्ष में जायेगा। अर्थात् वह साधना के बिना ही मोक्ष चला जायेगा, यह न मानें। गुरु का बहुमान उसके पास साधना करायेगा ही। यही गुरु-बहुमान कहलाता है। गुरु का बहुमान कदापि निष्क्रिय नहीं होता। वह साधना करायेगा ही।

* पूज्य आनंदधनजी ने भगवान को 'मुक्ति परम-पद साथ' कहा है। परम-पद न मिले तब तक भगवान साथ रहते हैं। भक्त की जीवन-नैया मोह के तूफान से भले डाँवाडोल हो जाये, परन्तु डूबती नहीं है क्योंकि भगवान साथ हैं।

* गुरु की भक्ति के प्रभाव से इस काल में भी समापत्ति के द्वारा भगवान के दर्शन हो सकते हैं। ऐसा 'योगदृष्टि समुच्चय' में उल्लेख है।

उसकी प्रतीति आनन्द के द्वारा होती है। भगवान के दर्शन होते ही योगी के हृदय में आनन्द की ऊर्मियाँ उठती हैं। वह आनन्द ही बता देता है कि भगवान मिल गये हैं।

साधना अपरिपक्व है अतः भगवान के दर्शन नहीं होते।

* जब तक भगवान के दर्शन कराने वाले ऐसे गुरु होंगे तब तक जैन-शासन की जाहोजलाली रहेगी ही । ऐसे गुरु अपनी नहीं, परन्तु भगवान की महिमा जन-जन के अन्तर में प्रतिष्ठित करते हैं ।

भक्त कदापि यह नहीं कहेगा कि 'मैंने किया ।' परन्तु वह कहेगा कि भगवान की कृपा से हुआ । वह कहेगा, 'देव-गुरु-पसाय' से हुआ । कहने के लिए नहीं, परन्तु हृदय से ही कहेगा । यही बात अहंकार-नाशक है ।

योगशास्त्र के अनुभव-प्रकाश नामक बारहवे प्रकाश में लिखा है कि गुरु की कृपा के प्रभाव से योगी उस स्थिति तक पहुँचता है, जबकि उसे मोक्ष की भी परवाह नहीं होती । वह कह सकता है कि 'मोक्षोऽस्तु वा माऽस्तु ।'

* मैं तो इतनी विशाल सभा के प्रत्येक सदस्य के हृदय में भगवान एवं गुरु के प्रति हृदय में विद्यमान बहुमान देख रहा हूँ ।

* इस संघ की जय जय कार हो रही है, जिसके प्रभाव से साधु-साध्वी आदि को आहार, वस्त्र आदि के विषय में चिन्ता नहीं करनी पड़ती ।

जो संघ अपने लिए (साधु-साध्वीजी के लिए) इतना करता हो, उस संघ के लिए कुछ करने का उत्तरदायित्व हमारा है ।

हमें भी इस पाट पर बिठाने वाले गुरु-भगवन् ही हैं । यदि उन्होंने ने हमें पाट पर नहीं बिठाया होता तो हम भी आपकी तरह भटकते ही होते ।

'गुरु तो जिन हैं, केवली हैं, भगवान हैं ।' ऐसा 'महानिशीथ' में पढ़ा तब मैं नाच उठा । गुरु-तत्त्व का कितना सम्मान ?

सिद्धचक्र में भगवान के लिए दो पद, परन्तु गुरु के लिए तीन पद हैं । इससे भगवान का महत्त्व नहीं घटता । भगवान स्वयं ही कहते हैं कि 'जो गुरु का मानता है, वह मेरा मानता है ।'

ऐसे गुरु की भक्ति करोगे तो मुक्ति दूर नहीं है ।

गुरु की भक्ति कदाचित् नहीं हो सके तो भी आशातना तो

करना ही मत । आप गुरुवन्दन-भाष्य पढ़ेंगे तो गुरु की आशातना ध्यान में आयेगी ।

पूज्य आचार्य हेमचन्द्रसागरसूरिजी :

अध्यात्मयोगी पूज्य आचार्यश्री ने अभी प्रवचन में गुरु-तत्त्व की महत्ता बताई ।

उमास्वातिजी ने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चरित्र में मोक्ष मार्ग बताया है ।

पूज्यश्री ने तो संक्षेप में मोक्ष का मार्ग बता दिया ।

‘गुरु-बहुमाणो मोक्खो ।’ ‘पंचसूत्र’ की इस पंक्ति के द्वारा बता दिया । गुरु के बिना कोई भगवान प्राप्त नहीं कर सकता ।

जो गुरु को मानता है वही मुझे मानता है ।

जो गुरु को नहीं मानता, वह मुझे भी नहीं मानता । ऐसा स्वयं भगवान कहते हैं ।

इस सिद्धाचल में तो इतने सारे गुरु-पुंगवों के दर्शन से हम सभी निहाल हो गये हैं ।

कल्पसूत्र में उल्लेख है - ‘नयणसहस्सेहिं पेहिञ्जमाणे पेहिज्ज-माणे ।’

हजारों आंखों में से देखे जाते भगवान ।

यहां भी हजारों आंखें धन्य हैं जो गुरु-भगवतों को देख रही हैं ।

* रोगों, उपद्रवों को नष्ट करने के लिए इस समय शंखेश्वर पार्श्वनाथ का सामूहिक जाप हो रहा है ।

नाम लेते ही भगवान आपके समक्ष आयेंगे । अभी ही आप आंखें बंध करें और मैं नाम लूं - ‘शंखेश्वर पार्श्वनाथ ।’ वे आपको दिखाई देंगे न ?

इसीलिए कहा है - ‘नाम ग्रहंता आवी मिले, मन भीतर भगवान ।’

कोई प्रश्न पूछ सकता है कि यहां आदिनाथ भगवान की निश्रा में शंखेश्वर पार्श्वनाथजी क्यों ?

जिस पानी से मूंग चढ़ें, उस पानी से चढ़ा दें । यह कहावत सुनी है न ? विघ्न-निवारण हेतु शंखेश्वर पार्श्वनाथ भगवान उत्कृष्ट माने गये हैं ।

साक्षात् नेमिनाथ भगवान् स्वयं ने भी 'जर' के निवारणार्थ पार्श्वनाथ भगवान् की प्रतिमा के स्नात्र-जल का उपयोग करने का कहा था ।

'मैं बैठा हूँ न ? झुका दे मस्तक । तेरा कार्य सिद्ध हो जायेगा ।' नेमिनाथ भगवान् ने ऐसा नहीं कहा था । विघ्न निवारण करने का अधिकार केवल शंखेश्वर पार्श्वनाथ का है ।

* अर्जुन : 'हे कृष्ण ! आप भक्त को किस प्रकार सहायता करते हैं ?'

श्री कृष्ण : 'येमां यथा प्रपद्यन्ते, तांस्तथैव भजाम्यहम् ।'

- गीता

'जिस प्रकार से मुझे जो स्वीकार करता है, उस प्रकार मैं उसकी सहायता करता हूँ ।'

मानव, देव, राजा अथवा भगवान् जिस प्रकार भक्त स्वीकार करें, उस रीति से उसे सहायता करता हूँ ।

शंखेश्वर पार्श्वनाथ के लिए हमारा दृष्टिकोण कैसा है ? या विश्वास ही नहीं है ?

भिखारी तथा उद्योगपति दोनों मन्दिर में गये । दोनों ने एक समान प्रार्थना की, 'प्रभु ! अब तो कार्य करना ही पड़ेगा । पन्द्रह दिनों से प्रार्थना करता हूँ ।' मन्दिर में से बाहर निकलने के पश्चात् भिखारी ने भिक्षा मांगनी प्रारम्भ की और वह उद्योगपति गाड़ी में बैठ कर चला गया । भिखारी को पचास रूपये का नोट मिलने पर वह खुश-खुश हो गया - सचमुच भगवान् ने मेरी बात सुन ली । उस उद्योगपति का माल, जो कोई भी लेता नहीं था, उसे खरीदने वाला मिल गया । पांच लाख रूपयों का लाभ हुआ ।

दोनों की समान प्रार्थना होते हुए भी एक को पचास रूपये और दूसरे को पांच लाख मिले । भेद भगवान् का नहीं है, परन्तु भक्त के मन का है ।

प्रभु वही है, परन्तु आप उन्हें किस दृष्टिकोण से स्वीकार करते हैं, यही महत्त्वपूर्ण है ।

अभी जाप पूर्ण हो और कृपावृष्टि होगी ही, ऐसी श्रद्धा होनी चाहिये । पालथी लगाकर कमर सीधी रख कर सब बैठ जायें ।

शंखेश्वर पार्श्वनाथ का जाप करने वाले पूज्य नवरत्नसागरसूरिजी शंखेश्वर पार्श्वनाथ के उत्कृष्ट भक्त हैं। उनके मुंह से प्रभु के नाम का श्रवण मिले कहां से ?

(सामुदायिक जाप पुनः प्रारम्भ)

पूज्य मुनिश्री धुरन्धरविजयजी :

जब तक पूज्य कलापूर्णसूरिजी बैठे हैं, तब तक किसी को उठना नहीं है। पूज्य साध्वीजियों को भी आज्ञा-पालन करना है।

यह मन्त्र-जाप केवल सुनना नहीं है, बोलना भी है। बोलने से ही अपने मुंह आदि पवित्र बनेंगे।

सभी बोलें। पूज्य आचार्यश्री की शिकायत है कि अभी तक आनी चाहिये, उतनी आवाज आ नहीं रही है।

(जाप के मध्य में)

पूज्य नवरत्नसागरसूरिजी : एक प्रसंग बताऊं।

एक कुम्हार भगवान का पूजारी बन गया। उसे कुछ आता नहीं था, फिर भी आदत से सुन्दर आंगी करना सीख गया। नाम उसका 'रामजी' था, शंखेश्वर का पूजारी था। वह नित्य मेरे पास आता। उसने एक बार कहा, 'पत्नी के गले में गांठे हुई हैं। महिने में एक हजार रूपयों की दवायें आती हैं। इतने रूपये लाने कहां से ? वेतन तो सातसौ रूपये ही है। मैंने शंखेश्वर पार्श्वनाथजी को पत्र लिखा - 'प्रभु ! आप पर आधार है। आपको जो करना हो वह करें।''

दूसरे ही दिन गांठें मिट गईं।

आज भी वह रामजी पूजारी, उसकी पत्नी, बच्चे आदि सब विद्यमान हैं। इन प्रत्यक्ष प्रभावी पार्श्वनाथ भगवान के जाप में कोई कसर न रखें।

पूज्य मुनिश्री धुरन्धरविजयजी : कतिपय सूचनाएं -

अधिकतम लोगों की यह मान्यता है कि 'तलहटी पर अष्टप्रकारी पूजा करनी ही चाहिये।' जब तक निर्माल्य न उतरे तब तक पूजा नहीं की जा सकती। आजकल दूध कैसा आता है ? आप जानते ही हैं। पूजारी गाय के दूध से पक्षाल कर ले, वह ठीक है। बाकी आप सब कुंए का पानी (भाता खाता में बावड़ी है)



लाकड़िया - पालिताना संघ, वि.सं. २०५६

६-८-२०००, रविवार
सावन शुक्ला-७

* भक्ति में उल्लास की वृद्धि होने से सम्यग् दर्शन निर्मल बनता है । ग्रन्थि-भेद तक पहुँचाने वाली भक्ति है ।

* गृहस्थ-जीवन में हम सभी पूजा कर के आये हैं । अब पूजा नहीं करते, इसका अर्थ यह नहीं है कि पूजा व्यर्थ है । कोलेज के विद्यार्थी भले क-ख-ग, बारहखड़ी छोड़ दे, परन्तु बालकों के लिए वह आवश्यक है ।

* आवश्यक सूत्र साधना के मूल हैं । विद्यमान आगमों में सर्व प्रथम आवश्यक-सूत्र हैं । यह मूल आगम है । उस पर निर्युक्ति आदि भी बहुत ही है । ये चैत्यवन्दन सूत्र भी आवश्यकों के अन्तर्गत ही हैं । आवश्यक निर्युक्ति, चूर्णि, टीका, विशेषावश्यक भाष्य आदि आवश्यकों का ही साहित्य है । इससे ही इसका महत्त्व समझा जाता है ।

सामायिक केवल उच्चारण करने से नहीं आती । उसके लिए भक्ति चाहिये । चउविसत्थो आदि पांच आवश्यकः भक्ति-वर्धक ही हैं ।

* साधु-साध्वियों का एक पल भी आर्तध्यान - रौद्रध्यान में क्यों जाये ? इसके लिए ही तो चार बार स्वाध्याय, सात बार चैत्यवन्दन

करने का कहा गया है। चैत्यवन्दन करने से स्वाध्याय में प्रेम बढ़ता है। स्वाध्याय करने से चैत्यवन्दन के प्रति प्रेम बढ़ता है। दोनों परस्पर एक दूसरे के पूरक हैं, विरोधी नहीं है। 'जिम जिम अरिहा सेविये रे, तिम तिम प्रगटे ज्ञान सलूणा' - पैतालीस आगम की पूजा में ऐसा इसलिए लिखा है कि ज्ञान, प्रभु-भक्ति के साथ जुड़ा हुआ है। ज्यों-ज्यों आप अरिहंत की आराधना करते जाओगे, त्यों त्यों आपके ज्ञान में वृद्धि होती जायेगी।

* भाव-नमस्कार सिद्ध हो जाने पर भी नमस्कार इसलिए करना है कि अभी तक उसे अधिक निर्मल, अधिक प्रकर्षयुक्त बनाना है।

'मेरे गुणस्थानों में अभी तक जो अपूर्णता है, वह मिटे, मुझ में अधिक निर्मलता प्रकट हो।' ऐसे भाव के साथ छद्मस्थ गणधर भी यह 'नमुत्थुणं' बोलते हैं।

* 'नमः' का अर्थ पूजा होता है। पूजा का अर्थ द्रव्य-भाव का संकोच होता है। निर्युक्ति के आधार पर ये अर्थ किये हैं, ये घर के अर्थ नहीं हैं।

अजैनों ने पुष्प, आमिष, स्तोत्र एवं प्रतिपत्ति - पूजा के ये चार प्रकार बताये हैं, जो क्रमशः अधिक श्रेष्ठ हैं। वीतराग को भी प्रतिपत्ति पूजा होती है। प्रतिपत्ति अर्थात् आज्ञा-पालन।

देशविरति को चारों प्रकार की पूजा होती है।

सराग-संयमरूप सर्व विरति को दो प्रकार की (स्तोत्र एवं प्रतिपत्ति) पूजा होती है। ग्यारहवे, बारहवे और तेरहवे गुणस्थानक पर केवल प्रतिपत्ति पूजा होती है। प्रतिपत्ति अर्थात् सम्पूर्ण आज्ञा का पालन। आज्ञा का जितना कम पालन करें उतनी प्रतिपत्ति पूजा में त्रुटि समझें।

* पूज्य देवचन्द्रजी ने बारहवे भगवान के स्तवन में कहा है कि प्रशस्त एवं शुद्ध दो प्रकार की भावपूजा (प्रतिपत्ति पूजा) है।

(१) प्रशस्त पूजा में प्रभु का गुण-गान होता है। प्रभु के प्रति का विशिष्ट अनुराग भक्त को उनका गुणगान करने के लिए प्रेरित करता है। प्रशस्त भावपूजा की आराधना से विशुद्ध भावपूजा का सामर्थ्य प्रकट होता है।

(२) शुद्ध भाव पूजा : स्वभाव में सम्पूर्ण रमणता के समथ मुनि को शुद्ध भाव पूजा होती है ।

‘ज्ञानदशा जे आकरी, ते चरण विचारो;
निर्विकल्प उपयोगमां, नहीं कर्मनो चारो ।’

इस दशा में शुद्ध भाव पूजा होती है ।

* पतंग को आप डोर से खींच कर ला सकते हैं, परन्तु इस प्रकार खींच कर गुणस्थानक नहीं ला सकते । इसके लिए आत्म-द्रव्य को जानना पड़ता है ।

‘जिहां लगे आतम द्रव्यनुं, लक्षण नवि जाण्युं;
तिहां लगे गुणठाणुं भलूं, किम आवे ताण्युं ?’

- पूज्य उपा. यशोविजयजी म.

* हमारे मन-वचन-काया तो साधन मात्र हैं; भले वे भगवान को झुकें, परन्तु सचमुच तो आत्मा झुकती है । आत्मा झुके तो ही काम का है । मन आदि तो पुद्गलों से बने हुए हैं । उन्हें प्रभु के साथ क्या लेना-देना ? उसका उपयोग करके आत्मा को प्रभु-प्रेम से रंग देना है, प्रभु के प्रेम में सराबोर कर देना है । दूल्हा वह है, मन आदि तो बाराती हैं ।

पू. हेमचन्द्रसागरसूरिजी : आत्मा एवं चेतना में क्या अन्तर है ?

पूज्यश्री : गुण एवं गुणी की तरह किंचित् भेद है ।

आचार्य भगवान प्रश्न पूछें तो मुझे उत्तर तो देना ही चाहिये । जिज्ञासा में तीव्रता आये तो ही नित्य आने की इच्छा हो । अभी तक जिज्ञासा अल्प है अतः कभी-कभी ही आ जाते हो ।

पूज्य हेमचन्द्रसागरसूरिजी : चाबुक लगाई ।

पूज्यश्री : दुःख हुआ हो तो ‘मिच्छामि दुक्कडं ।’

अन्य दर्शन वाले मीरा आदि प्राप्त कर लेते हैं तो हम क्यों नहीं प्राप्त कर सकते ? प्रभु-प्राप्ति का आनन्द महापुरुषों ने छिपाया नहीं है । संस्कृत के ज्ञाता न हों वे भी आनन्द प्राप्त कर सके, इसीलिए गुजराती कृतियों की रचना की है । ज्ञान के साथ यहां कोई सम्बन्ध नहीं है । भाषा के साथ भी इन का कुछ भी लेना-देना नहीं है । अशिक्षित भी (निरक्षर भी) प्रभु-प्रेम प्राप्त कर सकता है । ये केवल विद्वानों की ठेकेदारी नहीं है ।

मैं कोई विद्वान नहीं हूँ । कितना पढा हुआ हूँ वह मुझे पता है । परन्तु जब जो आवश्यक होता है, वह मुझे याद आ जाता है । भगवान बराबर याद दिला देते हैं । वे जैसा बुलवाते हैं वैसा बोलता हूँ ।

* सुविधिनाथ भगवान के स्तवन में पूज्य देवचन्द्रजी कहते हैं -

‘प्रभु ! मेरे गुण भले क्षयोपशम के हैं, परन्तु वे आपके क्षायिक गुणों के साथ मिल गये हैं । अब क्या बाकी रहे ? बिन्दु सिन्धु में मिलने पर अक्षय बन जाता है, उस प्रकार अपना क्षुल्लक ज्ञान, अपने क्षुल्लक गुण प्रभु के गुणों में मिला दें तो विराट् बन जायेगा, अखूट बन जायेगा ।

शुद्ध स्वरूपी प्रभु में अपनी चेतना मिल जाये तो उसका आस्वाद प्राप्त होता है । यह हुई शुद्ध प्रतिपत्ति पूजा ।

क्या आपको यह विषय अच्छा लगा ? प्रश्न इसलिए पूछता हूँ कि आपकी जिज्ञासा को मैं जान सकूँ ।

इस समय ‘नमः’ का वर्णन चालु है । ‘नमः’ पूजा के अर्थ में है । पूजा अर्थात् संकोच । हम तो द्रव्य से भी संकोच करते नहीं हैं । ‘अहमदाबादी’ खमासमण देते हैं ।

पू. हेमचन्द्रसागरसूरिजी : आप भी तो अहमदाबादी ही हैं न ?

पूज्यश्री : नहीं, मैं राजस्थानी हूँ । गुजराती बोलता हूँ, परन्तु गुजराती नहीं हूँ ।

पूज्य देवचन्द्रजी आदि के प्राचीन स्तवन अत्यन्त भावपूर्ण हैं । उन्हें बार-बार इसलिए बोलना है कि उनके भाव हमको भी स्पर्श करें । इन समस्त रचयिताओं ने ध्यान के द्वारा प्रभु के साथ अभिन्नता स्थापित कर ली है जो उनकी रचनाओं से स्पष्ट प्रतीत होता है ।

* प्रभु कहते हैं : ‘तू तो अभी मित्र के घर में है । अभी तक स्व-घर में कहां आया है ? मैं तो तुझे अपने समान बनाना चाहता हूँ । बारहवे गुणस्थानक तक अभी मित्र का घर कहलाता है ।

अभी हमारी चेतना निमित्तालम्बी है । भगवान कहते हैं -
'तू इसे उपादानालम्बी बनाकर मेरे जैसा क्यों नहीं बनता ?'

जब तक ऐसी कक्षा नहीं मिले तब तक स्व-भूमिका के अनुसार पूजा चालु रखनी होगी ।

प्रश्न : 'अरिहंताणं' में बहुवचन किस लिए ?

उत्तर : अद्वैतवाद का व्यवच्छेद करने के लिए तथा अनेक अरिहंतों को नमस्कार करने से अधिक फल मिलता है, जिस प्रकार अधिक मूलधन का अधिक व्याज प्राप्त होता है । 'मुझे अधिक फल मिलेगा ।' यह जानने के पश्चात् नमस्कार करने वाले के भाव कितने बढ़ते हैं ?

* ये धुरन्धरविजयजी अभी ही आये और मुझे अभी ही इनके गुरु महाराज पू.पं. भद्रंकरविजयजी म. का चिन्तन याद आया -

द्रव्य से वृद्धि

गुण से एकता

पर्याय से तुल्यता

प्रथम दृष्टि में यह पढ़कर नया प्रतीत हुआ, परन्तु बाद में सोचने पर बहुत बहुत जानने को मिला ।

मैं समस्त मुनियों, आचार्यों को कहना चाहता हूँ कि यह द्रव्यानुयोग का अध्ययन करने जैसा है ।

यह साधु-जीवन प्राप्त होने के पश्चात् बकरे की तरह 'बें बें' क्यों करते रहें ? सिंहत्व क्यों न जगाये ?

सिंहत्व पहचानना हो तो सिंह को (प्रभु को) पहचानना होगा । इसके लिए द्रव्यानुयोग विशेष आवश्यक है ।

एक पद्यांश कह कर पूरा करता हूँ :

'जे उपाय बहुविधनी रचना, जोग माया ते जाणो रे ।

शुद्ध द्रव्य गुण पर्याय ध्याने, शिव दिये प्रभु सपरणो रे ॥'

क्या इसका अर्थ जानते हैं ? चलो, कल बताऊंगा ।

ॐ ॐ ॐ





छत्तीसगढ़, वि.सं. २०५४

७-८-२०००, सोमवार
सावन शुक्ला-८

* सर्वोत्कृष्ट धर्म-सामग्री इस भव में हमें प्राप्त हुई है । हम प्रभु को बहुत-बहुत धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने हमें यह सामग्री प्रदान की । उनकी कृपा के बिना यह सामग्री कहां मिलने वाली थी ?

उसमें भी सिद्धक्षेत्र जैसी उत्तम भूमि मिली । साधना के लिए इससे अधिक क्या अनुकूलता हो सकती है ? यहां आकर साधना न करें तो फिर कहां करेंगे ? यहां लगने वाले दोष साधना के द्वारा ही धोये जा सकेंगे ।

ऐसा अवसर बार-बार नहीं आयेगा । अन्य स्थानों में तो बड़े-बड़े संघों को संभालना पड़ता है, यहां ऐसा कोई उत्तरदायित्व नहीं है । यहां आपका समय बिगाड़ने वाला कोई नहीं है, केवल आपको सचेत रहना है ।

* यह चैत्यवन्दन कोलाहल नहीं है, अनुष्ठानों में राजा के समान यह तो महान् योग है ।

* नमस्कार तीन प्रकार के हैं :

(१) कायिक : काया की स्थिरतापूर्वक ।

(२) वाचिक : शुद्ध पाठ के उच्चारपूर्वक ।

(३) मानसिक : मन की स्थिरतापूर्वक ।

इस नमस्कार को हम ऐसा क्यों न बना लें, जो हमें संसार से पार लगा दे ।

* तीन योग हैं :

इच्छायोग, शास्त्रयोग और सामर्थ्ययोग ।

योग-ग्रन्थों में ये तीनों योग प्रसिद्ध हैं ।

योगाचार्यों का कथन है कि इच्छायोग के बल से ही अगले दो योग मिल सकते हैं और वे आपको केवलज्ञान तक ले जाते हैं ।

इसका अर्थ यह हुआ कि हरिभद्रसूरि के युग में इन तीन योगों आदि को बताने वाले अन्य ग्रन्थ, अन्य आचार्य होंगे । उनके आधार पर ही हरिभद्रसूरिजी ने ये तीन योग बताये हैं, अपनी ओर से नहीं ।

(१) इच्छायोग : विकल धर्म-प्रवृत्ति (विकल अर्थात् अपूर्ण)

(२) शास्त्रयोग : अविकल धर्म-प्रवृत्ति (अविकल अर्थात् सम्पूर्ण)

(३) सामर्थ्ययोग : अधिक धर्म-प्रवृत्ति ।

यहां अत्यन्त ही संक्षेप में यह व्याख्या बताई है । संक्षेप में बतायें तो पढ़नेवाला उल्लासपूर्वक पढ़ लेता है । बड़ा ग्रन्थ हो तो उसकी विशालता देखकर ही पाठक रख देंगे । तत्त्वार्थसूत्र संक्षेप का उत्कृष्ट नमूना है ।

‘उपोमास्वातिं संग्रहीतारः ।’ ऐसा हेमचन्द्रसूरिजी ने व्याकरण में उल्लेख किया है । उमास्वाति के संग्रह की समानता अन्य कोई नहीं कर सकता ।

* भद्रबाहुस्वामी जैसे कहते हैं कि मैं मध्यम वाचना से सूत्रों के अर्थ कहूंगा । विस्तारपूर्वक कहने की मुझ में क्या शक्ति है ?

चौदह पूर्वधर भी यदि ऐसी नम्रता प्रकट करते हों तो हमारी क्या विसात ? हम तो ऐसे लाट साहब (फूलणजी) हैं कि एकाध सुन्दर स्तुति अथवा सज्जाय बोलें और कोई प्रशंसा करे तो फूलकर कुप्पा हो जायेंगे । यही ज्ञान का अजीर्ण है ।

चंदाविज्ज्ञाय में कहा है कि विनय स्वयं भी साध्य है । विनय के द्वारा ज्ञान साध्य है यह अनेक बार सुना परन्तु विनय साध्य है ऐसा कभी सुना है ? चंदाविज्ज्ञाय ग्रन्थ जोर देकर कहता है कि गुरु बनने का नहीं, शिष्य बनने का प्रयत्न करें । अभिमान आपको गुरु बनने का कहता है, विनय शिष्य बनने का कहता है ।

* पूज्य लब्धिसूरजी के गुरु पूज्य कमलसूरजी वृद्धावस्था में भी स्वाध्याय आदि में तल्लीन रहते थे । ग्रन्थ उनके हाथ में पड़े ही रहते । कोई पूछता तो कहते - यह तो मेरा स्वभाव है, यह तो सांस है । इनके बिना कैसे जीवित रहा जा सकता है ? दरजी का लड़का, जीये तब तक सिये । ज्ञान का अध्ययन ही हमारा धंधा है । ८० वर्ष की आयु में भी हमें विद्यार्थी ही रहना है । विद्या का अर्थी हो वह विद्यार्थी ।

* पृथ्वीचन्द्र-गुणसागर आदि की कहानियां बचपन में सुनता था, तब मन में विचार आता कि हम भी ऐसे शीलवान कब बनेंगे ?

बचपन में पूजा में 'संयम कबही मिले ससनेही प्यारा' बोलते समय हृदय बोलने लगता था कि मैं कब संयम ग्रहण करूंगा ?

बचपन की हमारी भावना ही बड़ी आयु में साकार बनती है।

* यहां बैठे हुए अधिकतम लोग बाल-दीक्षित हैं। बचपन में बहुत अध्ययन किया है, परन्तु मैं पूछता हूं अब उनमें से कितना कण्ठस्थ है ? इस समय बैठे हुए बाल मुनियों को विशेष तौर से कहना है कि आप जो करें वह भूलें नहीं। व्यापारी कमाने के पश्चात् धनराशि खो नहीं देता। तो हम ज्ञान की धनराशि कैसे खो सकते हैं ?

बाल मुनियों को कहना है कि इस शास्त्र में कदाचित् कोई बात आपकी समझ में न आये तो भी परेशान न हों । मनोरथ बनायें कि बड़े होकर हम इन समस्त ग्रन्थों का अध्ययन करेंगे ।

* थर्मामीटर से ज्वर की उष्णता (तापक्रम) ज्ञात होती

है, उस प्रकार इन तीन योगों के द्वारा, आठ दृष्टियों के द्वारा यह ज्ञात होता है कि हम कहां हैं ? हमारी साधना की मात्रा ज्ञात होती है ।

जो साधना पहले की हो, उसे छोड़ कर आगे नहीं बढ़ना है, प्रत्युत उसे अधिक पुष्ट बनानी है । कोई व्यक्ति करोड़पति बन जाये, तो क्या पूर्व अर्जित हजार रुपयों को छोड़ दे ? हजार ही बढ़ते-बढ़ते करोड़ बनते हैं, उस प्रकार पूर्व की साधना ही बढ़ते-बढ़ते पराकाष्ठा पर पहुंचती है ।

हमारे पूर्वज योग-साधना में इतने आगे बढ़े हुए थे कि सुनकर हम दंग हो जाते हैं । 'ध्यान-विचार' में उल्लेख है कि पुष्पभूति नामक आचार्य अनेक दिनों तक समाधि में रहते थे ।

उन आचार्य ने एक शिष्य को ही समाधि में से जागृत करने का रहस्य समझाया था । दूसरे शिष्यों को लगा कि कहीं ये अपने आचार्य को मार न डाले । दूसरे शिष्यों के शोर-शराबा करने पर शिष्य ने आचार्य को अंगूठा दबाकर उन्हें समाधि में से बाहर निकाला । कारण पूछने पर शिष्य ने आचार्य को बताया कि इन गुरु भाईयों के कारण आपको समाधि में से शीघ्र जगाये हैं । क्षमा करें ।

समाधि हमारी मोक्ष-यात्रा में प्रचण्ड वेग लाती है । पका हुआ आम खाने के लिए चींटी भी जाती है और पक्षी भी जाता है । दोनों पका हुआ आम चाहते हैं, परन्तु वेग किसका अधिक है ?

* धर्माचरण की सच्ची इच्छा ही 'इच्छायोग' है । इच्छायोग अवश्य ही 'शास्त्रयोग' में ले जाता है । शास्त्रयोग 'सामर्थ्ययोग' में ले जाता है । यही उसकी कसौटी है ।

सूत्रों एवं अर्थों के ज्ञाता ज्ञानी धर्मानुष्ठान करना चाहते हैं, परन्तु प्रमाद से अपूर्ण रूप में वह करता है । यही 'इच्छायोग' है ।

विधि के अनुसार होता नहीं है (जान बूझ कर विधि का अनादर नहीं होना चाहिये) अतः अनुष्ठान छोड़ना अच्छा है, यह समझकर छोड़ देने वाले विचार करें । वे 'इच्छायोग' को ही छोड़ देते हैं ।

पूज्य मुनिश्री भाग्येशविजयजी : कल की 'जे उपाय बहुविधनी रचना' तथा 'द्रव्य-गुण-पर्याय' की बात समझानी बाकी है ।

पूज्यश्री : योग आदि की अन्य सभी जालों में ही मत उलझ जाना, परन्तु उनके अर्क तक पहुँचना ।

आपने तो अल्प आयु में दीक्षा ग्रहण की थी । मैंने तो ३० वर्षों की आयु में दीक्षा अंगीकार की थी और मुझे 'रामः रामौ रामाः' का अध्ययन करना पड़ा । मन में अध्यात्म की तीव्र इच्छा होने पर भी यह सब अध्ययन किया, क्योंकि मैं जानता था कि पूर्वाचार्यों का पूर्ण परिचय भाषाकीय ज्ञान के बिना नहीं होगा ।

मैं कहना चाहता हूँ कि जीवनभर न्याय, काव्य एवं कोश में उलझ मत जाना । ये सब साधन ग्रन्थ है, यह न भूलें ।

पूज्य जम्बूविजयजी महाराज को पूछ लें । वे न्याय में अत्यन्त गहराई में उतरे । उनके गुरु बार-बार कहते - 'घट-पट और गधे' में ही समय मत निकाल, साधना में आगे बढ़ । कागज पर क्या लिखता है ? कलेजे में लिख, चतुर्विध संघ के हृदय में तनिक उतार ।' उनकी वाणी से वे भक्ति-मार्ग में आगे बढ़े ।

माया अर्थात् प्रपंच नहीं, विस्तार । उस विस्तार के वन में उलझ मत जाना । शुद्ध द्रव्य-गुण पर्याय के ध्यान से प्रभु सामने से मोक्ष प्रदान करते हैं । यहां 'सपराणो' शब्द आया है । इसका अर्थ जानते हैं न ?

'वीतराग स्तोत्र' में आता है - 'पराणयन्ति ।' इसका अर्थ विचारें ।

शुद्ध द्रव्य गुण पर्याय का ध्यान पक्षी का मार्ग है ।

हमारा मार्ग चींटी का है । (यद्यपि यह भी हो तो उत्तम बात है ।) चींटी के मार्ग में विघ्न अनेक हैं । मार्ग में अनेक खड्डे, टेकरियाँ आती हैं । किसी के पांवों के नीचे दब जाने की भी सम्भावना है । गगनमार्ग में ऐसी कोई सम्भावना नहीं है ।

पू.पं. भद्रंकरविजयजी म. कहते थे : 'पंच परमेष्ठि में अरिहंत सिद्ध शुद्ध आत्म-द्रव्य हैं । इन्हें पकड़ लो तो शुद्ध आत्म-द्रव्य पकड़ में आ जायेंगे ।

पंच परमेष्ठियों के अनन्त गुणों में अपनी आत्मा लीन हो जाये तब द्रव्य से वृद्धि हुई । आटे में घी-शक्कर डालने से भार बढ़ता है, उस प्रकार अपनी आत्मा परमेष्ठियों के संग से पुष्ट बनती है ।

आटा = अपनी आत्मा ।

घी-शक्कर = पंच परमेष्ठी ।

आटे में भी कुछ तो मधुरता है । यह कोई नीम का चूर्ण नहीं है । अपनी आत्मा भी ज्ञानमय है, जड़ नहीं है ।

गुणों से एकता = आत्मा एवं परमेष्ठी घुल-मिल गये । आटा, शक्कर और घी मिल गये । अब अलग स्वाद नहीं आता । प्रत्येक कण में मधुरता का अनुभव होगा ।

पर्याय (कार्य) से तुल्यता । जो कोई यह माल खायेगा उसे समान तृप्ति मिलेगी ।

यह बात आध्यात्मिक सन्दर्भ में घटित करके देखो तो सब समझ में आ जायेगा ।

यह प्रक्रिया जानने से जानकारी प्राप्त होगी, परन्तु अनुभव करना हो तो साधना ही करनी पड़ेगी ।

ॐ ॐ ॐ

वांकी चातुर्मास का तो अवसर नहीं मिला, परन्तु पुस्तक पढ़ने पर वांकी चातुर्मास की वाचना का आस्वादन करने का अवसर मिला ।

लेखक पूज्य पं. मुक्तिचन्द्रविजयजी म. तथा पूज्य गणिश्री मुनिचन्द्रविजयजी म. का अत्यन्त उपकार । उन्होंने ने आलेखन किया ही नहीं होता तो हम तक कहां से पहुंचता ?

- साध्वी शीलवतीश्री



भुज, वि.सं. २०४३

८-८-२०००, मंगलवार

सावन शुक्ला-९

* शास्त्र, अध्यात्म, कर्म आदि के रहस्यों को ग्रहण करके हम जैसों पर उपकार हो, अतः पूर्वाचार्यों ने ऐसे शास्त्रों की रचना की है, जो हमारी आत्मा के लिए हितकर सिद्ध हो। 'ललित विस्तरा' ग्रन्थ उनमें से एक है।

* 'नमोऽस्तु' में रहा हुआ 'अस्तु' शब्द यह बताता है कि अभी तक मुझे उत्कृष्ट भाव-नमस्कार मिला नहीं है। मैं उक्त भाव-नमस्कार की इच्छा अवश्य रखता हूँ। इच्छायोग आदि के ऐसे रहस्य श्री हरिभद्रसूरिजीने यहां खोले हैं। गणधर भी जब ऐसी नम्रता प्रकट करते हो, तब उत्कृष्टता का दावा करने वाले हम कौन हैं ?

* प्राचीन समय में योगोद्धहन निरन्तर चलते ही रहते थे। आज तो योगोद्धहन सम्पूर्ण हो जायें फिर सब ताक पर रख देते हैं। मूल उद्देश्य कहीं दूर रह गया है। उद्देश्य, समुद्देश्य, अनुज्ञा आदि शब्दों के अर्थ समझे तो पता लगे कि हम कितने दूर हैं ?

उद्देश्य = सूत्र पक़े करना, सूत्रों का आत्मा के साथ योग करना।

समुद्देश्य = उन सूत्रों को स्थिर-परिचित करना ।

अनुज्ञा = अन्यो को देने के लिए समर्थ बनना ।

इस ढंग से एक नवकार भी करें तो काम हो जाये । नवकार पर पू.पं. भद्रंकरविजयजी म. का विशाल साहित्य है । कहो, पठन कर लोगे ? क्या भावित बना लोगे ?

सूत्र बोलते समय क्या अर्थ का चिन्तन करते हैं ? कि शीघ्र पूरा कर देते हैं ? मेरा जैसा भी कभी कह दे कि शीघ्र बोलो ।

यदि सूत्र धीरे-धीरे बोले जायें तो अर्थ का उपयोग रहता है ।

* ज्ञान है, परन्तु साथ में प्रमाद भी है, अतः सोचें जितना अनुष्ठान हो नहीं सकता । आराधकों को इसका दुःख रहता है । अतः नम्रता रहती है । अभिमान नहीं आता । यही 'इच्छायोग' है ।

ऐसा आराधक दूसरों के द्वारा होती प्रशंसा सुन कर फूलता नहीं है । वह अपनी कमजोरी जानता है ।

* सामर्थ्ययोग अर्थात् केवलज्ञान की पूर्व अवस्था । जिस तरह सूर्योदय से पूर्व अरुणोदय होता है, उस तरह । केवलज्ञान से पूर्व यह 'सामर्थ्ययोग' होता है, परन्तु इससे पूर्व इच्छायोग होना चाहिये ।

'इच्छायोग' नीच है ।

'शास्त्रयोग' मध्य भाग है ।

'सामर्थ्ययोग' शिखर है ।

* अतिचार अर्थात् खर्च-खाता । समझदार व्यक्ति खर्च कम करता है । यदि कोई अधिक खर्च करता हो तो भी ऐसा नहीं करने की बात उसे समझाता है । क्योंकि आय कम और व्यय अधिक है, दो-तीन टको पर व्याज पर रुपये लिए हुए हैं ।

यहां भी अपना व्यय (अतिचार) अधिक है । आय (आराधना) कम है । परिणाम क्या होगा ? यह आप समझ सकते हैं ।

* घर-परिवार का त्याग करने के पश्चात्, इतनी आराधनाएँ करने के पश्चात्, हमें जो गुणस्थानक (छठा) मिले उसका नाम जानियों ने 'प्रमत्त' दिया है । क्या ऐसा नाम आपको प्रिय लगता है ?

कोई आपको प्रमादी कहे तो क्या आपको अच्छा लगेगा ? अच्छा न लगे तो भी क्या होगा ? जानियों ने नाम दिया है ।

जानियों ने सब अच्छी तरह देख कर ही कहा है ।

अर्थात् यहां तक आने के पश्चात् भी प्रमाद की पूर्ण सम्भावना है । इसीलिए लिखा है - 'ज्ञानिनोऽपि प्रमादिनः ।' ज्ञानी होते हुए भी प्रमादी । ऐसे का विकल अनुष्ठान 'इच्छायोग' है ।

* दूसरों का सम्यक्त्व 'बोधि' कहलाता है । तीर्थंकरों का सम्यक्त्व 'वरबोधि' कहलाता है । क्या कारण है ? कदाचित् भगवान का क्षायोपशमिक हो तो भी 'वरबोधि' कहलाता है । दूसरों का क्षायिक हो तो भी 'बोधि' ही कहलाता है ।

इसका अर्थ यह हुआ कि तीर्थंकरों के सम्यग् दर्शन में कुछ विशेष होगा । समस्त जीवों में स्व का रूप देखते होंगे । दूसरों की पीड़ा को सूक्ष्म रूप से स्व में संवेद करते होंगे ।

* शास्त्रयोग वाले की श्रद्धा तीव्र होती है, प्रमाद तनिक भी नहीं होता । तीव्र श्रद्धा के कारण बोध भी तीव्र होता है, अतः उनका पालन सम्पूर्ण होता है ।

* संगमाचार्य वृद्धावस्था में स्थिरवास रहे थे । एक बार उनका दत्त नामक कोई प्रशिष्य आया । गोचरी नहीं मिलने के कारण परेशान देखकर आचार्य ने उसकी समाधि के लिए एक घर पर रोती हुई लड़की को चुटकी बजा कर शान्त की । अतः प्रसन्न हुए गृहस्थ से उसे गोचरी दिलवाई ।

शिष्य उलटी खोपड़ी का था । उसने सोचा, 'देखा ? इतनी देर तक मुझे भटका कर हैरान कर के अब गोचरी दिलवाई । स्वयं तो उत्तम गोचरी लेने के लिए स्थापित घरों में चले गये ।'

वह शिष्य सारा दिन दोष ही देखा करता था । ऐसे दोषी एकल-विहारी के साथ नहीं रहा जायेंगा, यह मान कर वह अलग रहा ।

रात्रि में शासनदेवी के अंधेरा करने पर वह भयभीत हुआ और आचार्य भगवान को प्रार्थना करने लगा । तब आचार्य भगवन् के अंगुली ऊंची करने पर लब्धि से प्रकाश हो गया ।

तब उसने सोचा, 'अरे ! ये आचार्य तो अग्निकाय का भी



शान्ति स्नात्र में पूज्यश्री

१-८-२०००, बुधवार
सावन शुक्ला-१०

* निक्षेप अर्थात् स्वरूप, पर्याय । यह कदापि द्रव्य से भिन्न नहीं होता । भगवान के पर्याय भगवान से भिन्न नहीं होते । इसीलिए नाम आदि चार भगवान से भिन्न नहीं गिने जाते । (प्रत्येक वस्तु के चार निक्षेप होते ही हैं ।)

भाव भगवान की तरह नाम आदि भी पूज्य ही हैं ।

भाव भगवान चाहे नहीं मिले, नाम आदि तीन तो मिले ही हैं न ? यह जानकर कैसा भावोल्लास बढ़ता है ? भावोल्लास से कर्म-निर्जरा बढ़ती है, कर्म-निर्जरा से आत्म-शुद्धि बढ़ती है और उससे चित्त की प्रसन्नता बढ़ती है ।

जब तक तृप्ति नहीं होती तब तक भोजन करते हैं, परन्तु क्या प्रसन्नता न हो तब तक धर्मानुष्ठान करते हैं ?

यदि आत्मा को प्रसन्न-तृप्त करनी हो तो गुण चाहिये । पुद्गलों से होने वाली शारीरिक तृप्ति नश्वर है, गुणों से होने वाली तृप्ति अनश्वर है ।

ऐसा ज्ञान आत्मा के साथ अवश्य जोड़ देता है ।

नकली पैसे भी होते हैं, परन्तु क्या वे बाजार में चलते हैं ?

नकली ज्ञान भी होता है, परन्तु साधना में वही ज्ञान चलता है जिससे दोषों का निवारण हो और गुणों की प्राप्ति हो ।

गुणों से ही सच्ची तृप्ति होती है ।

* भगवान को कह दीजिये : 'प्रभु ! मैं धुँए से तृप्त नहीं होऊंगा । पेट में कुछ जाये तो ही तृप्ति होगी न ? भगवन् ! अब आपको मुझे प्रत्यक्ष दर्शन देने ही पड़ेंगे । 'धुमाडे धीजुं नहीं साहिब, पेट पड़्या पतीजे ।'

* साधक अवस्था में भगवान ने समस्त जीवों के साथ प्रेम किया है । उनका जीवन बताता है - 'यदि मोक्ष में जाना हो तो समस्त जीवों को आत्मवत् गिनना पड़ेगा । दशवैकालिक के चार अध्ययनों (चौथे अध्ययन में छः जीवनिकाय की बात है ।) के बिना बड़ी दिक्षा प्रदान नहीं की जाती, इसका यही कारण है । इससे पूर्व 'आचारंग' के शस्त्र-परिज्ञा के अध्ययन के बिना बड़ी दीक्षा प्रदान नहीं की जाती थी ।

* दशवैकालिक मूल आगम है ।

आवश्यकों एवं दशवैकालिक के तो प्रत्येक के जोग हो चुके हैं । उन पर उपलब्ध समस्त साहित्य पढ़ लो तो भी निहाल हो जाओगे । निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका आदि कितना विशाल साहित्य है ?

आप यदि उसकी गहराई में उतरो तो भी आपका जीवन योगीश्वर का जीवन बन जाये ।

ये मूल आगम हैं । ये सुदृढ़ होंगे तो अगला सरल हो जायेगा । नींव सुदृढ़ होती है तो ऊपर का भवन आप निर्भय होकर निर्माण कर सकते हैं । फिर आपके आनन्द में होने वाली वृद्धि को कोई रोक नहीं सकता ।

अन्य दर्शन वालों में उस समय भी आनन्द में मग्न रहने वाले योगी थे । अतः भगवान ने गौतम स्वामी को कहा था कि हमारा जैन साधु तो केवल बारह महिनों में समस्त देवों के सुख से भी अधिक प्राप्त कर लेता है । (मनुष्यों की तो बात ही छोड़ी) साधु के उस सुख के लिए तेजोलेश्या शब्द का प्रयोग हुआ है ।

* देह के तीन दोष हैं - वात, पित्त और कफ ।

आत्मा के तीन दोष हैं - राग, द्वेष और मोह ।

आराधना के तीन सोपान हैं - शरणागति, दुष्कृतगर्हा और सुकृत-अनुमोदना ।

छः आवश्यकों में ये तीनों आराधनाएँ प्रतीत होंगी ।

* पुनिया श्रावक-जीवन में था तो भी इतना आत्मानन्द में मग्न रहता था कि भगवान महावीर स्वामी ने उसकी प्रशंसा की थी ।

हमें ऐसे आनन्द की कोई झलक है क्या ?

हमें तो यावज्जीवन सामायिक है ।

चाबुक नहीं मार रहा हूँ, केवल पूछता हूँ ।

ये लोग तपस्वियों की भक्ति के लिए अनेक प्रकार की खाद्य सामग्रियाँ बनाते हैं, उस प्रकार भगवान ने आत्मा के आस्वादन हेतु अनेक प्रकार की साधना की सामग्रियाँ बनाई हैं, परन्तु हम इन्हें खायें तो स्वाद आयेगा न ?

* अपने छःओं आवश्यक पांचों आचारों की शुद्धि करने वाले हैं ।

* लोगस्स में नाम, अरिहंत चेइआणं में स्थापना, नमुत्थुणं में द्रव्य और भाव भगवान हैं ।

पुक्खरवरदी में बोलते भगवान (आगम) हैं ।

पुक्खरवरदी में आगमों को भगवान कहा है । (सुअस्स भगवओ) क्योंकि श्रुत एवं भगवान भिन्न नहीं हैं ।

‘जिनवर जिनागम एक रूपे,

सेवंता न पड़ो भव-कूपे ।’

- पं. वीरविजयजी

शास्त्रे पुरस्कृते तस्माद् वीतरागः पुरस्कृतः ।

पुरस्कृते पुनस्तस्मिन्, नियमात् सर्वसिद्धयः ॥

- ज्ञानसार - उपा. यशोविजयजी

किसी कार्य में सफलता प्राप्त हो तो कदापि अभिमान न करें कि मेरे कारण से सफलता प्राप्त हुई है । भगवान को ही आप आगे करें । कार्य में सफलता प्राप्त कराने वाले हम कौन हैं ? हमारा क्या सामर्थ्य है ? भगवान ही हमारी सफलता के सूत्रधार हैं । इसीलिए योगोद्धहन आदि की क्रिया में

‘खमासमणाणं हत्थेणं’ पूर्व महर्षि क्षमा-श्रमणों के हाथ में (मैं नहीं देता, मैं तो केवल वाहक हूं) मैं आपको दे रहा हूं’ ऐसा कहा जाता है ।

ऐसी विचारधारा से भक्ति बढ़ेगी । भक्ति बढ़ेगी तो ही समग्र साधना का बगीचा महक उठेगा । भक्ति ही जल है जो आपके समस्त अनुष्ठानों को नव-पल्लवित करती है ।

* ‘नमुत्थुणं’ का नाम भले ‘शक्रस्तव’ हो, परन्तु रचयिता इन्द्र नहीं है, गणधर ही रचयिता हैं । इन्द्र तो केवल बोलते हैं । इन्द्र की क्या शक्ति जो ऐसे सूत्रों का निर्माण कर सकें ?

इन्द्र अवश्य सम्यग्-दृष्टि होते हैं । पूर्व भव का याद होता है, अतः वे ‘नमुत्थुणं’ बोल सकते हैं । उदाहरणार्थ - इस समय के सौधर्मेन्द्र पूर्व जन्म के कार्तिक सेठ (मुनिसुव्रत स्वामी के शासन में) हैं तो उन्हें नमुत्थुणं याद होगा ही । वैसे भी इन्द्र के पास अवधिज्ञान है ही ।

* ‘नमोऽस्तु’ का ‘अस्तु’ शब्द ‘इच्छायोग’ व्यक्त करता है । हरिभद्रसूरिजी स्वयं स्वीकार करते हैं कि मुझ में अभी तक ‘शास्त्रयोग’ नहीं आया । इच्छायोग से ही मैं भगवान को नमस्कार करता हूं -

‘नत्वेच्छायोगतोऽयोगं योगिगम्यं जिनेश्वरम् ।’

- योगदृष्टि-समुच्चय

इच्छायोग में इच्छा पूर्णतः पालन की होती है, परन्तु पालन अपूर्ण होता है, जबकि शास्त्रयोग में सम्पूर्ण पालन है । श्रद्धा एवं ज्ञान इतने तीव्र होते हैं कि जब जो करना हो तब वह याद आता ही है ।

परन्तु ऐसा शास्त्रयोग अत्यन्त दुर्लभ है । इच्छायोग भी आ जाये तो भी बड़ी बात है । पू. आनंदधनजी कहते हैं :

‘सूत्र अनुसार विचारी बोलूं, सुगुरु तथाविध न मिले रे;

क्रिया करी नवि साधी शकीए, ए विखवाद चित्त सघले रे ।’

पूज्य उपा. यशोविजयजी कहते हैं -

‘अवलम्ब्येच्छायोगं, पूर्णाचारासहिष्णवश्च वयम् ।

भक्त्या परममुनीनां, तदीयपदवीमनुसरामः ॥’

- अध्यात्मसार

का अतिक्रमण करने की बात है । लाख रूपयेवाला कोई हजार रूपये छोड़ता नहीं है, परन्तु अतिक्रमण कर लेता है, समझ गये ?

आत्मशक्ति का (आत्मवीर्य-जनित) उद्रेक इतना तीव्र होता है कि साधक साधना के अगम्य प्रदेश में कहीं आगे चला जाता है ।

शास्त्रयोग के पश्चात् सामर्थ्ययोग नहीं आये तो केवलज्ञान नहीं मिलता ।

वर्तमान समय में भी 'सामर्थ्ययोग' की तनिक झलक मिल सकती है ।

'ध्यान-विचार' में आने वाला 'करण' शब्द आत्म-शक्ति के उल्लास का वाचक है ।

चार से पांच करण की कक्षा योगशास्त्र में देखने को मिलती है, फिर नहीं देखने को मिलती, क्योंकि शब्दों में वह शक्ति नहीं है ।

'अपयस्स पयं नत्थि ।'

- आचारांग

पालीताना पहुँचने की मुख्य-मुख्य जानकारी आप प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु सम्पूर्ण अनुभव तो चलने से ही मिलेगा । शास्त्र में भी मुख्य-मुख्य बिन्दु ही होते हैं । अनुभव तो हमें ही करना पड़ेगा ।

शास्त्र केवल दिशा बताता है, चलना तो हमें ही पड़ेगा ।

'इक्कोवि नमुक्कारो' में जो एक ही नमस्कार संसार से पार उतार सकता है, ऐसा कहा है, वह इस 'सामर्थ्ययोग' का नमस्कार समझे ।

ॐ ॐ ॐ

इस पुस्तक को पढ़ने से स्व दोष-दर्शन की भावना जगी ।

- साध्वी विरागपूर्णाश्री

पू. हेमचन्द्रसागरसूरिजी : उपकार किस तरह समझें ?

पूज्यश्री : बुद्धि में बैठे तो ही मानें, उन लोगो को यह नहीं समझ में आयेगा ।

मैं ही पूछता हूँ - गृहस्थ तो साधुओं पर उपकार करते हैं । साधु गृहस्थों पर अधिक उपकार करते हैं, क्या यह समझ में आता है ? आप ही समझायें । साधु परोपकार की भावना से परोपकार करते हैं । साधुओं को बोलने की आवश्यकता नहीं है । उनके अस्तित्व मात्र से परोपकार होता ही है । सूर्य को तो फिर भी भ्रमण करके प्रकाश फैलाना पड़ता है, साधु बिना परिभ्रमण किये भी परोपकार फैलाते हैं, यह समझ में आता है ?

* चारित्र में आनन्द गुरु-भक्ति के प्रभाव से ही प्राप्त होता है । गुरु को यदि भगवान् तुल्य मानें तो भगवान् का अपमान नहीं होता, परन्तु भगवान् अधिक प्रसन्न ही होते हैं । आखिर गुरु-पद की स्थापना भगवान् ने ही तो की है न ?

तीन तीर्थों में प्रथम गणधर भी तीर्थ हैं, जिसकी स्थापना भगवान् ने ही की है । चतुर्विध संघ की स्थापना भी भगवान् ने ही की है । हम सबके भीतर भगवान् की शक्ति ही कार्य कर रही है ।

* विश्व के सभी पदार्थ कुछ न कुछ परोपकार करते ही हैं । परोपकार न करें ऐसा एक पदार्थ तो बताओ । धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय तो उपकार करते ही हैं । आकाश भी स्थान प्रदान करके उपकार करता ही है न ? पुद्गल भी उपकार करते हैं । शरीर, मन, वचन पुद्गलों में से ही बने हैं न ? क्या इनके बिना मोक्ष के योग्य साधना सम्भव होगी ? वज्रऋषभनारायण संघयण, पुद्गल के बिना क्या है ?

सिद्धों में जीवन है न ?

जहां शुद्ध जीवन होता है वहां सहज परोपकार होता ही है । तीर्थंकर भी सिद्धों के आलम्बन से कर्मों का क्षय करते हैं ।

हमारी शक्ति वैसी है सही, परन्तु अप्रकट है ।

प्रकट शक्ति वाले के आलम्बन से ही अप्रकट की शक्ति प्रकट होती है ।

* गुरु कैसे होते हैं ?

नय-निक्षेप प्रमाणे, जाणे जीवाजीव,
स्व-पर विवेचन करतां थाये लाभ सदीव;
निश्चय ने व्यवहारे विचरे जे मुनिराज,
भवसाथर तारण निर्भय तेह जहाज ।

- अध्यात्मगीता

ऐसे गुरु ही जहाज बनकर तार सकते हैं । अध्यात्म गीता की यह गाथा है । पहले हिन्दुओं की गीता की तरह इसका भी स्वाध्याय होता था ।

जो दुर्गति में जाने न दें, वे गुरु हैं ।

गुरु केवल नेत्र खोलने वाले ही नहीं हैं, नेत्र प्रदान करने वाले भी हैं । हमारी दो आंखें हैं, परन्तु तीसरी विवेक की, ज्ञान की आंख हमारे पास नहीं है वह गुरु प्रदान करते हैं । ऐसे गुरु की सेवा कैसे करनी चाहिये ?

रोगी डॉक्टर को समर्पित रहे तो ही आरोग्य प्राप्त कर सकता है ।

शिष्य गुरु को समर्पित रहे तो ही भाव-आरोग्य प्राप्त कर सकता है ।

भगवान उपस्थित नहीं है, परन्तु उनका पद गुरु सम्हाल रहे हैं । गुरु की शक्ति तो काम करती ही है, परन्तु शिष्य का समर्पण कैसा है उस पर सब आधार है । सिद्धों को, भगवान को या गुरु को देना नहीं पड़ता, परन्तु शिष्य अपनी योग्यता के अनुसार उसे प्राप्त कर ही लेता है ।

यहां बल्लब प्रकाश दे रहा है, परन्तु उसका प्रकाश 'पावरहाऊस' में से आता है । गुरु में ज्ञान का प्रकाश भी भगवान में से आता है ।

ऐसे गुरु की जिन्होंने ने अमृत-वाणी का पान किया, वे अमर हो गये ।

जल के बिना जीवित नहीं रह सकते । गांव बसाने से पूर्व जल की सुविधा देखी जाती है । आध्यात्मिक जीवन भी जिन-वाणी के बिना नहीं चल सकता । यह जिन-वाणी श्रवण कराने वाले गुरु हैं ।

जिनवाणी अर्थात् ज्ञान का अमृत ।

जिन्होंने ने ज्ञानामृत का पान कर लिया, किया के अमृत-फलों का आस्वादन किया, समता का पान खाया, उनके हृदय

में आनन्द का सागर हिलोरे लेता रहता है ।

भावना ज्ञान से भावित बनी आत्मा कर्मों से लिस नहीं होती परन्तु उक्त भावना ज्ञान भी गुरु से ही प्राप्त होता है ।

ज्ञान पूर्ण रूपेण गुरु के अधीन है । गुरु-भक्त को शास्त्रों के गुप्त से गुप्त रहस्य प्राप्त हो सकते हैं ।

अभयकुमार को आकाश-गामिनी विद्या नहीं आती थी, फिर भी पदानुसारिणी प्रज्ञा से उन्होंने ने उस विद्या की पूर्ति कर दी थी, जो समर्पण का ही प्रभाव है । किसी को भी आप पूछोगे तो वह अपने गुरु के प्रभाव का ही वर्णन करेगा । अन्य दर्शनवाले तो गुरु को ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहते हैं ।

‘गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वरः ।’

हमें भी कुछ अजैन बुलाते हैं तो कहते हैं - ‘प्रभु ! आदेश दो ।’ इस प्रकार वे प्रभु कह कर पुकारते हैं ।

गुरु की कृपा के बिना आत्मानुभूति का विकट कार्य पूर्ण नहीं होता । प्रत्येक जन्म में सब कुछ मिला है, परन्तु आत्मानुभूति नहीं मिली । गुरु की कृपा के बिना यह नहीं मिलती ।

एकाध पद को भी भावित करने से वह मोक्ष का कारण बन सकता है, यदि उसमें गुरु के प्रति समर्पण सम्मिलित है । माषतुष, चिलातीपुत्र आदि इसके उदाहरण हैं ।

हमें तो अनेक आगम-श्लोक कण्ठस्थ हैं, परन्तु कभी यह है कि वे ज्ञान-भावित नहीं हैं ।

* अभी जल वापरते समय शास्त्रीय पदार्थ याद आया है, जिसका निर्देश हरिभद्रसूरिजी ने दिया है - कोई भी जीव सर्व प्रथम धर्म किस प्रकार प्राप्त करता है ? कौन सा जीव प्राप्त करता है ?

योगावंचक प्राणी ही धर्म प्राप्त कर सकता है ।

योगावंचक से तात्पर्य है - गुरु में भव-तारक की बुद्धि रखने वाला प्राणी । इस भव में या पूर्व भव में योगावंचकता प्राप्त हुई हो वही धर्म प्राप्त कर सकता है । योगावंचक हुए बिना कोई जीव धर्म प्राप्त नहीं कर सकता ।

‘निर्मल साधु-भक्ति लही, योगावंचक होय;

क्रियावंचक तिम सही, फलावंचक जोय ।’

- पूज्य आनंदघनजी

गुरु आपका प्रमाद नष्ट करके आपको क्रिया में जोड़ते हैं । इसीलिए फिर क्रिया-वंचकता प्राप्त होती है ।

पू. मुनि धुरन्धरविजयजी म. : क्रिया में लगा रखेंगे तो फिर ध्यान कब करेंगे ?

पूज्यश्री : क्रिया करते करते निर्विकल्प में जाते हैं ।

पू. धुरन्धरविजयजी म. : क्रिया करते करते वृद्ध हो गये । इस समय तो ध्यान का केझ चलता है ।

पूज्यश्री : मैं कहां ध्यान का निषेध करता हूं ? कहता हूं कि सविकल्प में से ही निर्विकल्प में जा सकते हैं । पहले मन-वचन-काया को शुभ में परिवर्तित करो, उसके बाद निर्विकल्प में जाओ । सीधे सातवीं मंजिल पर नहीं जा सकते ।

पू. धुरन्धरविजयजी म. : क्या गुरु 'ध्यान' नहीं दे सकते ? अनेक गुरु दावा तो करते हैं ।

पूज्यश्री : भले ही दें, देखेंगे ।

पू. धुरन्धरविजयजी म. : कैसा देंगे ?

पूज्यश्री : वे लोग जैसा सीखे होंगे, वैसा ही देंगे न ? आपके गुरु महाराज पूज्य पं. भद्रंकरविजयजी महाराज के साहित्य का पठन करें । उसमें यह सब है ।

* 'सामायिक-धर्म' पुस्तक उनकी ही है, उनके ही पदार्थ हैं । केवल नाम भेरा है ।

उनके ही परामर्श से 'ध्यान-विचार' ग्रन्थ पढ़ने के लिए निकाला था । मैं ने वह निकाला और मुझे प्रतीत हुआ कि मुझे साक्षात् सर्वज्ञ मिल गये ।

पूर्वाचार्यों के अक्षर पढ़ने से ही 'जैन ध्यान पद्धति' पर परम श्रद्धा हुई ।

जहां आपकी रुकी हुई साधना है, उसे आगे बढ़ाने के लिए जैन-शासन बंधा हुआ है ।

मन में कोई दुःख न लगायें । जैन-शासन के प्रति प्रेम से ही यह सब बोला हूं । आप उसका आदर करके निर्विकल्प समाधि प्राप्त करें, यही मनोकामना है ।

ॐ ॐ ॐ



प्रभु दर्शन में लीनता, वि.सं. २०४१, जयपुर

११-८-२०००, शुक्रवार
सावन शुक्ला-१२

* स्वाध्याय साधुओं का भोजन है, आहार है । जितना स्वाध्याय प्रबल होगा, उतनी आत्मा की पुष्टता प्रबल होगी । स्वाध्याय से मन शास्त्रों में रहता है, जिस से ध्यान की पूर्व भूमिका तैयार हो जाती है ।

स्वाध्याय प्रेमी सहज ही ध्यान कर सकता है । इसी लिए अभ्यंतर तप में स्वाध्याय के पश्चात् ध्यान बताया है ।

* उपयोग एवं ध्यान एकार्थक हैं, पर्यायवाची हैं ।

उपयोग अर्थात् ध्यान ।

ध्यान अर्थात् उपयोग ।

उपयोग नहीं रहने के कारण ही हमारी क्रियाएं ध्यान नहीं बनती । उपयोग-रहित क्रियाएँ द्रव्य-क्रिया कहलाती हैं ।

स्वाध्याय में वाचना, पृच्छना, परावर्तना तक फिर भी द्रव्य-क्रिया हो सकती है, परन्तु अनुप्रेक्षा उपयोग के बिना नहीं हो सकती । अतः अनुप्रेक्षा ध्यान है ।

केवल उपयोग को सिद्ध कर लें तो सब ध्यान रूप बन जायें ।

पूज्य आनन्दघनजी ने कहा है -

‘दहतिग षण अहिगम साचवतां,

इकमना धुरि थइए रे...’

एक-मना दस त्रिकों से बना जाता है । एकमना अर्थात् ही उपयोग सहित साधक ।

योग की व्याख्या-मोक्ष (भगवान) के साथ जोड़ दे वह योग है ।

मोक्ष एवं भगवान कहां भिन्न हैं ?

संक्षेप में - आत्मा को जो परमात्मा बना ले वह योग है ।

इच्छायोग आदि में भी योग शब्द का प्रयोग हो चुका है ।

इच्छायोग रुचि है ।

सामर्थ्य-योग अनुभूति है ।

अनुभूति का मूल रुचि है । यदि रुचि में ही कमी (त्रुटि) हो तो अनुभूति की आशा छोड़ देनी चाहिये ।

प्रत्येक अनुष्ठान उपयोगपूर्वक हो तो काम हो जाये, समस्त क्रियाएँ भाव आवश्यक बन जायें ।

उपयोग न हो तब तक चैत्यवन्दन, प्रतिक्रमण आदि द्रव्यक्रिया ही कहलाती हैं ।

उपयोग मिल जायेगा तो भगवान के प्रति बहुमान उत्पन्न होगा ।

अर्थ में मन सम्मिलित हो जाये तो भगवान के प्रति बहुमान उत्पन्न होगा ही ।

‘नमुत्थुणं’ का अर्थ जानने पर ही सिद्धार्थ को भगवान की करुणा समझ में आ गई । इसीलिए वे जैन-शासन में स्थिर हुए ।

उपयोग पूर्वक आप आनन्दघनजी आदि के स्तवन बोलें तो आपकी चेतना झंकृत हो उठेगी ।

‘अभिनन्दनं जिन दरिसण तरसिये...’

यह बोलते समय आपकी चेतना दर्शन के लिए तड़प का अनुभव करेगी ।

चन्द्रप्रभु स्वामी का स्तवन बोलते समय लगेगा -

अनादिकाल में ऐसे दर्शन कहां हुए हैं ? अब दर्शन हुए

हैं तो पेट भर कर दर्शन करने दे ।

विमलनाथ के स्तवन में दर्शन होने का आनन्द है -

‘विमल जिन दीठा लोयण आज...’

* पुद्गलास्तिकाय जिस प्रकार द्रव्य रूप में एक है उस प्रकार जीवास्तिकाय भी एक ही द्रव्य है, जिसमें निगोद से सिद्ध तक के समस्त जीव आ गये । एक भी जीव बाकी नहीं है ।

इन जीवों को आत्मवत् देखना है ।

‘आत्मवत् सर्वभूतेषु’ आगे बढ़कर कहूं तो जीवों को परमात्म-तुल्य देखना है । यह कक्षा आने के पश्चात् भेद समाप्त हो जायेगा ।

* इस समय जिसप्रकार एकत्रित होकर कार्य करते हैं उस प्रकार सदा के लिए एकत्रित होकर कार्य किया जाये तो जैन-शासन का जयजयकार हो जाये । यहां मेरे-तेरा का भेद कैसा ?

* योग अर्थात् ध्यान, समाधि आदि । संक्षेप में मोक्ष के सभी साधन योग हैं । जो भगवान के साथ जोड़ दे वह योग है । भक्ति भी योग है जो भगवान के साथ जोड़ देती है ।

‘तस्मिन् परमप्रेमरूपा भक्तिः ।’

- नारदीय भक्तिसूत्र

* व्यवहार से सम्यग्दर्शन विनय है ।

चैत्यवन्दन आदि विनय के सूचक हैं ।

समकित के सड़सठ भेदों को देखें, देव-गुरु का परम विनय ही दृष्टिगोचर होगा । पांच शंका-दूषण टालने से तात्पर्य है देव-गुरु के प्रति अविनय टालना ।

सुनने की इच्छा शुश्रूषा । शुश्रूषा होती है वहां ज्ञान आता ही है ।

अनुष्ठानों की आराधना सम्यक् चारित्र है । तात्पर्य यह कि विनय से सम्यग्दर्शन, शुश्रूषा से सम्यग्ज्ञान और अनुष्ठानों की आराधना से सम्यक्चारित्र प्राप्त होता है ।

* ‘योगविशिका’ का सम्पूर्ण सार ‘ज्ञानसार’ के योगाष्टक में मात्र आठ श्लोकों में बताया है ।

उसमें लिखा है - चैत्यवन्दन आदि में स्थान आदि का उपयोग करना ।

स्थान, वर्ण - क्रियायोग ।

अर्थ, आलम्बन, अनालम्बन ज्ञानयोग है ।

अर्थ आदि का भावन करें तो ही चैत्यवन्दन भाव-चैत्यवन्दन हो सकेगा ।

स्थान-वर्ण में प्रयत्न और अर्थ आदि में विभावन करना है ।

इन पांचों (स्थान आदि) में ध्यान रखना कहां ? ऐसा न सोचें । मन का इतना शीघ्र स्वभाव है कि एक साथ चारों में पहुंच जाता है ।

मन के बालक को छूट दे देनी है - इन चारों में चाहे जहां जा, छूट है ।

स्थान में काय ।

वर्ण में वाणी ।

अर्थ आदि में मन जोड़ना है । मन को जोड़ना ही कठिन है । मन को जोड़ो । कदाचित् छटक जाये तो पुनः वहां जोड़ो । रोकड़, खाता-बही लिखते समय मन का ध्यान हट जाये तो पुनः वहां मन को जोड़ते हैं न ? उस प्रकार मन को यहां भी पुनः पुनः जोड़ो । प्रशिक्षण दो तो यह सम्भव है । मन सर्वथा बेवफा नहीं है, कुछ तो मानेगा ही ।

रसगुल्लों में मन एकाग्र हो सकता हो तो ऐसे अनुष्ठानों में एकाग्र क्यों न हों ?

अशुभ में एकाग्रता के लिए तो प्रयत्न करना ही नहीं पड़ता, शुभ के लिए ही प्रयत्न करना पड़ता है ।

यदि मन आप कहो वैसा करने लग जाये तो ही वह आपका सेवक गिना जाता है । मन स्वेच्छानुसार करता रहे और आप विवश हो कर देखते रहो तो उसमें आपका स्वामित्व नहीं है ।

* 'भगवती' में उल्लेख है कि शिवराजर्षि को सात द्वीपों-समुद्रों का अवधि ज्ञान हुआ और उसने घोषणा की कि जगत् इतना ही है ।

पुद्गल परिव्राजक को पांचवे देवलोक तक ज्ञान हुआ और उसने तदनुसार घोषणा की ।

वर्तमान विज्ञान यही करता है न ? जितना जानता है वही

सम्पूर्ण है, यही मानता है न ? यही 'कूप-मण्डूक-वृत्ति' है ।

कुंए में रहनेवाले मैढक ने कुंए के अतिरिक्त कुछ जाना ही नहीं । वह समुद्र को कैसे जान सकता है ?

उस समय लोगों में ऐसी बाते फैला कर उनका निराकरण करने के लिए गौतम स्वामी भगवान को पूछते और भगवान उनका निराकरण करते ।

अधकचरा ज्ञान खतरनाक है । शिवराजर्षि आदि को तो भगवान मिले, परन्तु हमें ? हम अपूर्ण ज्ञान से छलक रहे हैं ।

* क्षपकश्रेणी, केवलज्ञान, अयोगी गुणस्थानक इत्यादि का वर्णन शास्त्रों में उपलब्ध ही है, परन्तु शास्त्र पढ़ने मात्र से कोई केवलज्ञान नहीं हो जाता । इसके लिए आपको शास्त्रों से अतिक्रान्त होना पड़ता है । शास्त्र यहां रुक जाते हैं । शास्त्रों का कार्य केवल दिशा-निर्देशन है, चलना तो हमें है । दूसरा व्यक्ति मंजिल की मुख्य-मुख्य जानकारी देता है, परन्तु चलने का अनुभव तो अनुभव से ही मिलता है न ?

शास्त्र मील के पत्थर हैं । मील के पत्थर यही बताते हैं कि आप कितने चले ? अन्य कुछ नहीं बताते । उस प्रकार शास्त्रों की भी सीमा है, मर्यादा है ।

कोई व्यक्ति भोजन की सामग्रियां के नाम बताये, उतने मात्र से पेट नहीं भर जाता । पेट भरने के लिए भोजन करना पड़ता है ।

इसी प्रकार से शास्त्रों की बातें जीवन में उतारनी पड़ती हैं, फिर आगे जाकर ऐसी दशा आती है कि शास्त्र भी पीछे रह जायें । यह 'सामर्थ्य योग' है ।

सामर्थ्य योग से प्रातिभ ज्ञान मिलता है । फिर प्रातिभ ज्ञान केवल ज्ञान तक ले जाता है । योगाचार्यों ने विशेष तौर से 'प्रातिभ ज्ञान' शब्द का प्रयोग किया है ।

* जिस भूमिका में हों वहां से प्रारम्भ करना पड़ता है । हम यहां पालीताना आये । कोई ५०० किलोमीटर दूरी से, कोई हजार कि.मी. की दूरी से और कोई ढाई हजार कि.मी. की दूरी से आये हैं तो जो जितने दूर हों, वहां से उन्हें चलना पड़ता है ।

हम जिस भूमिका में हों, वहां से प्रारम्भ करना पड़ता

है । तलहटी में खड़ा व्यक्ति शिखर से यात्रा प्रारम्भ नहीं कर सकता ।

* प्रातिभ ज्ञान में आत्मवीर्य की प्रधानता है । वह क्षपकश्रेणि के समय होता है । जिस प्रकार कोई व्यापारी अमुक समय पर एक भी ऋण-दाता लेनदार को अपने पास आने नहीं देता । मुद्दत दी हो तो ऋण-दाता मांगने के लिए आयेंगे ही । यदि वे लेनदार एक साथ मांगने के लिए आ जायें तो आज का व्यापारी दिवाला निकाल देता है न ?

पूज्य हेमचन्द्रसागरसूरिजी : व्यापार किया प्रतीत होता है ।

पूज्यश्री : सब नाटक किये हैं, परन्तु ऐसा कदापि किया नहीं है । भूल से भी अन्याय नहीं किया । कोई भूल जाये तो सामने से याद कराया है ।

* बांधे हुए कर्म तो उदय में आते ही हैं । बांधते समय आप स्वतन्त्र हैं, भोगते समय आप परतन्त्र हैं । भोगते समय समता ही रखनी पड़ती है ।

आपको क्या ? मुझ पर भी प्राणघातक व्याधि आई है । उस समय भगवान के तत्त्वज्ञान ने ही मुझे दुःखान से बचाया है, अन्यथा उस समय क्रोध भी आ जाये कि कोई सेवा करता नहीं है आदि; परन्तु एक अंगुली की पीड़ा दूसरी अंगुली ले नहीं सकती तो अपनी पीड़ा दूसरे कैसे ले सकते हैं ?

यश-अपयश, शांता-अशांता सब अशाश्वत हैं, चले जाने वाले हैं । विहार में अच्छा तथा बुरा दोनों मार्ग चले जाने वाले हैं, यही मानें न ? उस प्रकार यहां भी यह सब चला जाने वाला है, यह मानकर समता रखनी है ।

ऐसा करने से ही राग, द्वेष आदि लुटेरों को जीत सकेंगे ।

वे सर्व प्रथम भगवान के भक्तों पर आक्रमण करते हैं, क्योंकि उन्हें क्रोध है - भगवान ने हमारा अपमान किया है । अब उनके भक्तों को नहीं छोड़ेंगे । अतः राग-द्वेष आदि भक्तों पर आक्रमण करते हैं, परन्तु भक्त भी कहां पीछे रहने वाले हैं ?

उन्हें विश्वास है कि हमारे मन की गुफा में सिंह के समान



आजीवन अंतेवासी एवं पूज्यश्री के आंतरिक गुणों को
जीवन में उतारनेवाले पू.पं.श्री कल्पतरु के साथ

१२-८-२०००, शनिवार
सावन शुक्ला प्रथम १३

* इस जन्म में विश्वास हो जाये कि 'अब मेरा भव-परिभ्रमण का भय चला गया।' ऐसी साधना कर लें।

'आज भव-भ्रमण का भय मिट गया।' ऐसे उद्गार कब निकलते हैं ? अनुभवी महापुरुषों के ग्रन्थ पढ़ें। उनकी कृतियों में ऐसा आत्म-विश्वास छलकता प्रतीत होगा।

एकेन्द्रिय जीवों के लिए भी भावना भानी है कि वे मानव-जन्म प्राप्त करके शीघ्र मोक्ष प्राप्त करें।

('एकेन्द्रियाद्या अपि हन्त जीवा' - विनयविजयजी, शान्त-सुधारस)

परन्तु हम तो अपनी आत्मा के लिए भी ऐसी भावना नहीं भाते। भगवान का स्वभाव है कि 'जो शरण में आये उसका भव-भ्रमण दूर करना।' भगवान का 'भविनां भवदम्भोलिः।' विशेषण है।

एक ही गेहूं के आटे से विविध प्रकार की मिठाईयां बनती हैं, उस प्रकार एक ही मुद्दे 'भव-भ्रमण का भेद' पर विभिन्न प्रकार के शास्त्र रचे गये हैं।

उतार लें । समय अत्यन्त तीव्रता से जा रहा है । भगवान महावीर गौतम स्वामी को कहते हैं कि दर्भ की नोक पर रहे बिन्दु को गिरने में क्या देरी ? यह जीवन जाने में क्या देरी ? अतः प्रमाद न करें ।

परन्तु भगवान की वाणी भी लोगों ने स्वीकार नहीं की तो मेरी बात तो कहां से स्वीकार करेंगे ? आप यहां नित्य श्रवण करने के लिए आते हैं यह भी बड़ा उपकार है ।

* सामर्थ्य योग के दो प्रकार हैं :

(१) धर्म संन्यास ।

(२) योग संन्यास ।

संन्यास अर्थात् विरति । संन्यास अर्थात् रुकना । दूसरे अपूर्वकरण में (आठवे गुणस्थानक में) यह सामर्थ्य योग सच्चे अर्थ में आता है । उससे पूर्व अतात्त्विक सामर्थ्य योग दीक्षा ग्रहण करने के समय हो सकता है ।

* उच्च भूमिका में जाने के पश्चात् नीची भूमिका के गुण लुप्त नहीं हो जाते, वे ही गुण पुष्ट होते रहते हैं । मार्गानुसारी, श्रावकों आदि के गुण अधिकाधिक पुष्ट होते रहते हैं । लाख रुपये हो गये अतः पहले के दस हजार रुपये गये नहीं हैं, परन्तु वे दस गुने हुए हैं ।

आठवे गुणस्थानक के अतिरिक्त श्रेणी बनती नहीं है । श्रेणी के बिना केवल ज्ञान नहीं । केवल ज्ञान के बिना मोक्ष नहीं । इस समय यह सब नहीं मिलेगा अतः हम उदासीन बने बैठे हैं । यही अपनी भूल है । इस समय प्राप्त सामग्री पर्याप्त नहीं है । सामग्री पर्याप्त मिलेगी तब भारी साधना करेंगे । महाविदेह में जाकर सीमंधर स्वामी के पास घोर साधना करेंगे, यह सोचने वाले यह नहीं देखते कि इस समय प्राप्त सामग्री का पर्याप्त उपयोग नहीं किया तो किस आधार पर अगली उत्तम सामग्री मिलेगी ? कदाचित् महाविदेह मिल जायेगा, परन्तु वहां से मोक्ष मिलेगा ही, क्या यह निश्चित है ? वहां से मोक्ष जानेवाले हैं और सातवीं नरक में जाने वाले भी हैं, यह न भूलें ।

* मन ज्यों घूमता है उस प्रकार घूमने देते हैं, मन चंचल

बने इसका हमें तनिक भी दुःख नहीं है । प्राप्त सामग्री का कोई उपयोग नहीं है । साधना की कोई दृष्टि नहीं है, फिर भी हम कहते हैं कि मोक्ष क्यों नहीं ?

मन को बलपूर्वक खींचना नहीं है । खींचोगे तो मन अधिक छटकेगा । उपा. यशोविजयजी ने लिखा है - मन के साथ प्रेमपूर्वक काम लें - हे बालक मन ! तू चंचल क्यों है ? तुझे क्या चाहिये ? आनन्द चाहिये न ? वह आनन्द तुझे स्थिरता बतायेगा । तू तनिक स्थिर हो जा । तेरी अस्थिरता ही तुझे आनन्द का खजाना बताती नहीं है ।

इस प्रकार प्रेम से मन को समझाने से ही वह धीरे-धीरे वश में हो जाता है, साधना के लिए वह अनुकूल बनता है ।

पूज्य आनन्दधनजी, पूज्य यशोविजयजी, पूज्य देवचन्द्रजी आदि महात्माओं का मन भगवान में लग गया, साधना का मार्ग खुल गया । इसका अर्थ यह हुआ कि उन्होंने ने पूर्व जन्म में साधना की होगी । अधूरी साधना पूर्ण करने के लिए ही उन्होंने ने योगी-कुल में जन्म लिया है ।

मुझे स्वयं को भी ऐसा अनुभव होता है । जो भक्त भगवान को समर्पित हो गया, उसकी समस्त अपूर्णता पूर्ण करने के लिए भगवान प्रतिबद्ध हैं, मुझे तो निरन्तर ऐसा लग रहा है ।

विपत्तौ किं विषादेन, संपत्तौ हर्षणेन किम् ।

‘ज्ञानी ने देखा हो वह होता है ।’ यह बात भक्त को अधिक प्रेरक बनती है, आराधना में अधिक सक्रिय करती है और जो अभक्त होता है उसे निष्क्रिय बनाती है ।

सिद्धगिरि जैसी उत्तम धरा पर आये हैं तो साधना के मार्ग पर चलना प्रारम्भ कर ही देना । अन्य स्थान पर जो सफलता प्राप्त करने में वर्षों लग जाते हैं, वह सफलता यहां अल्प समय में ही प्राप्त हो जाती है, इस धरा का इतना महान् प्रभाव है ।

* कोई भी जीव चाहे जहां से सिद्ध हो नहीं सकता, उसे यहां ढाई द्वीप में आना ही पड़ता है ।

लिफ्ट में बैठ कर ऊपर की मंजिल पर जा सकते हैं । उस प्रकार यहां आकर ही सिद्ध शिला पर जा सकते हैं । वह लिफ्ट

तो तैयार है और आप उसमें बैठ सकते हैं, परन्तु यहां कोई 'लिफ्ट' तैयार नहीं है। आपको स्वयं को वह तैयार करनी पड़ती है।

इस तरह सम्पूर्ण ढाई द्वीप तीर्थ है, क्योंकि सभी जीव यहीं से मोक्ष में गये हैं। ढाई द्वीपों में भी सिद्धाचल सबसे उत्तम (सर्वोत्तम) क्षेत्र है, जहां से सर्वाधिक जीव मोक्ष में गये हैं। इस पावन धरा का यह विशिष्ट प्रभाव है।

यहां आने पर विशिष्ट आत्मवीर्य उल्लसित होता है।

आत्मवीर्य-सूचक आठ शब्द हैं - वीर्य, शक्ति, बल, पराक्रम, उत्साह, स्थाम, चेष्टा एवं सामर्थ्य।

आत्मशक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार से कार्य करती है, अतः उसे बताने वाले शब्द भी भिन्न-भिन्न हैं। कोई शक्ति धोबी की तरह धोकर कर्मों को छिन्न-भिन्न करती है, कोई शक्ति ऊपर उछाल कर नीचे गिराती है, कोई कूट-कूट कर कर्मों को बिखरेती है - ऐसा 'ध्यान-विचार' में स्पष्ट किया है।

* केवल ज्ञान की जघन्य, मध्यम, उत्तम अवगाहना कितनी है ? ऐसा शास्त्र में प्रश्न आता है।

यह तेज-पुंज रूप केवलज्ञान की अवगाहना की बात है।

उत्कृष्ट अवगाहना लोक व्यापी है, जो समुद्घात के चौथे समय में होती है। लोक व्यापी ध्यान से केवली इस प्रकार कर्मों का क्षय करते हैं -

ऐसा समुद्घात प्रत्येक छः माह में एक बार तो होता ही है। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक छः माह में एक केवलज्ञानी का साक्षात्कार तो होता ही है। यदि अपनी भूमिका तैयार हो तो आत्म-शक्ति में उल्लास की वृद्धि होती है।

समय सूक्ष्म होने के कारण चाहे पकड़ नहीं सके, परन्तु कार्य रूप में अनुभव कर सकते हैं।

चक्रवर्ती की पत्नी के बालों का स्पर्श कराकर मोहराजा यदि अपना चमत्कार बता सकता है तो केवली का स्पर्श चमत्कार का सृजन क्यों नहीं कर सकता ?

ॐ ॐ ॐ



१३-८-२०००, रविवार
सावन शुक्ला द्वितीय-१३

सामूहिक प्रवचन

स्थान : वागड़ सात चौबीसी, विषय : गुरु भक्ति

पूज्य मुनिश्री धुरन्धरविजयजी महाराज :

* तीन रविवार से पालीताना बिराजमान पूज्यश्री पधारते हैं । संघ भी उल्लासपूर्वक एकत्रित होता है । भिन्न-भिन्न विषयों पर प्रवचन होते रहते हैं । प्रभु-भक्ति, अरिहन्त का जाप, शंखेश्वर दादा के अट्टम आदि विषयों पर प्रवचन हुए । अब आज 'गुरु-भक्ति' पर प्रवचन होगा ।

पूज्य मुनिश्री जीतरत्नसागरजी :

वह दिन पाटन के लिए बुरा सिद्ध हुआ था । प्रत्येक व्यक्ति के नेत्रों में आंसू थे, क्योंकि कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्रसूरिजी का स्वर्गवास हुआ था । गुजरात पर जितना उपकार श्री हेमचन्द्रसूरिजी का है, उतना दूसरों का शायद ही होगा ।

अग्नि-संस्कार के समय कुमारपाल बच्चे की तरह रो रहे थे । दुःख का कारण पूछने पर बताया कि ऐसे गुरु मिलने पर

भी एक बार भी गोचरी नहीं बहोश सका, क्योंकि वे राज-पिण्ड ले नहीं सकते थे । मैं ने राज्य का त्याग क्यों नहीं किया ?

यह हे गुरु-भक्ति !

प्रभु की आज्ञा का पालन गुरु करते हैं । गुरु की आज्ञा का पालन हमें करना है । गुरु-तत्त्व के बिना कभी किसी का उद्धार नहीं हो सकता । देव, गुरु और धर्म, इन तीनों के मध्य गुरु है । जो मुख्य होता है वह मध्य में ही रहता है । दीपक को बीच में रखने से दोनों कमरों में प्रकाश आ सकता है । इसे देहली-दीपक-न्याय कहते हैं । देव और धर्म दोनों की पहचान गुरु के द्वारा होती है ।

प्राप्त करने जैसा गुण गुरु-समर्पण है ।

हृदय में गुरु बसे हों यह तो ठीक है, परन्तु गुरु के हृदय में हमारा स्थान हो जाये तो काम बन जायेगा । एकलव्य का स्थान गुरु के हृदय में भी था ।

शास्त्रों में कहा गया है कि सम्भव हो तो गीतार्थ गुरु बनें, अथवा उनके शरणागत बनें । तीसरा कोई विकल्प नहीं है ।

हमारे नगर में गुरु आते हैं और हम उनकी परीक्षा करना चाहते हैं । यह है हमारा समर्पण ! गुरु की परीक्षा नहीं, प्रतीक्षा करें । प्रथम स्वयं की परीक्षा करें । अभी गुरु की परीक्षा का हमें अधिकार नहीं है ।

एक प्रसंग याद आता है । किसी गुरु ने शिष्य को कहा, 'गोचरी के साथ धारदार चाकू भी ले आना ।' समर्पित शिष्य ने वैसा ही किया ।

मध्य रात्रि में गुरु उसकी छाती पर चढ़ बैठे । यदि ऐसा हो जाये तो क्या करेंगे आप ? वह तो समर्पित शिष्य था । गुरु ने चाकू से अंगुली में से खून लिया और चले गये ।

प्रातः गुरु ने शिष्य को पूछा तब उसने उत्तर दिया - 'जिसको मैंने अपना सम्पूर्ण जीवन सौंप दिया, उनसे क्या डरना ? वे जो भी करेंगे, वह मेरे हित में ही होगा ।'

गुरु ने कहा, 'तेरा पूर्व जन्म का कोई शत्रु सांप तुझे डंसने के लिए आया था । उसका निवारण मैं ने इस प्रकार किया । यदि मैं ऐसा नहीं करता तो तेरे प्राण चले जाते ।

गाय मालिक की शरणागति स्वीकार करती है तो उसकी सुरक्षा होती है। हम गुरु की शरणागति स्वीकार करेंगे तो हमारी सुरक्षा होगी।

पूज्य मुनिश्री धुरन्धरविजयजी म. :

जिसने गुरु की उपासना की हो, उसका जीवन धन्य है।

जिन्होंने ने दीक्षा ग्रहण करके मात्र गुरु-भक्ति ही की है, वे पं. वज्रसेनविजयजी अब वक्तव्य देंगे।

* पूज्य पं. वज्रसेनविजयजी म. :

‘मेरे अज्ञान का नाश करनेवाले गुरु हैं’ - यह लगे तो गुरु याद आयें और ‘अहं’ टूटे। अनादिकाल से ‘मेरी बात रहनी चाहिये’ वैसी इच्छा है। यह इच्छा टूटने पर ही गुरु को समर्पण हो सकता है।

उसमें भी जिन गुरु ने विशिष्ट उपकार किया हो, उनके प्रति विशेष समर्पित रहना चाहिये।

* पंच परमेश्वी में अरिहंत एवं सिद्ध परम गुरु हैं।

आचार्य, उपाध्याय, साधु गुरु हैं।

गुरु अनुपस्थित हों अथवा गुरु हमसे अल्प बुद्धिवाले हों तो भी समर्पण से कार्य होता ही है। एकलव्य ने मिट्टी के पुतले के द्वारा ही समर्पण से सफलता प्राप्त कर ली थी।

पू. जंबूविजयजी म. को अपने गुरु पू. भुवनविजयजी म. पर कैसी भक्ति है ? दर्शन करने के लिए जाना हो तब भी उनके फोटो से आज्ञा लेकर जाते हैं और दर्शन करने के पश्चात् भी फोटो के समक्ष कहते हैं - ‘मैं दर्शन करके आ गया।’

स्थापनाचार्य के प्रति भी ऐसा ही भाव। कदाचित् गिर जायें तो उसी दिन वे उपवास करते हैं।

ऐसे अन्य भी अनेक महात्मा होंगे। यह तो मेरे अनुभव में आई हुई बात मैं कहता हूँ। अपने गुरु की स्मृति में ४० वर्षों से आज भी वे प्रति माह अट्टम करते हैं।

गुरु की सहायता मिलती है, उस प्रकार उन्हें सतत अनुभूति होती रहती है।

कृतज्ञता अधिक होती है उस प्रकार गुण-प्राप्ति अधिक होती है ।

गुण-प्राप्ति का मूल कृतज्ञता है । उपकारी को नित्य स्मरण करें तो गुणों की वृद्धि होती है ।

पू. कलापूर्णसूरिजी कहते हैं : 'जिनके पास अध्ययन किया है, उन सबको मैं नित्य याद करता हूँ ।'

आप कितनों को याद करते हैं ?

आत्म-विकास हेतु योग्यता प्राप्त करने की आवश्यकता है । योग्यता बढ़ने के साथ योग्य वस्तुएं प्राप्त होती ही रहती है । कदाचित् व्यक्ति उपस्थित न हो तो दिव्यकृपा उतरती ही है ।

थोड़ी-बहुत सहायता भी जिन्होंने की हो, उन्हें याद करके यदि नवकार गिनेंगे तो नवकार में भी शक्ति बढ़ी हुई प्रतीत होगी ।

पूज्य धुरन्धरविजयजी म. :

मेरे परम उपकारी गुरुदेव पू.पं. भद्रंकरविजयजी म. की सेवा में रहने वाले पं. वज्रसेनविजयजी ने एक मजेदार बात कही । बात गुरुजनों के प्रति कृतज्ञता की है ।

गिरिविहार में चतुर्विध संघ की अद्भुत भक्ति होती है जिसके प्रेरक गुरु थे । अपने गुरु की भावना साकार करने के लिए उन्होंने ने यह कार्य उठाया ।

भविष्य में तीन रूपयों के स्थान पर भोजन में एक ही रूपया लिया जायेगा । यह है गुरु-भक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण ।

अब सद्गुरु स्वरूप एवं स्वरूप-रमणता में लीन पूज्य कलापूर्णसूरिजी वक्तव्य देंगे ।

पूज्य आचार्यश्री विजयकलापूर्णसूरिजी महाराज :

(सबको बारह नवकार गिनने की पूज्यश्री की ओर से सूचना दी गई ।)

* गत रविवार को गुरु-तत्त्व पर विचार किया गया । आज भी इस विषय में अनेक महात्मा इसका रहस्य बतायेंगे ।

पांचो परमेष्ठी गुरु हैं । इसीलिए ये पंच गुरुमंत्र भी कहलाते हैं । ये पांच परम मंगलरूप हैं । ये जग का मंगल करने के लिए बंधे हुए हैं ।

ऐसा कहने की अपेक्षा उनका ऐसा स्वभाव है यह कहना अधिक ठीक गिना जायेगा । ये पांचो थे, हैं और रहेंगे । इनके आधार पर ही आध्यात्मिक जीवन जिया जा सकता है ।

उनमें से ज्ञात एवं अज्ञात के उपकार भी स्वीकार करने हैं । अदृष्ट गुरु अनन्तानन्त हैं, ऐसा सिद्धचक्र पूजन में हम जानते हैं । किसी भी जन्म में तनिक भी उपदेश दिया हो, मित्र बनकर मार्गदर्शन भी दिया हो, वे भी अपने गुरु गिने जाते हैं । वे यदि भूल जायें तो ज्ञान भूल जायें । यदि धर्म नहीं खोया हो तो देव-गुरु को भूलें नहीं ।

अन्य दर्शनों में भी कहा है : 'प्रभु ! आपका स्मरण ही सम्पत्ति और विस्मरण ही विपत्ति है ।

गौतम स्वामी को संसार महान् मानता है, परन्तु वे स्वयं तो गुरु महावीर के चरणों में ही लीन हैं ।

तापसों ने जब गौतम स्वामी के मुंह से गुरु महावीर देव की बात सुनी तब वे स्तब्ध हो गये ।

केवलज्ञानी बने तापस भी पीछे और छद्मस्थ गौतम आगे । यह है गुरु का बहुमान । हरिभद्रसूरिजी ने १४४४ ग्रन्थ गुरु को समर्पित किये । एक उपकारी साध्वीजी याकिनी महत्तरा को वे कदापि नहीं भूले । उन्होंने प्रत्येक ग्रन्थ में धर्म-माता के रूप में उनका उल्लेख किया है ।

अभी वज्रसेन विजयजी ने अपने गुरु का नहीं परन्तु जम्बू-विजयजी का उदाहरण दिया । उनके गुरुदेव पूज्य पं. भद्रंकर विजयजी महाराज कैसे महान् थे, वह हमें पता है ।

'गुरु दीवो गुरु देवता, गुरु विण घोर अंधार ।'

अंधेरी गुफा में धातुवादी प्रविष्ट हों और वहां दीपक बुझ जाये तो क्या दशा हो ?

ऐसी ही दशा गुरु को छोड़ देने पर हमारी होती है । भव-भव भटकने का कारण यही है । गुरु मिले होंगे, परन्तु हम समर्पित नहीं हुए हों ।

'होउ मे एएहि संजोगो ।'

'मुझे ऐसे गुरु का संयोग हो ।'

मैं उनकी सेवा के योग्य बनूँ, मैं उनके वचनों का पालन करने वाला बनूँ और निरतिचार पालन करके उन्हें बतानेवाला बनूँ ।

- पंचसूत्र

ऐसा करेंगे तो ही आराधक बनेंगे ।

* यहां कैसे आनन्द से सब महात्मा मिलते हैं ? केवल रविवार को ही नहीं, हम तो लगभग कहीं न कहीं नित्य मिल जाते हैं ।

हृदय का प्रेम भाव इस प्रकार संघ में बढ़े तो ही उन्नति होगी । बाकी संघ में कोई कमी नहीं है । शक्तियां संगठित बनें यही आवश्यक है ।

गुरु-भक्ति के सम्बन्ध में जो सुनो, उस पर अमल करें । आज भी ऐसे श्रावक हैं जो कहते हैं - 'गुरु वचन तहत्ति ।'

कभी कुमारपाल वी. शाह को पूछें । गुरुरूप से करोड़ों रूपयों का कार्य करने वाले गुरु-भक्त कितने हैं ?

छिपे रख हमारे चतुर्विध संघ में हैं ।

इसीलिए रत्नों की खान-तुल्य संघ का आज भी जयजयकार हो रहा है ।

गुरु-भक्ति का साक्षात् प्रभाव यहां भी अनुभव किया जा सकता है । इसी भव में भगवान के दर्शन किये जा सकते हैं ।

पू. हरिभद्रसूरिजी ऐसी बात (गुरु-भक्ति प्रभावेन) कहां से लाये ? सिद्धान्तों के अक्षरों के बिना तो ऐसी बात होती नहीं । उन्हें 'पंचसूत्र' में से ये अक्षर मिले : गुरु-बहुमागो मोक्खो ।

गुरु एवं भगवान एक ही हैं । गुरु को समर्पित होते हो, अतः व्यक्ति को नहीं, भगवान को ही समर्पित होते हों; क्योंकि गुरु भगवान के द्वारा ही स्थापित है ।

समापत्ति ध्यान के द्वारा आज भी भगवान के दर्शन हो सकते हैं । ऐसा व्यक्ति स्वयं भगवान बनता है अथवा भगवान के पास पहुंचता है ।

सभी साधु-साध्वी स्व-गुरु के प्रति आदर रखें और भक्ति में वृद्धि करें तो रुका हुआ आत्म-विकास तीव्र वेग से चलता है ।

दर्शनमोह, मान, कषाय आदि गुरु-भक्ति में रुकावट करते हैं ।
पं. वज्रसेनविजयजी ने कहा उस प्रकार गुरु-भक्ति के प्रभाव से 'अहं' नष्ट हो जाता है ।

धर्मराजा का भवन नमस्कार पर खड़ा है ।

मोहराजा का भवन अहं पर खड़ा है ।

अहं पर झटका लगते ही बस, संसार का समग्र भवन धराशायी हो जाता है ।

'ललित विस्तरा' (परम तेज) पढ़ो तो गुरु एवं परम गुरु की भक्ति बढ़ेगी, समर्पण-भाव में वृद्धि होगी ।

सब के हृदय में ऐसी भक्ति का परिणमन हो ऐसी अभिलाषा है ।

पूज्य धुरन्धरविजयजी म. : गुरु के प्रति तीव्र बहुमान ही मोक्ष है । इससे ही मोह का क्षय होता है ।

मैत्री प्रभु के अनुग्रह के बिना नहीं मिलती । प्रभु का अनुग्रह गुरु के अनुग्रह के बिना नहीं मिलता, ऐसी बातें हमने पूज्यश्री से सुनी ।

अब पूज्य भद्रसूरिजी के आजीवन अन्तेवासी पूज्य ॐकार-सूरिजी के आजीवन अन्तेवासी पूज्य यशोविजयसूरिजी :

प्रार्थना सूत्र 'जयवीरराय' में प्रभु के समक्ष नित्य दोहराते हैं ।

'सुहगुरुजोगो ।' प्रभु ! तू मुझे सद्गुरु का योग करा दे । मेरे समग्र अस्तित्व का जुड़ाव जब तक सद्गुरु के साथ न हो तब तक जीवन का अर्थ नहीं है । यह विरलतम घटना है । सद्गुरु एक खिड़की है, जिसके द्वारा परम का असीम आकाश देखा जा सकता है ।

खिड़की एवं अलमारी बाहर से समान प्रतीत होती हैं, परन्तु खोलने पर पता लगता है । जिसके पीछे दीवार हो वह अलमारी, जिसके पीछे खाली हो वह खिड़की है ।

जो भीतर से शून्य बन गये हैं वे सद्गुरु हैं ।

हो सकता है कि पू. हेमचन्द्रसूरिजी अथवा पू. हरिभद्रसूरिजी के समय में भी हम हों, परन्तु उन सद्गुरु के साथ जुड़ाव नहीं था ।

सद्गुरु के द्वारा ही परम गुरु मिलते हैं ।
सद्गुरु के चरणों में सिर झुकाने के पश्चात् कोई इच्छा नहीं
रहती ।

‘सद्गुरु-चरण बिना मोहे कुछ नहीं भावे ।’

‘भवसागर अब सूख गया है ।

फिकर नहीं मोहे तरनन की ।

मोहे लागी लगन गुरु चरनन की ।’

- मीरा

सागर सूख जाये फिर तैरने की आवश्यकता क्या ?

एक साधक को सद्गुरु की तलप लगी; वह सद्गुरु को
ढूँढ़ने के लिए निकल पड़ा ।

जंगल में मिले गुरु को साधक ने पूछा, ‘मुझे सद्गुरु कहाँ
मिलेंगे ।’

गुरु ने कहा, ‘गुरु प्रत्येक के लिए निश्चित है, योग्य समय
पर मिलते हैं । वे जंगल में अमुक वृक्ष की डाली के नीचे तुझे
मिलेंगे ।’

यह सुनते ही वह दौड़ा । पांच वर्षों तक जंगल में भटका,
परन्तु कहीं पता नहीं लगा । गुरु हैं तो वृक्ष नहीं है, वृक्ष हैं तो
गुरु नहीं हैं । कहीं मेरी समझ में भूल तो नहीं है । फिर याद
आया - ये ही गुरु वृक्ष के नीचे थे । पुनः पांच वर्षों के पश्चात्
वे ही गुरु वृक्ष के नीचे मिले । उस समय भी वे उसी वृक्ष के
नीचे खड़े थे ।

शिष्य ने अपनी वेदना व्यक्त की -

‘मुझे तो पता नहीं था गुरु ! आपको तो पता था न ?
तनिक कहना तो था । पांच-पांच वर्षों तक मेरी पांवों की कड़ी
कर डाली ।’

‘मुझे पांच वर्षों तक तेरे लिए एक स्थान पर बैठा रहना
पड़ा उसका क्या ? उस समय तेरे शिष्यत्व की परिपक्वता नहीं
थी । उसके बिना सद्गुरु का योग नहीं हो सकता ।’ गुरु ने कहा ।

सद्गुरु की प्राप्ति महान् घटना है । अरणिक मुनि को सद्गुरु
मिले थे । दोपहर में पांव जले । उनका पतन हुआ । यह जानते

हैं। माता पागल हो गई। फिर माता के पास वे बोले - 'तेरा अभागा पुत्र मैं ही हूँ।'

साध्वी-माता बोली : 'चल गुरु के पास।'

गुरु का नाम पड़ते ही अरणिक मुनि लौट आये, तब गुरु ने कुछ भी उपालम्भ नहीं दिया। गुरु जानते हैं कि - 'प्रातःकाल का भूला सायंकाल में पुनः लौटेगा ही।'

गुरु का सशक्त हाथ पड़ा और शक्ति प्राप्त हुई।

'वासक्षेप करो, वासक्षेप दो' ऐसा बोला जाता है। 'वासक्षेप डालो' ऐसा नहीं कहा जाता। वासक्षेप के द्वारा गुरु की शक्ति प्राप्त होती है।

उन्ही अरणिक मुनि ने धधकती शिला पर संथारा कर लिया। यह शक्ति गुरु से ही मिली थी।

यह जीवन केवल सदगुरु-योग के लिए ही है।

यदि सम्पूर्ण समर्पितता आ जाये तो जीवन मंगलमय बन जाता है।

पूज्य धुरन्धरविजयजी म. :

आज शीघ्रता न करें, सवा ग्यारह बजे तक बैठें।

गुरु सामने ही होते हैं, परन्तु हम उन्हें पहचान नहीं पाते। इस शासन में कभी भी सदगुरु की अनुपस्थिति नहीं होती, मात्र अपनी पात्रता नहीं होती। जहां गुरु उपस्थित हों वहां भगवान होते ही हैं।

पूज्य वीररत्नविजयजी :

प्रभु ने केवल ज्ञान से देखकर सभी के लिए मोक्ष-मार्ग बताया है।

स्कूल में क्या पढ़े थे ? याद है ?

मस्तिष्क में याद हो और उस मार्ग पर चलें तो गुरु के आशीर्वाद मिल सकते हैं।

हम छोटे थे तब वर्णमाला सीखी थी -

क : कमल, ख : खरगोश, ग : गणेश, घ : घर इत्यादि।

'क' का कमल कहता है कि जीवन कमल की तरह जीओ, अनासक्त भाव से जीओ।

खरगोश की तरह तीव्र गति से समय चलता है, समय को पकड़ लो।

गणेश : गण + ईश, गणधरों को याद करो ।

घर : अपने घर मोक्ष को याद करो ।

हम इन सबको भूल गये और हमने इतना ही याद रखा -

क : कमाना, ख : खाना, ग : गहना बनाना, घ : घर बनाना । (मिट्टी का घर बनाना)

बुद्धिमान खड़ा-खड़ा ही घर से निकल जाता है, क्योंकि वह जानता है कि खड़े-खड़े नहीं निकलेंगे तो आड़े होकर तो निकलना ही पड़ेगा ।

पूज्य धुरन्धरविजयजी म. :

एक प्रसंग -

गुरु : वत्स ! तुझे मुझसे अलग होना है ।

साधक : आपको छोड़ कर कहीं भी नहीं जाऊंगा ।

गुरु : मेरी आज्ञा पालन करके एक हजार मील दूर जाएगा तो भी तू मेरे पास है । आज्ञा का पालन नहीं किया और तू मेरे पास रहेगा तो भी तू दूर है । ऐसा गुरु कुल-वास ही ब्रह्मचर्य है, ऐसा शास्त्रों में उल्लेख है ।

आगामी रविवार को संघ-भक्ति पर प्रवचन रहेगा ।

नन्दलालभाई (धर्मशाला के ट्रस्टी) :

पूज्य आचार्य भगवन् तथा समस्त पूज्यश्रीयों को सादर वन्दना !

चार-चार रविवारों से इस स्थान पर जिस वातावरण का सृजन हुआ है, वह भारत भर में फैले, ऐसी भावना है । इसका मूल यहां होने का हमें गौरव है ।

पर्यूषण महापर्व के पश्चात् भी यहां अनुष्ठानों का आयोजन हो वैसी अपेक्षा रखते हैं ।

पूज्य हेमचन्द्रसागरसूरिजी :

पूज्य आचार्यश्री शान्तिचन्द्रसूरिजी ने अद्भुत बात बताई है -

‘ते धन्ना जेसिं हिययम्मि गुरुओ वसंति

ते धन्नाण वि धन्ना गुरु-हिययम्मि जे वसंति’

गुरु को आप हृदय में बसाओ तो आप धन्य हैं परन्तु यदि जीवन को धन्यतम बनाना हो तो गुरु के हृदय में निवास करना पड़ेगा ।

प्रत्येक वक्ता के पास भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण देखने को मिला ।

* गुरु के कतिपय पर्यायवाची शब्द :

गुरु : 'गु' अर्थात् अज्ञान, 'रु' अर्थात् उलीचने वाला,
अज्ञान को उलीचता है वह गुरु है ।

भिक्षु : जो कर्म को भेदता है वह ।

यति : यतना के द्वारा जो तिर जाये वह ।

संयत : जो सम्यक् प्रकार से यम-नियमों आदि की धारणा
करके तत्त्व प्रकाशित करता है वह ।

अणगार : जिसको घर नहीं है वह ।

घर अर्थात् छः काय का कूट ।

संसार का मूल आरम्भ है । आरम्भ का अन्त
करने वाले का नाम अणगार है ।

मुनि : मौन रहे वह मुनि । अथवा जगत् - तत्त्वों का
मनन करता है वह मुनि है ।

प्रत्येक शब्द में कैसे अर्थ हैं ?

तत्त्वत्रयी में गुरु मध्य में है ।

पूज्य कलापूर्णसूरिजी मध्य में हैं, महत्त्वपूर्ण मध्य में बैठते
हैं ।

तीन लोकों में महत्त्वपूर्ण मृत्युलोक मध्य में है ।

मन-वचन-काया में महत्त्वपूर्ण वचन मध्य में है, जिससे
परोपकार हो सकता है ।

गुरु नहीं हो तो शासन नहीं चलेगा ।

एक लाख पूर्व के दीक्षा पर्याय में एक हजार एवं ८९ पक्ष
न्यून शासन आदिनाथ भगवान ने चलाया, परन्तु शेष आधे चौथे
आरे तक शासन किसके कारण चला ? नवे एवं दसवे तीर्थकरों
के मध्य गुरु नहीं थे, अतः शासन विच्छिन्न हुआ ।

* इलाची-पुत्र नटनी के पीछे दीवाना था, परन्तु गुरु के
दर्शन करने से केवल ज्ञान पा गया । गुरु के दर्शन में कितनी
शक्ति है ?

सुना है कि वर्तमान काल में पूज्य भुवनभानुसूरिजी के
आचार्यश्री जगच्चन्द्रसूरिजी के संसारी ज्येष्ठ भ्राता पूर्व जन्म में मुर्गे
थे । उसे कसाई काट रहा था । कोई बचाने वाला नहीं था ।

है । दर्शन से दृष्टि धन्य हो गई है ।

अभी पू. आचार्यश्री हेमचन्द्रसागरसूरिजी ने मुझे कहा : 'खड़े हो जाओ, और वह दृश्य देखो तो सही ।'

भगवानश्री कृष्ण का रथ वृन्दावन में आया और गोपियों आदि दौड़ी आई । रथ में से भगवान नहीं उतरे । केवल सारथी उतरा तो भी सब धन्य हो गये ।

प्रभु ! चाहे आप नहीं आये । भगवान के दर्शन करके आये भक्त के दर्शन से भी हम धन्य हुए हैं ।

हम भी पूज्यश्री को यही कहना चाहते हैं ।

इतनी बड़ी सभा में बोलने की इच्छा बहुत होती है, परन्तु उक्त लालच को रोक कर रखता हूं ।

पूज्य गुरु भगवंतो को मुझे एक ही बात करनी है - हे गुरु भगवन्तो ! हम गुरु की सेवा करने में कमजोर सिद्ध न हों या विलम्ब न हो जायें, ऐसे आशीर्वाद दें ।

प्रकाश दाढ़ी :

आगामी रविवार को पूज्यश्री गिरि-विहार जायेंगे ।

गिरि-विहार में भोजन के लिए तीन में से केवल एक ही रूपया निश्चित होगा । घी-दूध भी डेरी के नहीं, परन्तु शुद्ध दिये जायेंगे ।

ॐ ॐ ॐ

इन्द्रियों के सुख की तो कई बार अनुभूति हुई है, परन्तु इन्द्रियातीत सुख का कदापि आस्वादन नहीं हुआ ।

- साध्वी महाप्रज्ञाश्री

ॐ ॐ ॐ

प्रभु के प्रति भक्ति की मस्ति पुस्तक के प्रत्येक शब्द में उतरी है ।

- साध्वी अक्षयरत्नाश्री



पदवी प्रसंग, सुस्त, वि.सं. २०५५

१३-८-२०००, रविवार
सावन शुक्ला द्वितीय-१३

* काल की अपेक्षा से भाव तीर्थंकर सबसे कम समय तक उपकार करते हैं, परन्तु यह उतना उत्कृष्ट होता है कि उनके जाने के पश्चात् भी उस उपकार की धारा चलती रहती है ।

थोड़ा समय होने पर भी यह महत्त्वपूर्ण है । यदि यह नहीं हो तो नाम, स्थापना भी कहां कार्य करने वाले थे ? नाम किसका ? स्थापना किसकी ? सबका मूल भाव तीर्थंकर है ।

* साधु ही नहीं, शासन में साध्वी, श्रावक, श्राविका भी उपकार करते रहते हैं ।

साध्वीजी के द्वारा प्रतिबोधित भी मोक्ष में जाते हैं ।

श्रावक-श्राविका से भी प्रतिबोध होता है ।

श्रावक सुबुद्धि मन्त्री से प्रतिबोधित वह राजा जैन धर्मी बना था । देखें ज्ञाता धर्मकथा सूत्र ।

* तापी अथवा नर्मदा नदियों के पुल पर मैं चलता था तब विचार आता था कि ओह ! इतना छोटा पुल नहीं होता तो ? या नाव न होती तो ? छोटा पुल या छोटी नाव कितना बड़ा उपकार करते हैं ?

नदी चाहे भयंकर हो,
 पुल पर चलने वाले को भय नहीं है ।
 मजबूत नाव पर बैठने वाले को भय नहीं है ।
 संसार चाहे भयंकर हो,
 परन्तु उसके शासन में बैठने वाले को भय नहीं है ।
 भगवान स्वामी हैं, गुरु नाविक हैं, हम बैठने वाले हैं । भगवान
 कहीं भी गये ही नहीं हैं । केवल भौतिक देह ही अदृश्य हुई
 है । शक्ति के रूप में तो, भगवान यहीं हैं ।

(गाय के आगमन से आवाज हुई)

क्या गाय के जितना अनुशासन भी हममें है ?

रूपर में स्थंडिल भूमि से मैं लौट रहा था । बाजार में भारी
 भीड़ थी ।

एक महिला छोटी बालिका को लेकर जा रही थी । पीछे
 से बड़ा बैल एवं गाय दौड़ते हुए आ रहे थे, परन्तु बालिका को
 देखते ही वे रुक गये ।

पाटन में गाय दौड़ रही थी । बीच में बालिका आ गई तो
 उस पर पैर न रखकर वह कूद गई ।

इस प्रकार क्या हम देख कर चलते हैं ?

आप कहेंगे : भुज में आपको गाय ने धक्का क्यों लगाया ?

एक स्पष्टीकरण करने दें । गाय ने धक्का नहीं दिया । कहीं
 स्थान नहीं मिलने से वह मात्र वहां से निकली थी । उसने मेरा
 स्पर्श नहीं किया, परन्तु उसके निमित्त से धक्का लगने के कारण मैं
 गिर पड़ा । गाय का मुझे धक्का लगाने का कोई इरादा नहीं था ।

* पुल हो परन्तु उस पर नहीं चले तो नदी को पार नहीं
 कर सकेंगे । प्रभु का शासन विद्यमान होते हुए भी यदि उसका
 आलम्बन नहीं लें तो संसार पार नहीं कर सकते । भूतकाल में
 अनेक बार शासन मिला होगा, परन्तु हम उसकी शरण में गये
 नहीं होंगे, इसीलिए भटकते हैं न ?

* जैन दर्शन केवल मानसिक ध्यान को ही नहीं मानता,
 वाचिक-कायिक ध्यान भी मानता है और वह प्रवृत्ति एवं निवृत्ति
 रूप भी होता है ।

इस मन को सीधा शून्य नहीं बनाना है । निर्विकल्प की इस समय की बातें खतरनाक हैं । सर्व प्रथम अशुभ विचारों को रोके ।

मन तो अत्यन्त सुन्दर साधन है । उसे शून्य नहीं बना कर, उसका सुन्दर उपयोग करना है । शून्य मन से जिन पापों का क्षय होता है, उसकी अपेक्षा शुभ विचारों से पूर्ण बनें, ताकि अधिक पापों का क्षय होगा ।

प्रारम्भ में इसी प्रकार से साधना करनी है । हां, अगली भूमिका मिलने पर मन स्वयं ही हट जायेगा, हमें हटाना नहीं पड़ेगा । ऊपर जाने पर सीढ़ियां नीचे रह ही जाती हैं न ? सीढ़ियों को पूर्णतः छोड़ना नहीं है, उनकी निन्दा भी नहीं करनी है । ध्यान दशा में से पुनः नीचे तो आना ही पड़ेगा, तब मन की आवश्यकता होगी ही न ?

* मार्गानुसारी के गुणों के बिना श्रावक नहीं बना जा सकता ।

श्रावक के गुणों के बिना साधु नहीं बना जाता ।

साधु के गुणों के बिना क्षपकश्रेणी नहीं मंडती ।

यहां तो कमशः ही चढ़ा जाता है । बीच में से प्रवेश नहीं हो सकता ।

पूज्य हेमचन्द्रसागरसूरिजी : क्या बीच में घुसा नहीं जाता ?

पूज्यश्री : बीच में घुस गये हैं, इसीलिए यह कष्ट उत्पन्न हो गया है ।

व्यवहार से यह सब मिल गया है । निश्चय से कहां हैं ? यह हम जानते हैं या भगवान जानते हैं ।

* साधना में सर्व प्रथम योग-बीज चाहिये ।

योग-बीज है - प्रभु के प्रति प्रेम ।

‘जिनेषु कुशलं चित्तं’

प्रभु के प्रति जिसे प्रेम हो, उसे गुरु एवं शास्त्रों के प्रति प्रेम होता ही है । ऐसा व्यक्ति गुरु से वाचना श्रवण करता है, आगम लिखता है - लिखवाता है और उनका प्रचार करता है । ये समस्त लक्षण उसमें दृष्टिगोचर होने लगते हैं ।

एक मात्र प्रभु-प्रेम का बीज पड़ गया तो धर्म का घटदार बरगद होने में विलम्ब नहीं लगेगा ।

* प्रथम अपूर्वकरण सम्यक्त्व की प्राप्ति के समय होता है ।

सामर्थ्य योग का वर्णन करते समय सम्यक्त्व की बात इसलिए की जाती है कि जिससे सिंहावलोकन हो सकता है और हमारी साधना का उचित निरीक्षण हो सकता है ।

यह निरीक्षण भी अन्य का नहीं, परन्तु अपना ही करें, अन्यथा तो पुनः गड़बड़ी हो जायेगी ।

चाकू आपके हाथ में है, अब अन्य को देना है तो कैसे दोगे ?

चाकू का हाथा सामने वाले के हाथ में आये उस तरह ही दिया जाता है न ?

अपने पास रखने की बात अलग है । अन्य को देते समय दृष्टिकोण अलग है ।

यही बात यहां लागू करनी है ।

यों तो मैत्री-प्रमोद आदि स्वयं पर क्या कम है ?

सर्वाधिक प्रमोद अपने गुणों पर है ही ।

सर्वाधिक करुणा अपने दुःखों पर है ही ।

सर्वाधिक मध्यस्थता अपने दुर्गुणों पर है ही ।

परन्तु अब यह दृष्टिकोण बदलना है ।

अन्य पर करना हो वह स्वयं पर कर रहे हैं और स्वयं पर करना हो वह अन्य पर कर रहे हैं । हम पांव में पहनने के जूते सिर पर और सिर की टोपी पांवों में डाल रहे हैं । यही अपनी करुणता है ।

* सामर्थ्य योग अवाच्य है, यह अनुभव-गम्य है । यदि वह शब्दगम्य हो तो अनुभवगम्य नहीं कहा जायेगा । अनुभव गम्यता ही उसे कहा जाता है जिसे वर्णन से प्राप्त नहीं किया जा सके ।

इसीलिए इसका वर्णन यहां नहीं किया । सम्भव हो उतना कह कर शेष के लिए 'अवाच्य' कह दिया ।

* 'ध्यान-विचार' में दो शब्द विशेष आते हैं :

(१) करण, (२) भवन

करण में शिक्षण से प्राप्त होता है ।

भवन में सहजता से प्राप्त होता है ।

पूज्य पं. कल्पतरुविजयजी म. : गुरु-तत्त्व के प्रति बहुमान हो, परन्तु अपने व्यक्तिगत गुरु के प्रति बहुमान न हो, ऐसा नहीं चलेगा ?

पूज्यश्री : जिसे समस्त गुरुओं पर प्रेम हो गया उसे स्व-गुरु के प्रति प्रेम न हो ऐसा होता ही नहीं है । एक तीर्थंकर की आशातना सबकी आशातना है । एक गुरु की आशातना समस्त गुरुओं की आशातना है ।

सन्निपात का रोगी चाहे, जैसे बोले तो भी वैद्य उस पर क्रोधित नहीं होता । उस प्रकार ऐसे उद्धत पर गुरु क्रोधित नहीं होते ।

बड़ी दीक्षा से पूर्व पूज्य आचार्य भगवन् मिले ।

चार प्रकरण आदि हो चुके । मैंने पूछा - अब क्या करूं ?

पू. आचार्य भगवन्त : सिन्दूर प्रकर करो ।

तुरन्त मैंने 'तहति' कहा ।

भगवती में शतक पूर्ण होने पर अन्त में आता है - 'सेवं भंते, सेवं भंते ।' प्रभु आप कहते हैं वैसा ही है ।

इसका नाम स्वीकार है ।

ऐसी श्रद्धा आने पर आस्तिकता आती है । आस्तिकता आने पर स्व की तरह अन्य का जीवत्व भी स्वीकार किया जाता है और उसका दुःख स्वयं को लगता है । पांव में कांट लगे तो सिर को क्या ? हमें क्या ? यह मान कर हम उसकी उपेक्षा करते नहीं हैं, उस प्रकार दूसरों की पीड़ा की उपेक्षा नहीं हो सकती, क्योंकि सबके साथ हम जुड़े हुए हैं ।

पर दया : अप्य दया

पर पीड़ा : अप्य पीड़ा

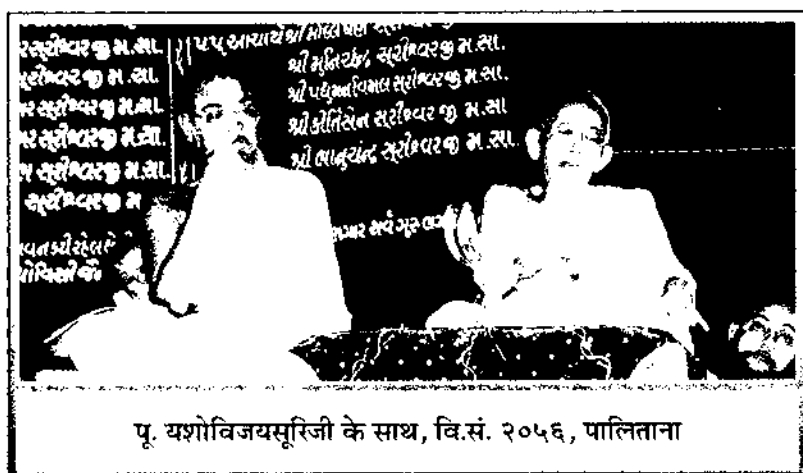
पर हिंसा : अप्य हिंसा

जीव वहो : अप्य वहो

ये आगम-सूत्र यही बात कहते हैं ।

आप दूसरों को कठोर बोलेंगे तो यह आपको ही फलेगा ।

एक सज्जन कल आये थे । कमर से नीचे का भाग शून्य था । भयंकर वेदना थी । बोले : 'मैंने किसी को पीड़ा नहीं दी । ऐसा क्यों ?'



१५-८-२०००, मंगलवार

सावन शुक्ला-१५

* भूखे को भोजन, प्यासे को पानी, वस्त्रहीन को वस्त्र और आवास-हीन को आवास देने वाला उपकारी गिना जाता है, तो धर्म प्रदान करने वाले भगवान कितने उपकारी गिने जायेंगे ? उनके उपकार की कोई सीमा नहीं है ।

यदि इस धर्म का पालन करें तो यह अव्याबाध सुख की गारण्टी देता है । इस धर्म के प्रणेता भगवान का उपकार कितना है ?

‘अपुव्वो कप्पपायवो’ यह धर्म अपूर्व कल्पवृक्ष, अपूर्व चिन्तामणि है । दुर्गति में जाने वाले को बचाकर सदगति में स्थापित करने वाले ऐसे धर्म के उद्गाता भगवान का उपकार कितना है ? उपकारों का यह ऋण कैसे चुकाया जा सकेगा ?

जो कुछ करें वह भगवान के चरणों में समर्पित करें । मुनीम सेठ को सौंपे, सैनिक राजा को सौंपे, गुरु शिष्य को सौंपे; उस प्रकार भक्त सर्वस्व भगवान को सौंपे । तप, जप, स्वाध्याय आदि सब भगवान के चरणों में रखना है ।

‘गृहातिगृह्यगोप्ता त्वं गृहाणाऽस्मत्कृतं जपम् ।’

- शक्रस्तव

‘कोई पति-रंजन अति घणुं तप करे रे’ उस प्रकार तप नहीं करना है, ईर्ष्या अथवा प्रतियोगी के रूप में भी तप नहीं करना है। युवानी के जोश में हो जाये, परन्तु उसके बाद परिणाम अच्छा नहीं आता।

यह बात इसलिए याद आई कि आज एक साध्वीजी पूछने के लिए आये कि ५१ हो चुके है, आगे करूं ?

देह क्षीण एवं अशक्त देख कर आशा देने का मन नहीं हुआ। हमें अनुभव है कि एक साध्वीजी ६८ उपवास करने गये तो आज भी उनका स्वास्थ्य खराब है। इस प्रकार तप नहीं किया जाता।

‘तदेव हि तपः कार्यं, दुर्ध्यानं यत्र नो भवेत्।

येन योगा न हीयन्ते, क्षीयन्ते नेन्द्रियाणि च ॥’

- ज्ञानसार

यह बात अच्छी तरह समझ लें।

शरीर अश्व है। इसे बाह्य तप का प्रशिक्षण देना है, परन्तु कुचलना नहीं है। शक्ति से अधिक करके कुचलना नहीं है।

इसी लिए प्रत्येक स्थान पर ‘यथाशक्ति’ शब्द का प्रयोग किया जाता है।

यहां भी लिखा है - ‘यथाशक्त्यप्रमादिनः।’

* ‘नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।

वीरियं उवओगो य, एअं जीवस्स लक्खणं ॥’

ये जीव के लक्षण हैं न ? या इस पाट के लक्षण हैं ? गाथा केवल रटने-कण्ठस्थ करने के लिए हैं कि जीवन में उतारने के लिए हैं ?

देखो उपा. महाराज के शब्द :

‘जिहां लगे आतमद्रव्यनुं, लक्षण नवि जाण्युं;

तिहां लगे गुणठाणुं भलूं, किम आवे ताण्युं ?’

उपालम्भ देने का मेरा स्वभाव नहीं है। यह तो महापुरुषों ने जो लिखा है वह कहता हूं।

यह सब आपको इसलिए पढ़ाया है।

सर्व प्रथम आप अपना स्वरूप तो पहचानें। गृहस्थों को

तो तीव्रता से सिखाते हैं, परन्तु क्या अपने जीवन में कभी दृष्टि करते हैं ?

‘परोपदेशे पाण्डित्यं’ अत्यन्त ही शीघ्रता करते हैं । हमारे खोखले शब्दों का कितना प्रभाव होगा ?

* ‘अध्यात्म-मत-परीक्षा’, ‘अध्यात्मोपनिषद्’ आदि अनेक ग्रन्थों की श्रेणी उपा. महाराज ने खड़ी कर दी । इससे प्रतीत होता है कि उन्होंने ने अपनी तरह एक मिनिट भी नष्ट नहीं की होगी ।

ग्रन्थों की रचना क्यों की ? अहंकार के पोषण के लिए नहीं, परन्तु परोपकार की भावना से, करुणा-भावना से रचना की गई है ।

कहीं लिखा है - स्वस्मृत्यर्थम् - मेरी स्मृति के लिए ।

ऐसे ग्रन्थ किसी योग्य व्यक्ति के हाथ में आ जायें तो काम हो जाये । उनका ‘ज्ञानसार’ ग्रन्थ देवचन्द्रजी के हाथ में आया और वे बोल उठे - ‘उपाध्यायजी तो मेरे लिए भगवान हैं ।’ उन्हें वह ग्रन्थ अद्भुत प्रतीत हुआ और उन्होंने ने उस पर ‘ज्ञान मंजरी’ टीका भी लिखी ।

* हमारे सभी अनुष्ठानों को संप्राण बनाने वाली भगवान की भक्ति है, जीवों की करुणा है ।

चैत्यवन्दन हम करते हैं, परन्तु चाहिये वैसा उल्लास नहीं है । वह प्राप्त करने के लिए हम यह ग्रन्थ पढ़ रहे हैं ।

तनिक ज्ञान बढ़ते ही हम क्रिया में शिथिल हो जाते हैं । प्रतिक्रमण, पंडिलेहण आदि करते हैं, परन्तु कभी-कभी बेगार जैसा करते हैं । मैं भी उसमें शामिल हूँ ।

पूज्य पं. कल्पतरुविजयजी म. :

‘ज्ञानी श्वासोच्छ्वासमां करे कर्मनो छेह;

पूर्व कोड़ी वरसा लगे, अज्ञानी करे तेह ।’

यह बात भी आती है ।

पूज्यश्री : यह सत्य है परन्तु कौन सा ज्ञानी ? समितियों से समित तथा गुप्तियों से गुप्त मुनि । वह कदापि क्रिया की उपेक्षा नहीं करेगा ।

ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप इन चारों के जितने भेद हैं उतने ही

(३६) भेद वीर्याचार के हैं । इसका अर्थ यह हुआ कि वीर्योल्लास के बिना एक भी आचार की आराधना नहीं हो सकती । पांचो आचारो के कुल ७२ भेद होंगे ।

वीर्योल्लासपूर्वक किया करने से ही ध्यान की अग्नि प्रकट होती है और उसके बाद ही 'ज्ञानी श्वासोच्छ्वासमां' यह बात लागू होती है ।

न्याय-काव्य आदि ग्रन्थ पढ़ने से ही वीर्योल्लास बढ़ जायेगा, यह भ्रम है ।

यहां तक आने के पश्चात् भी प्रमाद ? तो फिर घर क्या बुरा था ? क्यों प्रमाद नहीं हटते हैं ? यह अपनी वेदना व्यक्त करता हूं ।

मरुदेवी - भरत की तरह बैठे-बैठे ही केवल ज्ञान प्राप्त हो जायेगा, इस भ्रम में तो नहीं हैं न ?

मरुदेवी माता में सामर्थ्य योग आदि समस्त योग आ गये, परन्तु आये कहां से ? भगवान के पास से आये ।

आज पाठ मिला - धनेश्वर सूरि-कृत 'शत्रुंजय माहात्म्य' में लिखा है कि मरुदेवी ने जब समाचार सुना कि ऋषभदेव को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ है । यह सुनते ही शोक के आंसू हर्षाश्रुओं में बदल गये । पुत्र के वियोग में रो-रोकर आंखो की ज्योति चली गई थी ।

उन्हें पता था कि मेरा पुत्र भगवान बनने वाला है । आपको मालूम हो और उन्हें मालूम नहीं होगा ? सर्व प्रथम चौदह स्वप्न आने के कारण उन्हें ही मालूम था ।

ऐसे भगवान तुल्य पुत्र के प्रति प्रेम क्या भगवान का प्रेम नहीं कहलाता ? वर्तमान माताओं के समान केवल पुत्र के लिए ही पुत्र नहीं था । यशोदा इत्यादि अजैन माताओं का प्रेम भी भगवान का प्रेम गिना जाता है ।

माता-पिता का प्रेम सर्वथा अप्रशस्त नहीं गिना जाता । भक्ति-राग है । स्नेह-राग नहीं कहलायेगा ।

पू. आचार्य हेमचन्द्रसागरसूरिजी : क्या स्नेह - राग नहीं कहलाता ?

पूज्यश्री : नहीं, स्नेह-राग नहीं कहलाता ।

पुत्र को स्नेह-राग से देखने के लिए, तीर्थंकर माता की

कह कर बैठ जाते हैं । वीर्योल्लास के बिना कर्मों का क्षय नहीं होता ।

भरुदेवी माता ८३ लाख पूर्व गृहस्थ-जीवन में पुत्र भगवान के साथ रहे । इतने समय तक जिसने पुत्र का सम्पर्क किया हो वह माता पुत्र के ही विरह में रोये, क्या यह सम्भव है ? नहीं, माता पुत्र में भगवान का रूप देखती थी ।

माता का प्रेम तो अद्भुत है । माता की ओर के इस प्रेम के कारण ही प्रवचन माता, धर्म माता आदि शब्द शास्त्रों में प्रयुक्त हुए हैं ।

पू. गणि मुक्तिचन्द्रविजयजी : क्या नाभिराजा को कुछ नहीं हुआ ?

पूज्यश्री : मां तो मां है । माता के जितना प्रेम (वात्सल्य) पिता में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर नहीं होता । इसीलिए प्रवचन माता इत्यादि शब्दों का प्रयोग हुआ है, प्रवचन पिता आदि शब्दों का नहीं ।

उस समय नाभिराजा जीवित थे, वैसा कोई उल्लेख जाना नहीं है । सम्भव है - उस समय वह विद्यमान नहीं भी हो ।

जितना शास्त्रों में उपलब्ध है, उतना तो पकड़ें ।

क्या भरुदेवी इन्द्रों के द्वारा हो चुके अभिषेक नहीं जानते थे ? इन्द्र के द्वारा राज्याभिषेक, विवाह, दीक्षा आदि क्या नहीं जानते थे ? उन्हें ज्ञात ही था कि मेरा पुत्र भगवान है ।

गौतम स्वामी को केवल ज्ञान से गुरु-भक्ति विशेष प्रिय लगी थी । कदाचित् पांचवे आरे के जीवों को गुरु-भक्ति समझाने के लिए ही उन्होंने ने ऐसा किया हो । कदाचित् नहीं किया हो तो भी हमारे लिए वह आदर्श रूप है ही ।

‘मुक्ति थी अधिक तुज भक्ति मुज मन वसी’

क्या इस पंक्ति का विरोध करोगे ?

जिस प्रकार गौतम स्वामी का भक्ति-राग होने पर भी भगवान का राग भी था ही । मन में पता ही है कि ये भगवान हैं । इसीसे उनका शोक विराग में बदल सका । भगवत्ता याद आई और केवल ज्ञान हो गया ।



विहार में पूज्यश्री

१६-८-२०००, बुधवार
भाद्र. कृष्णा-१

गणधर भगवान द्वारा रचित नामस्तव, शक्रस्तव आदि सूत्र इतने महान हैं कि वे अपने चैत्यवन्दन, देववन्दन में जोड़ दिये गये। कितने अर्थ-गम्भीर युक्त हैं ये सूत्र ?

‘नमस्कार स्वाध्याय’ पुस्तक पढ़ेंगे तो ध्यान आयेगा।

‘ध्यान-विचार’ का विवेचन लिखना था, परन्तु आधार कौन सा लें ? मैं इस विचार में था। मैंने नवकार गिने। ‘नमस्कार स्वाध्याय’ पुस्तक समक्ष रख कर संकल्प किया। जो पृष्ठ खुले वही पढ़ना। खोलते ही ‘ध्यान विचार’ के लिए ही मसाला मिला। एक साथ चार ग्रन्थ मिले। मन नाच उठा। श्री भद्रगुप्तसूरि रचित ‘अरिहाण स्तोत्र’ श्लोक-३० ग्रन्थ में २४ ध्यान-भेदों के नाम आये।

मानो भगवान ने ही कृपा-वृष्टि की। आगमों में से ही ‘ध्यान-विचार’ आया हुआ है, वैसी प्रतीति हुई।

एकाग्र चित्त से साधना करते रहें तो तत्त्व मिलेंगे ही। वैज्ञानिक भी एक ही पदार्थ पर दत्तचित्त होकर कितना अनुसन्धान करते हैं ? योगियों को भी ऐसा ही एकाग्र बनना है।

* अभव्य भी बीजाधान के बिना तो यथाप्रवृत्तिकरण अनन्त

बार कर सकते हैं। अतः अब आप निश्चय कर लें कि मुझे बीजाधान तो कर ही लेना है।

मैं पूछता हूँ कि क्या आपको ये ग्रन्थ पढ़ने-सुनने में आनन्द आता है ? आनन्द कितना और कैसा आता है ? इस पर से आपकी भूमिका निश्चित होती है।

क्षायिक की बात जाने दें। क्षायोपशमिक भाव के गुण तो आ ही गये हैं न ?

* भगवान के प्रेम के अतिरिक्त दूसरा कोई भी योग का मार्ग नहीं है। भगवान के प्रति प्रेम नहीं जगा हो तो समझें कि अभी तक संसार का प्रेम विद्यमान है, अन्य कोई उद्देश्य बैठा है। प्रभु-प्रेम की अनुपस्थिति ही बताती है कि अभी तक अन्य आकांक्षाएँ भीतर विद्यमान हैं। ये सभी अत्यन्त ही खतरनाक भयस्थान हैं।

सभी सामग्री अपने सामने हैं। केवल अपने उद्यम की कमी है, परन्तु हम तो प्रतीक्षा कर रहे हैं कि शीघ्र महाविदेह में जन्म मिल जाये और मोक्ष में चले जाये, परन्तु किस आधार पर महाविदेह मिलेगा ? इसका विचार करते नहीं हैं। वर्तमान में प्राप्त सामग्री का उपयोग नहीं करने वाला व्यक्ति भविष्य में उससे उत्तम सामग्री प्राप्त कर नहीं सकता। वर्तमान में प्राप्त रोटी खाकर जो व्यक्ति जीवन व्यतीत नहीं कर सकता उसे भविष्य में गुलाबजामुन कैसे मिल सकेंगे ? जो व्यक्ति जीवित ही नहीं रहे, वह गुलाबजामुन कैसे प्राप्त कर सकता है ?

* मरुदेवी को जिस प्रकार ऋषभ पर प्रेम था, उस प्रकार त्रिशला को भी वर्धमान पर प्रेम था। उन्होंने ने भी बालक रूप में भगवान का ध्यान किया, यह कहा जा सकता है !

अन्य दर्शनों में पुत्रों के नाम नारायण इत्यादि इसलिए रखते हैं कि उसे भगवान याद आते रहें।

पूज्य हेमचन्द्रसागरसूरिजी : त्रिशलाजी तो देवलोक में गई।

पूज्यश्री : जाती है। तीर्थंकर की माता मोक्ष में या स्वर्ग में जाती है। त्रिशलाजी बाद में मोक्ष में जायेंगी। भगवान का प्रेम ही उन्हें मोक्ष में ले जायेगा।

* कोई चन्दन का विलेपन करे अथवा कोई बांस से छाल उतारे, फिर भी जिसकी समता खण्डित नहीं हो, वह सहज क्षमा है। जब तक ऐसी क्षमा न आये तब तक क्षयोपशम भाव की क्षमा तो रखें।

भगवान के पांस हमने प्रतिज्ञा ली है कि 'रग-द्वेष नहीं करेंगे, सावध का सेवन नहीं करेंगे और किसी के प्रति वैर-विरोध नहीं करेंगे।'।

क्या इस प्रतिज्ञा का पूर्ण रूप से पालन होता है ?

मरणान्त कष्टों के समय भी हमारे पूर्वर्षियों ने समता रखी है।

* चौदहवे गुण स्थानक में मन-वचन-काया रूप योगों का भी त्याग होने पर योग संन्यास होता है।

पू. हेमचन्द्रसागरसूरिजी : धर्म-संन्यास में किसका त्याग होता है ?

पूज्यश्री : क्षयोपशम भाव के क्षमा आदि गुण छोड़ने होते हैं। क्षायिक भाव के क्षमा आदि गुण प्राप्त करने होते हैं।

नई सीढ़ी पर चढ़ना हो तो पिछली सीढ़ी छोड़नी ही पड़ती है। पुरानी सीढ़ी को पकड़ी रख कर आप नई सीढ़ी प्राप्त नहीं कर सकते।

* प्रभु की शान्त मुद्रा देखते ही मरुदेवी माता के भीतर समस्त भूमिकाएँ तीव्रता से आती गई और अन्त में निर्विकल्प अवस्था प्राप्त करके उन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हो गया।

* प्रभु योग - क्षेमकर कहलाते हैं।

आगे आयेगा - भगवान धर्म का पालन करते हैं, धर्म का प्रवर्तन कराते हैं, स्थिर करते हैं।

भगवान ऐसे हैं। वे पहले धर्म के साथ योग कराते हैं, फिर स्थिर परिचित कराते हैं और उसके बाद विनियोग कराते हैं।

ये समस्त भेद-प्रभेद अभी बताने की आवश्यकता क्यों ? अभी तो कोई सिद्ध नहीं करने हैं, परन्तु इसलिए जानने हैं कि यह सब जानकर इच्छा तो प्रकट हो। इच्छा प्रकट हो जाये तो भी काम हो जाये।

* तीन योग :

नमुत्थुणं से इच्छायोग।

अनुभव दशा का वर्णन सुनकर डरें नहीं ।

अन्य कुछ न कर सको तो प्रभु का प्रेम तो कर सकते हैं न ? परन्तु उसके लिए अन्य प्रेम छोड़ना पड़ता है । एक पत्नी भी 'बालक' किसका ? ऐसा पूछेंगे तो उसके पिता का नाम देगी, क्योंकि सम्पूर्ण प्रेम वहां समर्पित कर दिया है । वह स्वयं को कदापि आगे नहीं करेगी ।

प्रभु के प्रति समर्पित व्यक्ति भी कदापि अपना नाम आगे नहीं करता ।

गौतम स्वामी कितने समर्पित होंगे ? भगवान के कहने से वे श्रावक को मिच्छामि दुक्कडं देने गये थे ।

हमने समर्पण भाव खो दिया । इस लिए न तो भगवान की शक्ति प्राप्त कर सकते हैं, न गुरु की ।

* जो शून्य बन गये वे ही पूर्ण बन गये ।

* ये भगवान ही हमें सब देते हैं, अन्यथा इस समय हम पर कौन रहा ?

बादल धिर आये हैं, अतः शीघ्र समाप्त करता हूं ।

ॐ ॐ ॐ

पूज्यश्री तो तीर्थकर-तुल्य हैं । उनके मुंह से निकला हुआ शब्द यदि पुण्यानुबंधी पुण्य बांधा हो तो ही सुनने को मिलता है ।

मैं तो नित्य वांकी में वाचना में से आकर कहती - 'जिनालय में त्रिशलामाता के दुलारे वर्धमान स्वामी हैं, जबकि त्रिशला भवन में खमा देवी के दुलारे तीर्थकर-तुल्य पूज्यश्री हैं ।

तब कदाचित् सभी शब्द नहीं भी सुने हों, परन्तु इस पुस्तक में रहे शब्द पढ़कर ऐसा ही होता है कि मानो पढ़ते ही रहें ।

पुस्तक पढ़े बिना चैन भी नहीं पड़ता ।

- साध्वी मुक्तिप्रियाश्री



मद्रास पदवी प्रसंग, वि.सं. २०५२, माघ शु. १३

१७-८-२०००, गुरुवार

भाद्र. कृष्णा-२

* २५०० वर्ष व्यतीत होने पर भी संघ आज भी जयवंत है । संघ गुण-रत्नों की खान है ।

तीर्थंकर 'नमो तित्थस्स' कह कर जिसे नमस्कार करते हैं, वह संघ क्या अन्य व्यक्तियों के लिए पूजनीय नहीं हैं ? इसकी गुण-गरिमा का वर्णन अन्य कौन कर सकता है ? चौदह पूर्वघर एवं केवली भी भगवान का वर्णन नहीं कर सकें, उस संघ की क्या बात ? क्योंकि संघ तो तीर्थंकरों के लिए भी पूजनीय है ।

पू. धुरन्धरविजयजी म. : 'नमो तित्थस्स' इतना पूजनीय होने पर भी नवकार में इसका स्थान क्यों नहीं है ?

पूज्यश्री : संघ में नवकार है । नवकार में संघ है । पंच परमेष्ठी कहां से उत्पन्न होते हैं ? इसी संघ में से ही तो उत्पन्न होते हैं न ?

पांचों पद तीर्थ रूप भी हैं ।

'सिन्दूर-प्रकर में' संघ का महत्त्व बतानेवाला श्लोक देख लें ।

अरिहन्त संघ को इसलिए नमस्कार करते हैं कि मुझे तीर्थंकर बनाने वाला यह संघ है । हमें दीक्षा प्रदान करने वाले गुरु हैं,

परन्तु उन गुरु को दीक्षा प्रदान करने वाले उनके गुरु हैं । इस प्रकार आगे चलने पर भगवान आर्येंगे ।

आकाश में तारे कितने हैं ? रोहणाचल में रत्न कितने हैं ? उस प्रकार संघ में गुण कितने हैं ?

‘इत्यालोच्य विरच्यतां भगवतः संघस्य पूजाविधिः ।’

- सिन्दूर प्रकर

हमें शक्ति मिल रही है वह संघ का प्रभाव है ।

नवकार में संघ को नमस्कार कैसे आया ?

तीर्थकर को नमन करने से तीर्थ को नमस्कार आ ही गया । शेष परमेष्ठी स्वयं तीर्थरूप हैं । नवकार में संघ को (तीर्थ को) नमस्कार आ ही गया है । अतः अलग नमस्कार की आवश्यकता नहीं है ।

तीर्थकर स्वयं तीर्थकर भी हैं और तीर्थ भी हैं ।

तीर्थकर स्वयं मार्गदाता भी हैं और मार्ग भी हैं ।

देखें भक्तामर -

‘त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं ।

नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र पन्थाः ॥’

मरुदेवी माता को तीर्थकर के आलम्बन से ही केवलज्ञान प्राप्त हुआ है न ? मरुदेवी माता ने तीर्थकर को देखे और प्रभु का ध्यान लग गया ।

इसीलिए अन्य लिङ्ग अथवा अतीर्थ सिद्ध की बात आये वहां भगवान या भगवान का नाम आलम्बन के रूप में समझ लें । उपादान स्वयं ही पुष्ट निमित्त के बिना कार्यकारी बन नहीं सकता । पू. देवचन्द्रजी की बात (उपादान आतम सही रे, पुष्टालंबन देव) अच्छी तरह याद रखें ।

उपादान एवं उपादान कारणता भिन्न वस्तु हैं । हम उपादान हैं, परन्तु उपादान कारणता अभी तक प्रकट नहीं हुई है । उसे तो प्रभु ही प्रकट कर सकते हैं ।

‘उपादान कारणपणे रे, प्रगट करे प्रभु सेव’

- पूज्य देवचन्द्रजी

एक भी प्रतिमा लकड़े अथवा पत्थर में से अपने आप बन

गई हो तो बतायें । एक भी जीव अपने आप मोक्ष में गया हो तो बतायें । और, एक भी गुण अपने आप प्राप्त किया हो तो बतायें ।

पू. धुरन्धरविजयजी म. : निसर्ग समकित कैसे ?

पूज्यश्री : निसर्ग को ध्यान-योग में भवनयोग कहा है ।

करण में उपदेश होता है । भवन में प्रत्यक्ष उसकी आवश्यकता नहीं होती । अधिकतर भवन में भी पूर्व जन्म के गुरु तो कारण होते ही हैं । मरुदेवी माता को चाहे पूर्व जन्म के गुरु नहीं थे, परन्तु उस जन्म में तो भगवान का आलम्बन मिला ही था ।

संघ का उपकार अत्यन्त अधिक है । हमें चतुर्विध संघ के सदस्य नहीं मिले होते तो यह कक्षा सम्भव ही नहीं हो सकती थी । धार्मिक माता आदि नहीं मिली होती तो अपनी दशा कैसी होती ? कतिपय आत्मा तो गर्भ में होते हैं और माता उपधान करती है । कितने-कितने विधि-विधान के संस्कार गर्भावास से ही प्राप्त होते हैं । उसके बाद स्तन-पान आदि के द्वारा, परिवार-शिक्षक आदि के द्वारा भी संस्कार प्राप्त होते हैं । इसीलिए कृतज्ञता के स्वामी तीर्थंकर संघ को नमन करते हैं । उनकी योग्यता अन्य जीवों की अपेक्षा सर्वोत्कृष्ट है ।

भगवान की अनुपस्थिति में इक्कीस हजार वर्षों तक संघ ही शासन चलाता है । अतः नवकार में पंच परमेष्ठियों को नमस्कार संघ को ही नमस्कार है ।

आप और आपकी पेढ़ी (दुकान) एक ही गिनी जाती है । दुकान का लाभ आपको ही मिलता है, उस प्रकार तीर्थंकर एवं तीर्थ एक ही गिने जाते हैं । तीर्थ अर्थात् भगवान की दुकान । यह दुकान आज भी चल रही है । जिस प्रकार आपकी अनुपस्थिति में मुंबई में इस समय भी दुकान चल रही है ।

* ढाई द्वीप की सुई के अग्र भाग जितनी भी ऐसी जगह नहीं है, जहां से अनन्त सिद्ध नहीं हुए हों । अनन्त-अनन्त काल व्यतीत हो गया अतः अपहरण आदि के द्वारा समुद्र, नदी आदि स्थानों से भी अनन्त सिद्ध हो चुके हैं ।

पू. धुरन्धरविजयजी म. : मेरु पर्वत की चोटी खाली न रह जाये ? मेरु शिखर तो उर्ध्व लोक गिना जाता है न ?

पूज्यश्री : सब भरा हुआ है । कहीं भी स्थान रिक्त नहीं है । कुबड़ी विजय (अधोलोक) में से सिद्ध हो सकता है तो उर्ध्वलोक में से क्यों नहीं हो सकता ?

पू. धुरन्धरविजयजी म. : क्या गृहस्थ संघ में आते हैं ?

पूज्यश्री : श्रावक-श्राविका संघ में आते हैं । उनका जन्म चाहे अजैन कुलों में हुआ हो । श्रावक-श्राविका बनने के पश्चात् ही साधु-साध्वी बन सकते हैं ।

हम गुण प्राप्त न करें तो हम भी संघ से बाहर गिने जायेंगे, यह भी याद रखें । यह निश्चय-नय की बात है, परन्तु व्यवहार तो व्यवहार नय से ही चलता है ।

यह संघ कितना उदार है ? आप को कितना देता है ? सम्पत्ति एवं पुत्र तक भी शासन को समर्पित कर देता है ।

संघ स्वयं पच्चीसवां तीर्थकर है । इसीलिए संघ के दर्शन अर्थात् भगवान् के दर्शन ।

* 'पंचसूत्र' में साधु के सात विशेषण हैं । उन्हें पढ़ोगे तो ध्यान आ जायेगा कि साधु कैसे होते हैं ? साथ ही साथ यह भी ध्यान आयेगा कि हम कैसे हैं ?

ऐसे साधु स्वयं तीर्थ स्वरूप हैं । 'तीर्थभूता हि साधवः ।' संघ गुणयुक्त है अर्थात् साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका गुणयुक्त हैं ।

ऐसे गुणवानों की स्वयं भगवान् प्रशंसा करते हैं ।

'जास पसंसइ भयवं दृढवयसं महावीरो ।'

दुर्योधन को एक भी गुणवान् नहीं दिखाई दिया । युधिष्ठिर को एक भी दुर्गुणी दृष्टिगोचर नहीं हुआ । हमारे पास यदि युधिष्ठिर की आंखे होंगी तो संघ में गुणवानों के दर्शन होंगे ।

संघ गुणवान् है । इसका अर्थ यह हुआ कि इसमें से असंख्य तीर्थकर होने वाले हैं । आज भी तीर्थकर नाम-कर्म निकाचित किये हुए असंख्य देव हैं, महाविदेह में भी हैं ।

पू. धुरन्धरविजयजी म. : क्या निकाचित हो सकते हैं ?

पूज्यश्री : निकाचित हुए हैं या नहीं, यह तो ज्ञानी ही जान सकते हैं, परन्तु आपके गुरुदेव पूज्य पं. भद्रकरविजयजी गणि

के लिए ऐसी कल्पना हो सकती है कि वे निश्चित रूप से किसी भगवान की आत्मा होंगे ।

गुणवान् को पहचानने के लिए गुणवान और ज्ञानी को पहचानने के लिए ज्ञानी बनना पड़ता है । उन्हें पहचानने वाले कितने ?

आनन्दधनजी को पहचानने वाले कितने थे ?

पूज्य उपा. यशोविजयजी स्वयं भी आनन्दधनजी को पहले कहां पहचानते थे ?

* गुरु की भक्ति में भी संघ की ही भक्ति है ।

यह संघ ४८ गुणों से युक्त है - २७ साधु के तथा २१ श्रावक के, कुल ४८ गुण हुए ।

आकाश में तारों की गिनती नहीं हो सकती, उस प्रकार संघ के गुणों की गिनती नहीं होती । कलिकाल में, पतन के काल में, ऐसा सब नहीं होता, यह न मानें । अब भी आचार्य, युग प्रधान आदि यहीं से ही होंगे ।

हमने ऐसे भाविक अपनी आंखों से देखे हैं जो माता-पिता की तरह साधु-साध्वीजी की भक्ति करते हैं । एक दिन गोचरी लेने के लिए यदि नहीं आयें तो अप्रसन्न हो जाते हैं - 'महाराज ! कोई व्होरने नहीं आया ?'

हम कहते हैं : 'आये थे न ?'

वे कहते हैं : 'आये थे, परन्तु कोई गोचरी ग्रहण नहीं की ।'

हम दक्षिण में दूर तक जाकर आये हैं, परन्तु कहीं भी कोई कष्ट नहीं हुआ । यह संघ ही था न भक्ति करने वाला ?

पूज्य धुरन्धरविजयजी म. : बड़ो का पुण्य बड़ा होता है ।

बड़ो की बात नहीं है, संघ की निष्ठा कितनी है वह देखें ।

यदि संघ के प्रति भक्ति न हो तो करोड़ों रुपये कौन खर्च कर सकता है ? अभी ही लाकड़िया से धनजीभाई ने सिद्धाचल का संघ निकाला था । जिसमें दो करोड़ रूपयों से अधिक खर्च किये और यहां आकर उन्होंने ने इक्कीस लाख रुपये जीवदया में लिखाये ।

मालशीभाई : यहां जीवदया में डेढ़ करोड़ रुपये एकत्रित हुए हैं ।

रूपयों की बात नहीं है, उनकी निष्ठा देखो ।

संघ ऐसी भक्ति करता हो तो अपना कर्तव्य क्या है ?

क्या आपके गुरु महाराज पू.पं. भद्रंकरविजयजी म. याद आये बिना रहते हैं ? वे रात-दिन संघ की चिन्ता करते थे कि मेरा संघ टुकड़ों में विभाजित क्यों हो ? एकता के प्रयत्न में सफलता नहीं मिलती तो भी तनिक भी हताश हुए बिना वे पुण्य बढ़ाने की ही बात करते थे ।

इस संघ की भक्ति वे द्रव्य से करते हैं, हमें भाव से करनी है । इसी लिए शास्त्रों का अध्ययन करना है । अतः चतुर्विध संघ की तरह द्वादशांगी भी तीर्थ है । द्वादशांगी का अध्ययन तीर्थ की ही भक्ति है । आप यदि अपना ज्ञान दूसरों को नहीं देते हैं तो अपराधी हैं ।

मैं यदि आपको कोई शास्त्र-पदार्थ नहीं दूँ, आड़ी-टेढ़ी बातों में समय व्यतीत कर दूँ तो अपराधी बनता हूँ ।

संघ की भक्ति तीर्थंकर की भक्ति गिनी जायेगी ।

पंच परमेष्ठी स्वयं ही संघ रूप होने से भिन्न रूप से 'नमो तित्थस्स' कहने की नवकार में आवश्यकता नहीं पड़ी । अन्य प्रकार से कहूँ तो नवकार में 'नमो तित्थस्स' का ही विस्तार है ।

* 'णमो सुअस्स' ऐसा भगवती के प्रारम्भ में आया है ।

'णमो सुअस्स' में तीर्थ आ गया, क्योंकि श्रुत (द्वादशांगी) स्वयं तीर्थ है ।

इस तीर्थ की सेवा करने वाला तत्त्व प्राप्त करेगा ही ।

'तीरथ सेवे ते लहे, आनंदघन अवतार'

- पूज्य आनन्दघनजी

पूज्य धुरन्धरविजयजी म. : अतः व्याख्यानकार बनना ही न ?

पूज्यश्री : व्याख्यानकार बनने का नहीं कहता, गीतार्थ बनें ।

पूज्य प्रेमसूरिजी म., पू. मुक्तिविजयजी म. एवं भानुविजयजी म. दोनों का व्याख्यान सुन कर कहते - इसमें क्या आया ? शास्त्रीय पदार्थ तो कुछ भी नहीं आया । पूज्य प्रेमसूरिजी महाराज नहीं होते तो क्या आप तैयार होते ?



प्रवचन फरमाते हुए पूज्यश्री

१८-८-२०००, शुक्रवार

भाद्र. कृष्णा-३

* यहां 'नमुत्थुणं' में नाम आदि चार में से भाव तीर्थकर को नमस्कार किया है। 'लोगस्स' में नाम तीर्थकर को, 'अरिहंत चेइआणं' में स्थापना तीर्थकर को और 'जे अ अइआ' में द्रव्य तीर्थकर को नमस्कार किया है।

समवसरण में नाम आदि चारों भगवान उपस्थित होते हैं।

अपना आत्म-द्रव्य भगवन्मय बने वही द्रव्य तीर्थकर गिने जाते हैं। यहां भूत-भावी पर्याय रूप द्रव्य नहीं लेना है। यद्यपि भूत-भावी का कारण भी आत्म-द्रव्य ही बनेगा न ?

* ध्याता जिसे ध्येय रूप में रखे, वह उस रूप में बन जाता है। पुद्गल को ध्येय के रूप में रख कर चेतन ने बहुत मार खाई है। अब यदि बचना हो तो परमात्मा को ध्येय बनाओ।

परमात्मा में हम रंग नहीं लगाते, इसका अर्थ इतना ही है कि हम पुद्गल में रंग करते हैं।

जीव-विचार आदि सबका अध्ययन करें, सबको समझें, परन्तु यदि 'स्व' में कुछ भी न घटित करें, सब अन्य में ही घटित करें। हम कोरे ही रहें, इसका अर्थ क्या ?

‘सव्वे जीवा न हंतव्वा’ भगवान की इस आज्ञा का यहां अनजाने भी पालन हो गया तो भी फल कैसा अद्भुत मिला ?

अनन्त बार दुःख भोगना हो तो ही किसी जीव को सताना । इसे उल्टा कर यह भी कहा जा सकता है कि आपको अनन्त सुख चाहिये तो दूसरे को सुख देना ।

* तथाभव्यता की परिपक्वता के लिए शरणागति आदि तीन हैं । भगवान की स्तवना करने से उनके गुणों की अनुमोदना हुई । पाप की गर्हा न करें तो वह प्रगाढ़ बनती है उस प्रकार पुण्य की अनुमोदना न करें तो वह प्रगाढ़ नहीं बनता ।

पाप का अनुबन्ध तोड़ने के लिए सुकृत-अनुमोदना है ।

अपने अनुष्ठान ही ऐसे हैं, जिनमें कदम-कदम पर ये तीनों गुथे हुए ही हैं, चाहे हम जानें कि नहीं जानें । अनजाने भी भोजन-पानी ग्रहण करते हैं तो भी शक्ति मिलती ही है न ?

* ‘स्वाध्याय में मन लगता है, क्रिया में नहीं ।’

कल एक व्यक्ति ने मुझे एक प्रश्न पूछा था ।

मैं कहता हूं कि ज्ञान के बिना क्रिया व्यर्थ है ।

उस प्रकार क्रिया के बिना ज्ञान भी व्यर्थ है ।

आप कदापि एकांगी न बनें ।

पूज्य मुनिचन्द्रसूरिजी :

‘क्रियाहीनं च यज्ज्ञानं, ज्ञानहीना च या क्रिया ।

अनयोर्न्तरं ज्ञेयं, भानुखद्योतयोरिव ॥’

- ज्ञानसार

ज्ञानसार के इस श्लोक में क्रिया से ज्ञान का अधिक महत्त्व क्यों दिया गया है ?

पूज्यश्री : जिनके जीवन में ज्ञान न हो उन्हें इस प्रकार समझायें, परन्तु क्रिया न हो उसे दूसरी तरह से समझाना पड़ता है ।

* पत्र में पता लिखो, परन्तु उस व्यक्ति को पहुंचे ही नहीं तो उस पत्र का मूल्य कितना ? भगवान का नाम लें और भगवान के साथ अपना जुड़ाव न हो तो उस नाम-ग्रहण का मूल्य कितना ? सोचें । आप यह न भूलें कि नाम आदि के द्वारा आखिर भगवान के साथ जुड़ाव करना है ।

* 'भग' के १४ अर्थ हैं, परन्तु यहां 'भग' के ६ अर्थ लेने हैं - ऐश्वर्य, रूप, यश, लक्ष्मी, धर्म और प्रयत्न - इन छः को 'भग' कहा जाता है। जिनमें ये छःओं सर्वोत्कृष्ट रूप में हो वह भगवान कहलाता है।

१. ऐश्वर्य : इन्द्र जैसों के द्वारा भगवान की भक्ति तथा अष्ट महाप्रातिहार्यादि भगवान का ऐश्वर्य है।

२. रूप : जगत् भर के तीनों काल के इन्द्र भी भगवान के अंगूठे के समान रूप भी नहीं बना सकते। शायद बना लें तो भगवान के सामने कोयले के समान प्रतीत होता है। भगवान का ऐसा रूप भी उपकार के लिए ही होता है। यह देखने के लिए सम्यग्दृष्टि जीव उतावल करते हैं। अरे ! उनकी मूर्ति देखकर भी भक्त पागल हो जाते हैं।

'अमीय भरी मूर्ति रची रे, उपमा न घटे कोय।

शान्त सुधारस झीलती रे, निरखत तृप्ति न होय ॥'

- पूज्य आनंदघनजी

संप्रति महाराजा के समय के बिम्ब देखो, आपका मन नाच उठेगा। भगवान की मूर्ति भी इतनी मनोहर हो तो भगवान कैसे होंगे ?

३. यश : संसार में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है, जिसका यश भगवान की तुलना कर सके। राग-द्वेष आदि अन्तरंग शत्रुओं को जीत कर भगवान ने यह यश प्राप्त किया है। यह यश भी क्षणिक नहीं है, परन्तु सदाकाल रहने वाला होता है।

भगवान के पास राग-द्वेष आदि जीतने की उत्कृष्ट शक्ति होती है। इसीलिए वर्धमान 'महावीर' के रूप में पहचाने गये हैं। भगवान का यश भी लोगों के लिए आनन्द-दायक होता है। जीवन में कुछ न हो और यश फैलाने का प्रयत्न करें तो लोग दुत्कारते हैं - धत्, ऐसे मम्मण का नाम कहां लिया ?

भगवान का या गौतम स्वामी जैसे का नाम हम लेते हैं क्योंकि उनका जीवन साधना से समुज्ज्वल था।

गौतम स्वामी का नाम तो आज भी मुनिगण गोचरी जाने से पहले लेते हैं -

‘यस्याऽभिधानं मुनयोऽपि सर्वे, गृह्णन्ति भिक्षा-भ्रमणस्य काले ।
मिष्टान्नपानाम्बरपूर्णकामाः, स गौतमो यच्छतु वाञ्छितं मे ॥’

४. लक्ष्मी : केवलज्ञान रूपी उत्कृष्ट लक्ष्मी भगवान के पास है ।
ज्ञान का आनन्द अद्भुत होता है । उसकी किसी दूसरे पदार्थ
के साथ तुलना नहीं कर सकते ।

‘ज्ञानमग्नस्य यच्छर्म, तद्वक्तुं नैव पार्यते ।’

- ज्ञानसार

आत्मा के एक-एक प्रदेश में अनन्त गुण हैं । एक एक
गुण का आनन्द कितना ? जैसे प्रत्येक मिठाई का स्वाद अलग
होता है वैसे प्रत्येक गुण का आनन्द भी अलग-अलग होता है ।
कौन जाने भगवान कितना ही आनन्द अनुभव करते होंगे ।

घेवर, अमृती, गुलाबजामुन, रसगुल्ला, पेठा, मलाई की पुड़ी
आदि प्रत्येक का स्वाद अलग-अलग होता है न ? ये सब मीठे
हैं, परन्तु अन्तर भी है । उस प्रकार भगवान के केवल ज्ञान, केवल
दर्शन आदि का आनन्द अलग-अलग होता है, यह कभी सोचा
है ?

बाह्य पदार्थों से होने वाली तृप्ति नश्वर है । ऐसे गुणों से
होने वाली तृप्ति ही अनश्वर है, ऐसा यशोविजयजी का कथन है ।

प्रभु के गुण हम में चाहे पूरे प्रकट न हों, उनका क्षयोपशम
हो थोड़े-बहुत प्रकट हों और जो आनन्द उत्पन्न हो वह भी ऐसा
होता है कि शब्दों में कहा नहीं जा सकता ।

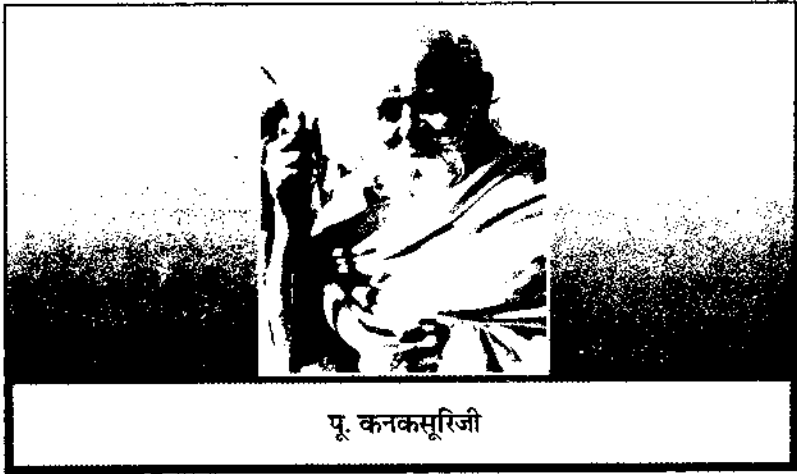
ज्ञान-ध्यान आदि में मग्न रहें, फिर जो आनन्द उत्पन्न होगा
वह अवर्णनीय होगा । पंचसूत्रकार ने साधु का सुन्दर विशेषण दिया
है -

‘झाणज्झयणसंगया ।’ साधु ध्यान एवं अध्ययन में संगत
होता है । ध्यान से थक जायें तो ज्ञान, ज्ञान से थक जायें तो
ध्यान में मग्न रहें ।

जहां ये दोनों होंगे वहां चारित्र होगा ही । चारित्र अर्थात् स्थिरता ।
‘चारित्रं स्थिरतारूपम् ।’

- ज्ञानसार ३/८

ऐसी स्थिरता सिद्धों में भी होती है । कोई आगम में सिद्धों



पू. कनकसूरिजी

१९-८-२०००, शनिवार
भाद्र. कृष्णा-४

(पूज्य आचार्यश्री विजयकनकसूरिजी की
३६वीं स्वर्गतिथि)

पूज्य आचार्यश्री विजयकलाप्रभसूरिजी :

* गुरु के बिना भगवान नहीं मिल सकते । गुरु के बिना पद-प्रतिष्ठा आदि किसी का भी मूल्य नहीं है ।

महाराजा कुमारपाल को गुरु-भक्ति के पास राज्य तुच्छ लगता था । पूज्य कनकसूरिजी में भीम और कान्त दोनों गुण थे, जिन्हें आप 'नेगेटिव-पोजिटिव' रूप में कह सकते हैं । उनके पास कुनेहपूर्ण दृष्टि थी । समाधान करने की, उत्तर देने की उनके पास एक विशिष्ट कला थी । वे सामने वाले व्यक्ति की पूरी बात सुनते थे, परन्तु एक घंटे भर की बात का उत्तर सिर्फ एक ही वाक्य में होता, ऐसी संक्षिप्त अर्थ-गम्भीर युक्त वाणी के वे स्वामी थे, जिसे सुनकर अत्यन्त बुद्धिमान व्यक्ति भी प्रभावित हो जाते थे । जितनी संक्षिप्त बात कही जाये उतनी ही वह प्रभावशाली बनती है ।

गुरु अर्थात् गरिमा एवं गौरव का केन्द्र ! तीर्थंकर की अनुपस्थिति

में गुरु ही तीर्थकर गिने जाते हैं ।

‘पंचसूत्र’ में सुन्दर वाक्य है कि ‘यदि आपको मित्र के रूप में किसी को रखना हो तो गुरु को ही रखें । गुरु ही आपके कल्याण-मित्र बन सकते हैं ।’

परिस्थिति बदलने की सलाह देने वाला मित्र है ।

मनःस्थिति बदलने की सलाह देने वाला कल्याण-मित्र है ।

मम्मण को पूर्व भव में कैसा मित्र मिल गया था ? कल्याण-मित्र मिला होता तो शायद मम्मण का इतिहास भिन्न होता ।

परिस्थिति कर्म के कारण बनती है, परन्तु उससे आपको बदलने की आवश्यकता नहीं है ।

इसीलिए मनःस्थिति बदलाने वाले कल्याण मित्र का संयोग आवश्यक है । चंडकौशिक को भगवान महावीर नहीं मिले होते तो क्या दुर्दशा होती ?

कल्याण मित्र को प्रत्येक घटना के केन्द्र में रखें तो कदापि अकल्याण (अहित) नहीं होता ।

गुरु एक तत्त्व है, व्यक्ति नहीं ।

गुरु की सेवा से तत्त्वों की प्राप्ति होती है ।

अपन (हम) तो सगुरु हैं, नगुरे नहीं हैं । यह पूज्य आचार्यश्री विजयकनकसूरिजी जैसे गुरुदेवों को आभारी हैं ।

पूज्य आचार्यश्री विजयकलापूर्णसूरिश्वरजी म. :

‘गुरु-भक्ति-प्रभावेन, तीर्थकृद्दर्शनं मतम् ।

समापत्त्यादिभेदेन, निर्वाणैकनिबन्धनम् ॥’

आज हमें एक ऐसे महापुरुष को याद करने हैं जो मात्र कच्छ अथवा गुजरात में ही नहीं, गुप्त रूप से समग्र भारत के जैनों में छाये हुए थे । गुप्त रूप से इसलिए कहता हूँ कि उन्होंने ने प्रसिद्धि के लिए कोई भी प्रयत्न किया नहीं था, किसी समाचार-पत्र आदि में उनकी खबर छपती नहीं थी ।

हम जितने उनके गुण गायेंगे, उतने गुण हममें प्रकट होंगे । यदि हम दोष बोलते हैं तो दोष आते हैं, गुण गाये तो गुण आते हैं । हमें जो चाहिये वह बोलना है । जिस वस्तु को खरीदनी

हो उस दुकान में ही जाते हैं न ? इसीलिए कुसंगति का इनकार किया है । बुरा पड़ोस हो वहां रहने का भी इनकार किया है । क्या आप जानते हैं कि मार्गानुसारी में यह भी एक गुण है ? भुज की वाणिवावाड़ में आप जायेंगे तो आपको समस्त जैन ही देखने को मिलेंगे । वहां कुसंगति शीघ्र नहीं आ सकती ।

अभी आषाढ़ कृष्ण ६ के दिन पूज्य दादाश्री जीतविजयजी महाराज का जीवन देखा । आज उनके ही प्रशिष्य महापुरुष को याद करना है ।

उनका जीवन ही व्याख्यान था । उन्हें कुछ कहने की आवश्यकता नहीं रहती थी ।

संवत् १९३९ की भादों कृष्ण पंचमी को पूर्व कच्छ के पलांसवा गांव में चंदुरा नानजीभाई - नवलबेन के घर उन महापुरुष का जन्म हुआ था । गृहस्थ-जीवन का उनका नाम कानजीभाई था ।

उस समय उंगली के वेढ़ों पर गिने जा सकें उतने ही संविग्न पूज्य साधु-साध्वीजी थे ।

पूज्य पद्मविजयजी ने यति परम्परा छोड़ कर संवेगी दीक्षा ग्रहण की थी । उनके शिष्य थे पूज्य जीतविजयजी महाराज !

पूज्य जीतविजयजी महाराज की आज्ञावर्तिनी विशुद्ध संयमी पूज्य साध्वी आणंदश्रीजी की दृष्टि में पलांसवा-निवासी ये कानजी बस गये । विनय-व्यवहार आदि देख कर ये भावी शासन-प्रभावक प्रतीत हुए ।

हरिभद्रसूरिजी को तैयार करनेवाली याकिनी महत्तर साध्वी थी । उस प्रकार इन महापुरुष को तैयार करने वाली आणंदश्रीजी साध्वी थी ।

उनके ही संसारी चाचा हीरविजयजी पहले से ही दीक्षित थे, जिनके परिवार में एक दीक्षित हो तो दूसरे की भी इच्छा होती ही है । मालशीभाई ! आपके परिवार में से कितने दीक्षित हुए ?

मालशीभाई : कुछ कहने जैसा नहीं है ।

सर्व प्रथम कानजीभाई साध्वीजी आणंदश्रीजी के सम्पर्क में आये । साध्वीजी की प्रेरणा ने उनमें वैराग्य का बीज बोया ।

कानजी की आत्मा संसार के कैद में से छूटने के लिए तड़प रही थी । उन्होंने दीक्षा ग्रहण करने का दृढ़ संकल्प किया ।

कतिपय व्यक्ति दृढ़ संकल्प वाले होते हैं - 'देहं पातयामि कार्यं वा साधयामि।' उनके समान दृढ़ संकल्प वालों से ही यह शासन चला है।

दृढ़ संकल्प वाले कुमारपाल जैसे एकाध आत्मा ने क्या किया ? यह हम जानते हैं कि अहिंसा तो मेरी माता है। इसका पालन मेरे देश में होना ही चाहिये।

कसाइयों और मच्छीमारों ने शिकायत की तो उन्हें तीन वर्षों के लिए आजीविका बांध दी, परन्तु अहिंसा का प्रवर्तन तो कराया ही।

दृढ़ संकल्प क्या नहीं कर सकता ? अपना संकल्प सिद्ध करने के लिए ही उन्होंने ने युवावस्था में चौथे व्रत की प्रतिज्ञा स्वीकार की।

वि. संवत् १९९२ की माघ शुक्ला-१५ के शुभ दिन भीमासर में २३ वर्ष की युवा-आयु में उनकी दीक्षा हुई।

पलांसवा के ठाकुर की बुद्धिमान् कानजी को बैरिस्टर बनाने की इच्छा थी, परन्तु भावी जैनाचार्य बनने वाले कानजीभाई ने ऐसी ओफर सादर ठुकरा दी।

दीक्षा अंगीकार करने के बाद विनय, विवेक, त्याग, वैराग्य आदि गुणों की वृद्धि होने के साथ ज्ञानवृद्धि भी होने लगी।

विनयपूर्वक सीखी हुई विद्या विवेक उत्पन्न करती है।

विवेक वैराग्य लाता है, वैराग्य विरति लाता है, विरति वीतरागता लाती है और वीतरागता विदेह-मुक्ति प्रदान करती है।

विनय, विवेक, वैराग्य जहां हों वहां वीतरागता दूर नहीं रहती। यहां (पालीताणा) आने के बाद दादा कितने दूर ?

वि. संवत् १९७५ में उन्हें सिद्धिसूरिजी के कर-कमलों से पंन्यास पदवी दी गई थी। पूज्य मेघसूरिजी उनके खास सहपाठी थे।

पूज्यश्री ने अनूपचंद मलूकचंद नामक श्रावक के पास अध्ययन करने के लिए भरुच में खास चातुर्मास किया था।

पूज्यश्री ने पूज्य सागरजी महाराज के पास कपड़वंज, पाटण

आदि स्थानों पर आगमों की वाचनाएं भी ली थी ।

पन्यास पदवी लेकर पूज्यश्री पलांसवा पधारे तब पूज्य जीतविजयजी म. स्वयं भी श्रावकों के साथ सामैया में आये थे और कारण बताते हुए बताया था कि मैं तेरे लिए नहीं, तेरे पद का सम्मान करने के लिए आया हूं ।

गुरु का कितना वात्सल्य होगा ?

शिष्य की कैसी भक्ति होगी ?

ये ऐसे प्रसंगो से ज्ञात होता है । 'चंदा विज्झय' में वर्णित बात 'विनय सीखना है, ज्ञान नहीं । विनय आयेगा तो ज्ञान आयेगा ही' पूज्यश्री में चरितार्थ हुई प्रतीत होगी ।

'गुरु बहुमाणो मोक्खो', 'पंचसूत्र' की यह बात भी पूज्यश्री में स्पष्ट प्रतीत होगी ।

गुरु के प्रति बहुमान रखना नहीं और हम मुक्ति की आशा रखते हैं । मुक्ति तो क्या मिलेगी ? मुक्ति का मार्ग भी नहीं मिलेगा ।

दशवैकालिक में विनय-समाधि शब्द आते हैं । विनय से ऐसी समाधि, ऐसी प्रसन्नता प्रकट होती है कि जिसकी समानता देव भी नहीं कर सकते ।

पूज्यश्री के विकास का मूल विनय में था ।

उनको नजर से देखने वाले समकालीन साध्वीजी चतुरश्रीजी आदि ने देखा था कि पूज्यश्री में विनय की इतनी पराकाष्ठा थी अपने चार गुरुजनों (दादा गुरु पू. जीतविजयजी, पू. गुरुवर्यश्री हीरविजयजी, पू. सिद्धिसूरिजी, पू. मेघसूरिजी) के मुंह से 'कनकविजयजी ! यहां आओ' इस वाक्य का 'क' अक्षर सुनते ही चाहे जैसा कार्य छोड़ कर, हाथ जोड़ कर वे बालक की तरह विनीत मुद्रा में उपस्थित हो जाते ।

वि. संवत् १९८५ में भोयणी तीर्थ में पूज्य बापजी म., पूज्य सागरजी म. आदि के हाथों आपकी उपाध्याय पदवी हुई और वि. संवत् १९८६ में पूज्य गुरुवर्यश्री हीरविजयजी स्वर्गवासी हुए ।

वि. संवत् १९८९ में अहमदाबाद में आचार्य पदवी हुई ।

दीक्षा के योगोद्धहन से लगाकर सभी योगोद्धहन पूज्य सिद्धिसूरिजी ने कराये थे ।

हमने दीक्षा ली तब पूज्य सिद्धिसूरिजी विद्यमान थे । पूज्यश्री स्वयं २५० साधु-साध्वियों के नायक होते हुए भी पूर्ण रूप से पूज्य बापजी महाराज को समर्पित थे ।

मैं ने स्वयं देखा है - राधनपुर के संघ की चातुर्मास की विनती थी ।

पूज्य बापजी महाराज ने लिखा - 'वहां चातुर्मास कर सकते हैं ।'

यह कोई आज्ञा नहीं कहलाती, यह मान कर उन्होंने ने पूज्य बापजी म. की निश्रा में चातुर्मास करने के लिए विहार किया ।

जेठ महिने की भयंकर तेज गर्मी में पहले ही मुकाम पर (गोचनाद मे) स्वास्थ्य अत्यन्त बिगड़ने के कारण राधनपुर के श्रावक स्वयं पूज्य बापजी म. के पास से आज्ञा-पत्र ले आये । फिर वह चातुर्मास सांतलपुर में हुआ ।

उनका जीवन हमने तो अपनी आंखों से देखा है ।

आणंदजी जैसे महान् पण्डित आकर किसी की ओर से घंटों तक तर्क करते तब पूज्यश्री का एक ही वाक्य में उत्तर होता, 'आपकी बात सत्य है, परन्तु हम तो पूज्य बापजी म. करते हैं उस प्रकार करते हैं ।' एक घंटे के तर्कों का उत्तर वे एक ही वाक्य में दे देते थे ।

उनकी ब्रह्मचर्य के प्रति निष्ठा कैसी थी ?

राधनपुर में साध्वीजियों को योगोद्धहन करते समय वेलजीभाई को कहा, 'यहां बैठो ।' कुछ समय के बाद कहा, 'अब जाओ ।'

'परन्तु कारण क्या ?'

'इस समय कोई पुरुष नहीं था, अतः मैं ने आपको यहां बिठाया ।'

हलवद में पूज्य कान्तिविजयजी ने देखा, 'साध्वीजी को वे जो आज्ञा देते, वे तुरन्त 'तहत्ति' करके उसे स्वीकार करते । स्त्री-जाति इतनी आज्ञांकित ?

पूज्यश्री का कितना प्रभाव ?

वे कहते, 'सचमुच, ये तो कलिकाल के स्थूलभद्र हैं ।

पूज्यश्री को शिष्यों आदि की कोई तमन्ना नहीं थी । उसके

लिए कोई प्रयत्न नहीं किया, परन्तु उनका ध्यान रखनेवाले ऊपर वाले बैठे हैं न ?

गुलाब को कहना नहीं पड़ता कि भौंरो ! तुम आना ।

तालाब को कहना नहीं पड़ता कि मछलियो ! तुम आना ।

योग्य व्यक्ति को योग्य पात्र, मिल ही जाता है ।

पूज्यश्री चाहे कहीं भी नहीं गये, परन्तु उनके संयम की सुगन्ध सर्वत्र फैली हुई थी ।

मुझे यहां कैसे आना हुआ ? बताऊं क्या ?

दीक्षा लेने की भावना के बाद मैं ने अपने ससुर मिश्रीमलजी को बता दिया, क्योंकि माता-पिता आदि कोई गुरुजन थे नहीं ।

ससुर ने कहा, 'मेरा भी दीक्षित होने का ही विचार है ।' वागड़वाले पूज्य कनकसूरिजी से दीक्षा लेनी है ।

परन्तु मेरी इच्छा पूज्य रामचन्द्रसूरिजी के पास दीक्षा लेने की थी ।

रजनादगांव में स्थित पू. मुनिश्री रूपविजयजी के पास आते पूज्य रामचन्द्रसूरिजी के जैन प्रवचन पढ़कर मुझे वैराग्य हुआ था । गुजरती यद्यपि नहीं आता था तो भी भावार्थ समझ लेता था । उन्हें पढ़ कर संसार की असारता मन में जम गई । संसार बुरा है, ऐसा वर्णन नहीं किया जाये तो कोई इसकी निर्गुणता को नहीं समझेगा ।

दीक्षा का प्रवाह बढ़ा है, यह इन महापुरुषों का प्रभाव है । पूज्य सागरजी म., पूज्य रामचन्द्रसूरिजी आदि महापुरुषों का प्रभाव है ।

अतः मेरा विचार पूज्य रामचन्द्रसूरिजी के पास दीक्षा ग्रहण करने का था, परन्तु ससुरजी ने जब अपनी भावना व्यक्त की, तब मैं भी उससे सहमत हो गया ।

अब यह भी बता दूं कि उन्हें पूज्य कनकसूरिजी के पास दीक्षा लेने की भावना क्यों हुई ?

पूज्य लब्धिसूरिजी का चातुर्मास वि. संवत् १९९६ में फलोदी में था तब उस समय जिन्होंने संघ निकलवाया था वे जसराज लुक्कड के पिताजी भोमराजजी ने उनकी निश्रा में जैसलमेर का संघ निकलवाया था ।

एक बार ससुर मिश्रीमलजी के पिताजी ने पूज्य लब्धिसूरिजी को रात्रि में पूछा था कि इस काल में उत्कृष्ट संयमी कौन है ?

उस समय गुण-रागी पू. लब्धिसूरिजी ने पूज्य कनकसूरिजी का नाम दिया था । उस समय कमलविजयजी म. भी वहां थे और उन्होंने ने मन में गांठ बांध ली कि दीक्षा लेनी तो इन्हीं महात्मा के पास लेनी ।

दीक्षा ग्रहण करने के बाद लगा कि सचमुच भगवान ने मुझे अत्यन्त ही उचित एवं योग्य स्थान पर लगाया है ।

पूज्यश्री के जितने गुण-गान करें उतने कम हैं ।

उन्होंने ने ही हमें जामनगर अध्ययन करने के लिए भेजा था । दो वर्षों के बाद कहलवाया - या तो पाटण जाओ, या अहमदाबाद जाओ, जामनगर छोड़ दो, क्योंकि दो वर्ष हो गये हैं । अधिक समय एक स्थान पर नहीं रहना चाहिये ।

हमें विचार आया कि अब पूज्यश्री के पास ही जाना है ।

हम पूज्यश्री के चरणों में भचाऊ पहुंचे ।

उस समय पूज्यश्री स्वयं आवश्यक निर्युक्ति, आरम्भ सिद्धि आदि पढ़ाते थे तथा पं. अमूलखजी को भी पढ़ाने के लिए रखा ।

परन्तु प्रकृति को मंजूर हो वही होता है ।

हमें गांधीधाम चातुर्मासार्थ जाना पड़ा और डेढ़ महिने में तो दादा परलोक सिधार गये ।

हमें वे सदा के लिए छोड़ गये, परन्तु भक्त को कदापि गुरु का विरह होता ही नहीं है ।

उस समय पू.पं. भद्रंकरविजयजी (वर्तमान में आचार्य) चातुर्मास के लिए आये, अतः हमें अलग होना पड़ा । उस समय उत्तरदायित्व कम थे, अतः अध्ययन आदि अच्छी तरह होता था । जिनके ऊपर ऐसी जवाबदारी नहीं है, उन्हें खास सूचना है कि स्वर्ण अवसर का सदुपयोग कर लो ।

पूज्यश्री ने कालधर्म से २-४ दिन पूर्व ही स्वयं लोच कर लिया था ।

अन्तिम दिन, अन्तिम समय में पूज्यश्री ने 'पंचसूत्र' श्रवण करने की इच्छा व्यक्त की थी । तब से ही मेरा मन 'पंचसूत्र'

पर मुग्ध है और इस समय भी व्याख्यान में 'पंचसूत्र' ही चालु है न ?

उस समय उनके पास नित्य रहनेवाली घड़ी भी बंध हो गई थी, मानो वह भी आघात से स्तब्ध हो गई हो ।

(पूज्य कनकसूरिजी के गुरु-पूजन की बोली हरखचन्द वाघजी, गौदरा, आधोई ।

आज १५०० आयंबिल होंगे । अभी रू. २०/- का संघपूजन है । दोपहर में सामूहिक सामायिक और सायंकाल में कुमारपाल की आरती का कार्यक्रम रहेगा ।)

ॐ ॐ ॐ

नीति पर दृढ़ता

अमेरिका में बसे एक सज्जन बैंक में डाइरेक्टर के पद पर नियुक्त हुए । उन्हें ग्राहकों को ऋण देने का कार्य सौंपा गया । एक बार ऋण के कागज देखने पर ध्यान आया कि इसमें तो कल्लखाने के जैसे कार्य होते हैं और उन्होंने ने वह पद छोड़ दिया । छः माह तक बिना नौकरी के बैठे रहना पड़ा । अनेक कष्टों का सामना किया, परन्तु बुरा कार्य छोड़ने का आनन्द उन्हें कष्टों में भी व्याकुल नहीं करता था । वे सदबुद्धि से श्रद्धा में टिके रहे ।

सुनने में आया कि मछली पकड़ने के जालों की बड़ी फैक्ट्री प्रारम्भ हुई । उसके शेअर जैनों ने भी खरीदे थे । उसमें बुद्धि भी कैसी । श्रद्धा का तो मानो अकाल ही पड़ गया ।

- सुनन्दाबेन वोरा



भुज चातुर्मास, वि.सं. २०४३

१९-८-२०००, शनिवार
भाद्र. कृष्णा-४

* चतुर्विध संघ स्वयं मुक्ति-मार्ग पर चलता है, अन्य को भी चलाता है, इस चतुर्विध संघ के दर्शन पुण्य की पराकाष्ठा कहलाती है। संसार में कितने पुद्गलावर्त गये ? अनन्त पुद्गलावर्त गये। अब भी कितने पुद्गलावर्त बाकी होंगे, यह भगवान जाने। यह तीर्थ हमें भूतकाल में भी अनन्त बार मिला होगा, परन्तु अपना उपादान कारण तैयार नहीं था। हमारे भीतर 'दुर्भव्य' बैठा था। आज भी हम कैसे कह सकते हैं कि दुर्भव्य नहीं बैठा। दुर्भव्य को कदापि भगवान की देशना अच्छी नहीं लगती।

अपुनर्बंधक अर्थात् धर्म का आदि साधक, आदि धार्मिक, जो अब कदापि मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति बांधने वाला नहीं है।

साधक के चार विभाग हैं :

- (१) अपुनर्बंधक
- (२) सम्यक्त्वी
- (३) देशविरत
- (४) सर्वविरत

भूमिका देख कर ही देशना देने का विधान है।

सामान्य ग्राहक को उच्च स्तर का माल बताओ तो क्या होगा ? वह ग्राहक उच्च स्तर के माल का मूल्य नहीं दे सकेगा और निम्न स्तर का माल लेने के लिए तैयार नहीं होगा । यहां भी ऐसी ही दशा होती है ।

पूज्य हेमचन्द्रसागरसूरिजी : भगवान पहले सर्वविरति बताते हैं, फिर देशविरति बताते हैं न ?

पूज्यश्री : अन्य दर्शनी को सर्वविरति बताई जाती है । उदाहरणार्थ - हरिभद्र भट्ट । परन्तु जो सम्यग्दर्शन प्राप्त किया हुआ है, उसे देशविरति रूप भूमिका के लिए तैयार करके सर्वविरति के लिए योग्य बनायें । एकदम उतावल न करें ।

भवन बनाने से पहले नींव मजबूत करनी पड़ती है न ? सम्यग्दर्शन नींव है; फिर देशविरति और सर्वविरति रूपी मंजिल का निर्माण किया जा सकता है । फिर भी एकान्त नहीं है । उत्तम आत्मा हो तो उसे सर्वविरति भी पहले दी जा सकती है, परन्तु यह ज्ञानियों का विषय है । हम उनकी होड़ (तुलना) नहीं कर सकते ।

* मैं यहां उपदेश नहीं देता । हम सब साथ मिलकर स्वाध्याय कर रहे हैं । जिस प्रकार परिहार विशुद्धि में एक वाचनाचार्य बनता है न ? मैं भी उसी प्रकार से वाचना देता हूं, यह मानें ।

* 'भगवन् ! तेरी आज्ञा का पालन तो दूर रहा, आदर भी हो जाये तो भी काम हो जाये ।' ऐसा भाव भी तारक (तारणहार) बनता है ।

* 'नमुत्थुण्' के अर्थ जानोगे तो जब उन्हें बोलोगे तब शुभ भाव बढ़ता जायेगा ।

शुभ भाव से सम्यग्दर्शन मिलेगा, मन की प्रसन्नता मिलेगी, जो बाजार में दूसरे कहीं से नहीं मिलेगी । मन की प्रसन्नता समाधि प्रदान करती है । समाधि मुक्ति प्रदान करती है । प्रभु मन की प्रसन्नता भरपेट देने के लिए तैयार हैं, क्योंकि प्रसन्नता का पूर्ण भण्डार भगवान के पास है ।

कल आपको भग के छः अर्थ बताये थे । महत्त्व के अन्तिम दो अर्थ बाकी हैं ।

सांख्य दर्शन, निरसन आदि की चर्चा मैं गौण करूंगा, क्योंकि इस सभा में इनकी आवश्यकता नहीं है ।

* हमारे भीतर गुणों के विविध व्यंजन हैं । विविध मिठाइयों या विविध पदार्थों की तरफ होने वाला आकर्षण सचमुच इसी बात का संकेत है, परन्तु हम यह संकेत समझते नहीं हैं । हम विविध पदार्थों से तृप्त होकर गुणों के प्रति पराङ्मुख रहते हैं ।

‘भग’ का छठा अर्थ प्रयत्न होता है ।

(६) प्रयत्न :

प्रभु में उत्कृष्ट पुरुषार्थ होता है । रातभर एक ही पुद्गल पर अनिमेष रहकर प्रभु-साधना करते हैं । आंख तनिक भी झपके नहीं । कितनी भीषण साधना ! कितना भयंकर पुरुषार्थ !

भगवान महावीर की साधना का श्रम तो देखो ।

भगवान के सिवाय ऐसा श्रम कौन कर सकता है ?

हम तो भरत चक्रवर्ती की तरह केवलज्ञान प्राप्त हो जायेगा, यह मानकर आराम से बैठे हैं ।

भगवान तो परिषह-उपसर्ग अधिक आते हैं त्यों अधिक मजबूत बनते हैं । समुद्घात के समय क्या कम पराक्रम होता है ? इसमें प्रयत्न की परकाष्ठा होती है । योग-निरोध के समय भी प्रबल पुरुषार्थ होता है । केवलज्ञान होने के बाद भी कितना भव्य पुरुषार्थ ?

सामान्य केवली ही समुद्घात करते हैं ऐसा नहीं है, परन्तु तीर्थंकर भी समुद्घात करते हैं । आयुष्य तथा कर्म समान स्थिति वाले न हों तो समुद्घात करना पड़ता है ।

यह पुरुषार्थ आत्मवीर्य से प्रकट हुआ है ।

यहां सर्वत्र समग्र शब्द लगायें ।

ऐश्वर्य, रूप, यश, श्री, धर्म और प्रयत्न के स्वामी भगवान को हमें नमस्कार करना चाहिये ।

पूज्य में जितनी शक्ति है, वह समस्त शक्ति पूजक को मात्र नमस्कार से मिलती है । जिस कम्पनी के आप ‘शेअर होल्डर’ बने हैं उस कम्पनी का लाभ आपको ही मिलेगा न ?

जिस नमस्कार से ये सब गुण मिलते हैं, उस नमस्कार का मूल्य कितना है ? इस नमस्कार के पीछे भक्ति-भावना का जितना

बल हो, उतना यह नमस्कार शक्तिशाली बनता है । यह नमस्कार आपको 'परम' के साथ जोड़ देता है । जिसे आप नमन करते हैं, उसके साथ आप नमस्कार के माध्यम से ही जुड़ सकते हैं ।

पूज्य कीर्तिसेनसूरिजी : बोधि एवं सम्यक्त्व में क्या अन्तर है ?

पूज्यश्री : बोधि एवं सम्यक्त्व में वैसे कोई अन्तर नहीं है, फिर भी वैसे तनिक अन्तर भी है ।

पूज्य हेमचन्द्रसागरसूरिजी : और वरबोधि ?

पूज्यश्री : वरबोधि तो भगवान के पास ही होता है, अन्य किसी को आशा रखनी ही नहीं है ।

पूज्य हेमचन्द्रसागरसूरिजी : हमें भगवान बनना है न ?

पूज्यश्री : मनोरथ किसको नहीं होता ? परन्तु बनता कौन है ?

भगवान का भक्त कदापि भगवान बनने का कोड़ नहीं करता । वह कोड़ करे तो भक्त नहीं बन सकता, परन्तु आप भले ही निःस्पृह रहें, भगवान आपको भगवान बनायेंगे ही ।

* सांख्य-दर्शन आत्म-कर्तृत्व नहीं मानता ।

जैन दर्शन अन्य दर्शनों की तरह जगत्कर्तृत्व नहीं स्वीकार करता, परन्तु सम्यग्दर्शन आदि गुणों में निमित्त रूप से भगवान कर्त्ता है, यह जैन दर्शन मानता है । साधना के लिए यह मानना आवश्यक है । 'मैं स्वयं पढ़ा हूँ' ऐसा विद्यार्थी कदापि नहीं कहता । गुरु ने पढ़ाया है, ऐसा ही कहेगा । इसी प्रकार से भक्त भी यही कहेगा कि भगवान ने ही गुण प्रदान किये हैं ।

साधना के लिए यह दृष्टिकोण अत्यन्त ही आवश्यक है । यह दृष्टिकोण नहीं रख कर अनेक व्यक्ति भूले पड़ गये हैं ।

आत्मा सर्वथा अकर्त्ता है, यह सांख्य-दर्शन मानता है । जैन-दर्शन आत्मा का कर्तृत्व स्वीकार करता है । कर्म स्वयं आकर नहीं चिपकते । आत्मा शुभाशुभ परिणाम करती है, तदनुसार कर्म चिपकते रहते हैं । अतः जैन दर्शन मानता है कि आत्मा कर्म का कर्त्ता है ।

जैन दर्शन भले सर्वथा जगत्कर्तृत्व स्वीकार नहीं करता, परन्तु इस प्रकार कथंचित् कर्तृत्व स्वीकार करता है ।

हम सब ऐसे हैं ।

* भगवान तीर्थ के आदि स्थापक हैं । इस विशेषण से वेदों का अपौरुषेयपन निरस्त हुआ ।

कितनेक यह मानते हैं कि केवलज्ञान होने पर तुरन्त ही जीव मोक्ष में ही जाता है, संसार में रह ही नहीं सकता । इसका खण्डन भी इस विशेषण से होता है ।

सूर्य स्वभाव से प्रकाश देता है, उस प्रकार तीर्थकर स्वभाव से ही तीर्थ की स्थापना करते हैं । यदि ऐसा न करें तो उनके कर्मों का क्षय नहीं होता ।

जिसके सहारे से जीव तर जाये वह तीर्थ कहलाता है ।

भयंकर मगर्मच्छे और मत्स्यो (राग-द्वेष) आदि से भरे हुए इस सागर (संसार) को तरने के लिये तीर्थ (घाट) की आवश्यकता होती है । उसे बांधने वाले तीर्थकर हैं । जन्म, जरा एवं मृत्यु यहां पानी है ।

* निगोद के जीव एक सांस में १७-१८ बार जन्म-मरण करते हैं । विचार करो कि जन्म-मरण का कितना दुःख है ? ऐसे अनन्त पुद्गल-परावर्त हमारे भूतकाल में गुजरे । अब भविष्य में गुजरना है ? भविष्य का सृजन अपनी आराधना पर आधारित है ।

* संसार-सागर में मिथ्यात्व-अविरति की अत्यन्त ही गहराई है ।

भयंकर कषाय रूप पाताल है ।

मोह का भयंकर चक्रावर्त है ।

विचित्र दुःख भयंकर जलजन्तु है ।

राग-द्वेष का पवन खलबली मचाता है ।

प्रबल मनोरथ रूप ज्वार है ।

* मिथ्यात्व का एक भी अंश होता है तब तक हमें देह में आत्मबुद्धि रहती है ।

अपनी आत्मा को पूर्ण रूप में नहीं मानना भी मिथ्यात्व है ।

जब तक देह में आत्म-बुद्धि करेंगे, तब तक यह देह बार-बार मिलता ही रहेगा ।

ॐ ॐ ॐ

परमलोक की यात्रा प्रारम्भ करनी है । इस संघ को प्राप्त करने की यही सफलता है ।

पूज्य गणिश्री पूर्णचन्द्रविजयजी :

रेलवे में तीन लाइन होती हैं । अपने मन में तीन लाईन हैं - ब्रोड गेज, मीटर गेज एवं नैरो गेज । 'नैरो लाइन' संकड़ी होती है, स्पीड कम होती है और बोझा भी अधिक नहीं उठा सकती ।

मीटर गेज उससे चौड़ी, स्पीड अधिक और बोझा भी अधिक उठा सकती है, जबकि ब्रोड गेज उससे भी स्पीड आदि में अधिक होती है ।

मनुष्यों के मन भी तीन प्रकार के होते हैं ।

कोई मानता है - मैं सुखी होऊं ।

कोई मानते हैं - हम सुखी बनें ।

कोई मानते हैं - अपन सुखी बनें ।

तीर्थकरों की भावना होती है कि अपन सुखी बनें ।

तीर्थकर स्वयं इस संघ को नमन करते हैं । इससे ख्याल आयेगा कि व्यक्ति महत्त्वपूर्ण नहीं है, संघ महत्त्वपूर्ण है । संघ भावना, व्यक्तित्व का अहंकार तोड़ डालता है, विशाल भावना पैदा करता है ।

भगवान द्वारा स्थापित ऐसे संघ के साधुओं को देख कर क्या अहोभाव जागृत होता है ? 'ण तित्थं विणा निगंठेहिं ।' साधुओं के बिना तीर्थ नहीं होता ।

वर्तमान विज्ञान युग में भी एक भी पैसे के बिना, एक भी वाहन के बिना जीवन जीने वाले ये जैन साधु हैं, क्या यह विचार आता है ?

क्या यह लगता है कि भगवान के ये साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका आदि हैं ? संघ तीर्थकरों का प्रोडक्शन है । पांचों परमेष्ठियों की यह खान है । इस संघ में ज्ञानी, ध्यानी, दानी आदि अनेक गुणवान हैं ।

कल्पवृक्ष का आधार नन्दनवन है, तेज का आधार चन्द्रमा है, उस प्रकार गुणों का आधार संघ है ।

एक साधु की साधना सम्पूर्ण जगत् को बचा सकती है । आज भी कुछ ठीक है वह इस संघ का प्रभाव है ।

संघ के द्वारा संघ की भावना उत्पन्न होनी चाहिये ।

किसी भी संघ में होने वाली देवद्रव्य की आमदनी भारत के किसी भी संघ में भेजते हैं । यह है संघ-भावना !

हम जितने संगठित रहेंगे, उतना बल बढ़ेगा । वर्तमान युग में संगठित होने की विशेष आवश्यकता है । 'संघे शक्तिः कलौ युगे ।'

एकत्रित रहेंगे तो बल बढ़ेगा । यदि बिखरे हुए रहेंगे तो टूट जायेंगे ।

'वह संगठन संगठन नहीं, जिसमें फूट है ।

वह व्यापार व्यापार नहीं, जिसमें लूट है ।

प्रामाणिकता की पूजा तो हर जगह होती है, -

वह धर्म धर्म नहीं, जिसमें झूठ है ।'

संघ-भावना की कदर आचार्य भगवान भी करते हैं । इसीलिए वे आपकी चातुर्मास (वर्षावास) की विनती स्वीकार करते हैं ।

पूनड़ ने नागपुर से सिद्धाचल का संघ निकलवाया था तब वस्तुपाल विनती करके उस संघ को धोलका में लाये थे ।

'संघ की उड़ती मिट्टी भी मंगलकारी है ।' यह वस्तुपाल का कथन है । समस्त यात्रियों के पांवों का दूध से प्रक्षाल करके वस्तुपाल सबकी भक्ति करते थे ।

अंकेवालिया में वस्तुपाल की मृत्यु हुई तब १३वां संघ था । तब आचार्य ने कहा था - 'सचमुच, जिनशासन के गगन का सूर्य अस्त हो गया । उस समय उन आचार्य भगवन् ने छः विगई का त्याग किया था । आप यदि गरीब हैं तो सुपारी - मुहपत्ति आदि से भी इस संघ की भक्ति कर सकते हैं ।

सन्तति का समर्पण करके भी उत्तम श्रमण संघ की भक्ति हो सकती है ।

* आपका पुत्र बीमार हो और साधु भी बीमार हो तब पहले आप कहां जायेंगे ?

पुत्र मेरा है परन्तु साधु, उपाश्रय, मन्दिर आदि किसके हैं ? संघ के हैं न ? क्या संघ में आप नहीं हैं ?

कितने ही सामूहिक प्रश्न जल रहे हैं, तब 'मेरे क्या ?' कह कर बैठे नहीं रहते हैं न ?

ऐसे संघ की कदापि आशातना न करें । अवर्णवाद करोगे तो बोधि दुर्लभ बनना पड़ेगा ।

संघ के एक सदस्य की पूजा सकल संघ की पूजा है । संघ के एक सदस्य की हीलना सकल संघ की हीलना है, इतना याद रखें । हृदय में संघ का बहुमान होगा तो जिन शासन की जय जयकार हो जायेगी ।

पूज्य विशगचन्द्रसागरजी :

संघ हमारे माता-पिता हैं । उसके समक्ष चाहे जैसा बोलेंगे तो भी चलेगा ।

जिनके बिना जैन शासन की कल्पना कठिन है, ऐसे उपाध्याय यशोविजयजी के योगविशिका ग्रन्थ का वाक्य -

‘विधिसम्पादकानां विधिव्यवस्थापकानां दर्शनमपि

प्रत्यूहव्यूहविनाशनमिति वयं वदामः ।’

‘विधि-कारकों एवं विधि के व्यवस्थापकों का दर्शन भी विधियों के व्यूह के विनाशक है, ऐसा हम कहते हैं ।’

टंकार की भाषा में उपाध्याय महाराज यह बात कर रहे हैं ।

संघ को हम कहेंगे -

‘धन्य क्षणे तव दुर्लभ दर्शन,

मधुर वचन तव मंगल स्पर्शन !

रोम-रोम पुलकित अमीवर्षण,

जय जय अम हृदय निवसंत ।’

आप यह न मानें कि संघ के सदस्य प्रभावना के लिए दौड़ते हैं । बिना प्रभावना के मात्र दर्शन के लिए यहां प्रत्येक रविवार को दौड़े आते हैं, जो आप देखते हैं न ?

व्यक्ति अकेला होता है तब सामान्य होता है, परन्तु प्रभु ने आत्म ध्यान से शक्ति प्राप्त करके व्यक्तियों को एकत्रित करके जिसकी स्थापना की उसे हम संघ कहते हैं ।

मिलना ही सम्बन्ध है । Meeting is relationship । अनेक बार मिलना अर्थात् क्या ? यह समझे बिना ही हम अलग हो जाते हैं, बिखर जाते हैं ।

प्रभु ने सूत्र दिया - ‘एगे आया ।’

प्रभु ने अपने व्यक्तित्व को एक किया ।

हे सिद्धो ! आप एक हैं, संगठित हैं । हम पर संगठितता एवं एकता की वृष्टि करो ।

तन्तुओं से बना रस्सा हाथी को भी बांध सकता है ।

लकड़ियों के भारे को पहलवान भी तोड़ नहीं सकता । हमारी एकता बाह्य एवं अभ्यन्तर विघ्न का नाश कर सकती है ।

‘आत्मवत् सर्व भूतेषु’ ‘अप्पसमे भन्निज्ज छप्पि काए ।’

‘सर्व जीवों को अपनी आत्मा के समान मान ।’

‘जं हंतुमिच्छसि अप्पाणमेव जाणाहि ।’ जिसे मारना चाहते है वह तू स्वयं है, यही मानना ।

यह संवेदनशीलता की पराकाष्ठा है ।

संघ में शामिल होने से पूर्व हम सामान्य थे । हमारी शक्तियां सुषुप्त थीं । व्यक्ति के रूप में हम सब सामान्य होते, परन्तु प्रभु ने हमें संगठित किये, विशिष्ट बनाये ।

प्रत्येक आत्मा में आप अपना प्रतिबिम्ब देखें ।

समाना हृदयानि - वेद

‘अप्पा सो परमप्पा’ आत्मा ही परमात्मा है - ऐसा प्रभु का कथन है । प्रभु-भक्त बाद में बनना, पहले भक्त के भक्त बनें । भगवान का भक्त अर्थात् चतुर्विध संघ ।

दूध एक ही होता है । तेजाब मिलने पर फट जाता है । शक्कर मिलने पर मधुर बनता है । हमें क्या बनना है ? तेजाब बनना है कि शक्कर ?

आप एकतावादी बनें, विभाजनवादी नहीं ।

एकता के सूत्रधार संघ को अनन्त नमन ।

चन्द्रकान्तभाई : भादौ शुक्ला ६ को सामूहिक रथयात्रा निकलेगी । तीन-चार रथ होंगे । भादौ शुक्ला ५ को सामूहिक क्षमापना एवं चढ़ावे (बोलियां) होंगे । आमदनी आणंदजी कल्याणजी पेढ़ी में जायेगी ।

भादौ शुक्ला ६ के साधर्मिक वात्सल्य का सम्पूर्ण लाभ पार्वतीबेन हरखचन्द वाघजी गीदरा, आधोई (कच्छ) की ओर से लिया गया है ।

पू. धुरन्धरविजयजी म. : आज पर्युषण पूर्व का अन्तिम रविवार है । पर्युषण के बाद में भी यह चालु रखने के लिए प्रयत्न करें । सभा पूरी होने से पूर्व आज कोई उठे नहीं । जो खड़ा होगा उसे सभा तोड़ने के लिए पाप लगेगा । यह विनय है - पू. आचार्य भगवान के बाद ही उठना है ।

पू. मुनिश्री उदयप्रभवविजयजी म. : गुण, पर्याय, उग्र आदि में अनेक गुरुजन नीचे हैं, उनसे क्षमा याचना करता हूँ । शायद क्षमा याचना न करूँ तो भी मैं कसूर (Fault) में नहीं हूँ । संघ की आज्ञा से बैठा हूँ ।

घर छोड़े बिना अणगार नहीं बना जाता ।

मन को छोड़े बिना अच्छा शिष्य नहीं बना जाता ।

कदाग्रह एवं स्वतन्त्रता छोड़े बिना संघ-सेवक नहीं बना जाता ।

जिसे न्याय करना आता है वही संघ की एकता कर सकता है ।

जो स्वार्थ छोड़े, सादगी अपनाये, वही संघ का नेता बन सकता है ।

वस्तुपाल को संघ की पूजा करते समय पसीना छूट रहा था, तब उन्होंने ने कहा था कि इस समय मैं जन्म-जन्म की थकावट उतार रहा हूँ । यह सादगी है, यह बहुमान-सूचक है ।

कितनेक श्रावक आज भी लोच आदि करते हैं । यह सादगी संघ का बहुमान है । वह तप, ज्ञान आदि क्षेत्र में कच्चा हो तो भी यह संघ बहुमान से मुक्ति प्राप्त कर ले ।

भिन्न-भिन्न समुदायों में गोचरी एवं वन्दन का व्यवहार न हो यह भेदभाव नहीं है, परन्तु एक व्यवस्था है ।

सच्चा न्याय कौन कर सकता है ? जो अपने घर रहे हुए व्यक्ति को अयोग्य व्यवहार से रोक सकता है, वही न्याय कर सकता है ।

सर्व प्रथम एकता एवं मैत्री का प्रारम्भ घर से होना चाहिये ।

बढ़प्पन धन के आधार पर नहीं, गुणों के आधार पर है ।

एकता के लिए अपनी मान्यता भी एक ओर रखनी पड़ती है । उस प्रकार हम एक बनें ।

इस समय दिखाई देने वाली एकता सिर्फ शब्दों में न रहे, जीवन में उतरे वैसी अपेक्षा है ।

पूज्य आचार्यश्री विजयकलापूर्णसूरिजी :

भगवान द्वारा स्थापित यह संघ दीर्घ काल तक जगत् का मंगल करे वैसी शक्ति भगवान ने स्थापित की है ।

‘धम्म-तित्थयेरे जिणे ।’ सम्पूर्ण विश्व को केवलज्ञान के प्रकाश से भर देनेवाले ये प्रभु उपकारों की वृष्टि करते हैं वह स्वभाव से ही है । सूर्य की तरह उपकार करना उनका स्वभाव है ।

इस संघ पर कितना बोल सकते हैं ? हमारी शक्ति परिमित है । स्वयं तीर्थकर भी वह नहीं सकते । मात्र ‘नमो तित्थस्स’ कह कर बैठते हैं । इतने में क्या नहीं आया ?

‘मुझसे भी पूजनीय यह संघ है ।’ संघ को नमस्कार करके स्वयं तीर्थकरो ने यह कह दिया ।

धुरन्धरविजयजी ने पूछा था - ‘भगवान से भी पूज्य हो उस संघ का स्थान नवकार में प्रथम क्यों नहीं ? अन्त में भी क्यों नहीं ?

मैं ने कहा, ‘नवकार संघ से बाहर नहीं है । नवकार में संघ को नमस्कार है ही । तीर्थकर स्वयं कहते हैं कि आप इस तीर्थ को नमस्कार करो ।’

इस शाश्वत मन्त्र में हम क्या भूल निकाल सकते हैं ? अपनी बुद्धि कितनी है ?

‘नमो’ शब्द प्रथम है, जो तीर्थकर बनने की कला है । यह कला आपको तीर्थकर बनाती है । जितने तीर्थकर बने हैं, वे इसी प्रकार संघ की भक्ति से ही बने हैं ।

चतुर्विध संघ खान है, जिसमें पांचौं परमेष्ठी तैयार होते हैं ।

जब तीर्थकर गृहस्थ जीवन में थे तब भी उनके माता-पिता किसी तीर्थकर के श्रावक-श्राविका ही थे । अर्थात् संघ में से ही तीर्थकर तैयार होते हैं ।

इस संघके गुण-गान करने की शक्ति नहीं है, फिर भी गुणगान करते हैं, ताकि संघ के ऋण से कुछ मुक्त हो सकें ।

जीर्णोद्धार मात्र जिनालय या उपाश्रय का ही नहीं, चतुर्विध

संघ के किसी भी सदस्य का भी हो सकता है । यह भी संघ की भक्ति है । उन्हें आप गुणों के मार्ग में आगे बढ़ाएँ यह भी संघ-भक्ति है । यदि गुणवान की प्रशंसा नहीं करो तो अतिचार लगते हैं ।

‘संघमांही गुणवंततणी अनुपबृंहणा कीधी ।’

संभवनाथ भगवान पूर्व के तीसरे भव में अकाल के समय में श्री संघ की भक्ति करके ही तीर्थकर बने थे । यह संघ-भक्ति तीर्थकर की माता है ।

* दीन-दुःखियों का उद्धार आदि नहीं किया जाये तो दोष लगता है, लोगों में भी निन्दा होती है । वे उत्सव करते हैं परन्तु गरीबों की परवाह नहीं है । इसी लिए वस्तुपाल ऐसी दानशालाओं का निर्माण कराते थे जिनमें जैन-अजैन सभी भोजन करते थे ।

मद्रास की प्रतिष्ठा के समय अजैनों को भी बादाम की कतली आदि दी गई थी । उन्हें लगा कि जैनों ने पहली बार हमें इस प्रकार याद किया ।

संघ में कई बार सम्पूर्ण गांव के लोगों को निमन्त्रण दिया जाता था । उनका अन्न पेट में जाने पर स्वाभाविक तौर से ही वे जैन धर्म के प्रति अनुरागी बनते थे ।

अपूर्णता की दृष्टि से यदि हम देखेंगे तो कमियां (त्रुटियां) ही प्रतीत होंगी, परन्तु विशाल दृष्टि से गुण ही दिखाई देंगे । मुझे तो इस संघ के गुण ही दिखाई देते हैं । यहां १६०० ठाणे हैं । किसी को वस्त्र, पात्र, वसति, अन्न आदि का कोई कष्ट हुआ ? श्रावक-श्राविकाएं शायद वापिस गये होंगे, परन्तु क्या किसी साधु-साध्वी को वापिस जाना पड़ा ? क्या यह संघ का प्रभाव नहीं है ?

किसी पुण्योदय से यहां एकत्रित हुए हैं तो उत्तम कार्य हो सकेंगे ।

मैत्री का ऐसा माहौल बना है, वह मात्र बोल कर नहीं, जीकर बतायेंगे तो उसका प्रतिबिम्ब सर्वत्र पड़ेगा ही ।

कदाचित् यह प्रयत्न सफल नहीं हो तो भी मनोरथ तो निष्फल नहीं ही जायेगा । भविष्य के लिए मैत्री का यह वातावरण बीज रूप बनेगा ।

तीर्थकर भी जिसको नमस्कार करते हैं, इसका अर्थ यही कि इस संघ से अधिक कोई पूजनीय नहीं है ।

नमो अरिहंत + आणं = अरिहन्त की आज्ञा को नमस्कार ।

आज्ञा अर्थात् तीर्थ ! संघ ! 'आणाजुत्तो संघो ।'

अब नवकार में संघ आया कि नहीं ? यदि मेरी बात असत्य हो तो मुझे लौटा दो ।

मैं तो अनुभव करता हूं कि सभी बातें नवकार में मिलती जाती हैं । इसीलिए नवकार को छोड़ कर अन्य कोई आलम्बन लेने की इच्छा नहीं होती ।

बीज छोटा होता है परन्तु उसका विस्तार कितना विशाल होता है ? क्या आपने कोई बड़ा बरगद देखा है ?

पू. धुरन्धरविजयजी : कबीर वड़ एक किलोमीटर बड़ा है ।

पूज्यश्री : हमने लुणावा में विशाल बरगद का वृक्ष देखा है, जिसके नीचे दीक्षा आदि प्रसंग होते थे ।

इस बरगद का मूल छोटा बीज होता है ।

इस जैन-शासन रूपी विशाल वट-वृक्ष का मूल बीज 'नमो' है ।

नमो को उलट करे तो ओम् (न) होगा ।

(ओम्) ॐ में पंच परमेष्ठी हैं । यही बीज है ।

षोडशाक्षरी, सप्ताक्षरी मन्त्र इसमें से ही बनते हैं ।

'महानिशीथ' जैसे में कहा है - 'यह नवकार तो पंच-मंगल-महाश्रुत-स्कंध है ।

आकाश कहां नहीं है ? आकाश नहीं हो ऐसी जगह बताओगे ? जगह अर्थात् आकाश ।

यह नवकार कहां नहीं है ? यह आकाश की तरह सर्व व्यापी है ।

इस संघ के पास जब तक यह नवकार है, देव-गुरु-वन्दन है, तब तक कल्याण होता ही रहेगा ।

प्रातः संघ-भक्ति का उत्कृष्ट कार्यक्रम गिरिविहार में रहा । समय के अभाव से मैं भले तनिक जल्दी उठ गया । जल्दी उठने के कारण ही यहां आ सका, अन्यथा अभी तक आ नहीं सकता था ।

हमारे पूर्वज जो यह सम्पत्ति छोड़ गये हैं उसे हमें अधिक समृद्ध बनाकर भावी पीढ़ी के लिए रखनी है ।

* परम तपस्वी पूज्य आचार्य श्री विजय राजतिलकसूरीश्वरजी म.सा. को हमने आंखों से देखे हैं । वे १०० + १०० + ८९ ओली के महान् आरधक थे । यह विक्रम अभी तक कोई तोड़ नहीं सका ।

पूज्य आचार्यश्री की आज दूसरी स्वर्गतिथि है । तप-साधना से उनकी आत्मा तो उच्च गति में ही होगी, परम-पद की साधना करती ही होगी, परन्तु अपनी इतनी ही प्रार्थना है कि हम सब पर वे कृपा-वृष्टि करते रहें ।

पू. धुरन्धरविजयजी म. : पूज्यश्री के हृदय में संघ के प्रति अत्यन्त ही आदर-भाव है । आपको सुनाई नहीं दिया हो तो भी शब्दों के आन्दोलन तो आप तक पहुंचे ही हैं ।

नवकार में संघ को नमस्कार क्यों नहीं ? मैं ने यह पूछा था । उन्होंने ने आज पुनः उत्तर दे दिया ।

अरिहन्त + आणं - अर्हत की आज्ञा को नमन । आज्ञा-पालक संघ ही है । अरिहन्त से तीर्थ भिन्न नहीं है । साथ ही नमन हो जाता है ।

आपको यह उत्तर पसन्द आ गया न ?

तीर्थकर एवं तीर्थकर की आज्ञा कदापि अलग नहीं होते । जहां संघ है, वहां तीर्थकर है ही ।

आचार्यश्री निरन्तर प्रभु में डूबे हुए (निमग्न) हैं । अतः पूज्यश्री मौन रहेंगे, कुछ नहीं बोलेंगे तो भी उनका अस्तित्व मात्र उत्सव बना रहेगा ।

पू. यशोविजयसूरिजी :

मेरे जीवन की यह एक धन्यतम घटना है । चतुर्विध संघ के दर्शन अहोभावपूर्वक करने को मिले । एक भी सदस्य को प्रभु के मार्ग पर जाते देखकर आंखे हर्षाश्रुओं से छलक उठती हैं ।

संघ के दर्शन मात्र अहोभाव से भीजे नेत्रों से ही किये जा सकते हैं । कभी-कभी विहार में घंटों तक नेत्र भीगे रहते हैं ।

आपको एक गांव की घटना बताता हूं - हम वहां प्रातः आठ बजे पहुंचे । श्रावकों की विनती हुई - उपाश्रय में पधारें, गोचरी लेने के लिए पधारें । दो घर होते हुए भी अपार भक्ति । परमात्मा की प्रतिमा नैनाकर्षक थी ।

मैं अभक्त हूं, अतः परमात्मा की प्रतिमा कहता हूं । वास्तव में तो परमात्मा ही कहना चाहिये ।

मुझे लगता है - 'मन्दिर में नहीं, समवसरण में बैठा हूं ।'

- ज्ञानविमलसूरि

आपको क्या कभी मन्दिर में समवसरण याद आता है ।

शंखेश्वर - अहमदाबाद का वह मार्ग, निरन्तर साधु-साध्वीजियों के विहार चालु रहते हैं ।

हम विहार करके गये, इतने में ही फिर दस साध्वीजी आये । साथ में डोली आदि के आदमी भी थे ।

उनकी भी इतने ही प्रेम एवं आदर से भक्ति की । विहार के समय कहते - 'गुरुदेव ! मेरे आंगन में पगले करने पड़ेंगे ।'

मैं ने कहा, 'तेरे वहां पगले नहीं करूंगा तो कहां करूंगा ?'

दुकान में ५-७ हजार का माल देख कर लगा, 'क्या कमाता होगा ? क्या वहीरता होगा ?'

परन्तु भीतर श्राविका ने रोटियों की थप्पी उठाई । मैं चकित हो गया । मैं गोचरी जाता तब कभी कभी गोचरी बढ़ भी जाती । दूसरा सब गिनती में आता, परन्तु भक्ति का वजन गिनना रह जाता ।

एक बजे साइकल वाले को गांव की भक्ति के विषय में पूछने पर उसने कहा, 'आज मुझे मेरी मां याद आई, माता के प्रेम से उन्होंने ने मुझे भोजन कराया है ।'

दोपहर में तीन बजे चाय के लिए विनती आई ।

मैं ने पूछा : 'आपका कैसे चलता है ?'

'प्रभु की कृपा से तथा आपकी कृपा से, आप कल्पना करो उसकी अपेक्षा भी अधिक सरलता से जीवन-नैया चलती है ।'

'एक काम कर । हमारी तो तू भक्ति करेगा, परन्तु हमारे साथ वाले आदमियों की भक्ति तू बाहर से कर, बिल हमारे पास भेज देना, शहर के लोगों को लाभ मिलेगा ।'

‘नहीं, साहेब ! ऐसा नहीं हो सकेगा । जो चौबीसों घंटे आपकी सेवा करते हैं, उनकी सेवा क्या हम नहीं करें ?’

यह उनका उत्तर हृदय पर प्रहार करे वैसा था ।

‘Week End हो तब Hill Station पर न जाकर ऐसे किसी गांव में जाकर देखें । भक्ति दिखाई देगी ।’ ऐसा धनाढ्यों को कहने का मन हो जाता है ।

मुझे तो ऐसी अनेक श्राविका-माताएं मिली हैं । ग्यारह वर्ष की उम्र में दीक्षा ग्रहण की है, अनेक माताओं का स्नेह मिला है ।

अधिक मुझे कुछ नहीं कहना है । समय बुरा है । हम में भी दोष हो सकते हैं । परन्तु आप उन्हें नजर अंदाज करें । गुण देख कर प्रसन्न होकर कृतार्थ बनें ।

पूज्य हेमचन्द्रसागरसूरिजी : प्रथम से अन्त तक बीच में झटके लगाने वाले Open Batsman मुनिश्री धुरन्धरविजयजी अन्त में बोलते हैं ।

पूज्य मुनिश्री धुरन्धरविजयजी :

पालीताणा चातुर्मास निश्चित हुआ तब विचार आया कि वहां जाकर प्रभु की आराधना में लीन रहेंगे, परन्तु यहां आने पर सबकी ओर से इतना प्रेम मिला कि बार बार आपके समक्ष आना पड़ा ।

प्रभु-संघ का अत्यन्त ही महत्त्व है, जिसकी कल्पना नहीं हो सकती । जो कोई ऊंचे आये हैं वे संघ को हृदय में स्थान देकर ही आये हैं ।

स्वयं से संघ को जिन्होंने अधिक माना वे ही वस्तुपाल, तेजपाल, कुमारपाल आदि बन सके हैं । झांझण मन्त्री बड़ा संघ लेकर कर्णावती (वर्तमान अहमदाबाद) आये । वीर धवल के वंशज सारंगदेव राजा थे । मन्त्री को कहा : ‘आप भोजन करने आये, साथ में अच्छे व्यक्तियों को लायें ।’

झांझण : ‘यहां सभी अच्छे व्यक्ति हैं । एक को भी छोड़ कर नहीं आ सकता । सब को भोजन करा सको तो ही मैं आ सकता हूँ ।’

राजा : ‘मेरी यह शक्ति नहीं है ।’

झांझण : ‘सम्पूर्ण गुजरात को मैं भोजन कराऊंगा, आप पधारें ।’

अभी-अभी हो चुके महान आचार्यों के नाम गिनाऊं ? -

तीर्थों के उद्धारक पू. नेमिसूरिजी - दूर दूर के तीर्थों के उद्धारक पूज्य नीतिसूरिजी, संघ स्थविर पूज्य सिद्धिसूरिजी, आगमोद्धारक पूज्य सागरजी, श्रमण संस्था के उद्धारक पूज्य प्रेमसूरिजी, पूज्य रामचन्द्रसूरिजी, श्रावक संघ के उद्धारक पूज्य वल्लभसूरिजी आदि ।

सबने अपनी-अपनी तरहसे अत्यन्त ही लगन एवं रुचि से प्रयत्न किया है ।

पूज्य पं. श्री भद्रंकरविजयजी, पूज्य पं. श्री अभयसागरजी, पूज्य आचार्यश्री विजय कलापूर्णसूरिजी जैसे साधक इस संघ में से ही मिले हैं ।

पूज्य आचार्यश्री विजय राजतिलकसूरिजी ने वर्धमान तप की २८९ ओली की । इतिहास में ऐसा उदाहरण मिलता नहीं है ।

वागड़ समुदाय के एक साध्वीजी पुष्पचूलाश्रीजी ने तीसरी बार ओली की अवश्य थी, फिर भी इस संख्या को लांघ नहीं सके ।

इन महात्मा का अन्तिम से पूर्व का चातुर्मास यहीं हुआ था । उस समय अत्यन्त तपस्या हुई थी । इस समय तो अनेक आचार्य हैं अतः तपस्या बहुत अधिक होनी चाहिये ।

दो वर्ष पूर्व गिरधरनगर - अहमदाबाद में पूज्य आचार्य श्री कालधर्म को प्राप्त हुए थे ।

उनका गृहस्थजीवन का नाम रतिलाल था । दीक्षा की कोई भावना नहीं थी ।

रतिलाल को अपने आप गुरुजी ने दीक्षा दी थी, यह कहा जा सकता है । वे दीक्षा अंगीकार करने के लिए नहीं आये थे । जोग के आर्यबिल कठिनाई से किये थे, परन्तु परम गुरु प्रेमसूरिजी की परम कृपा से आर्यबिल में बहुत ही आगे बढ़ें ।

ऐसे रत्नों की खान यह श्री संघ है ।

ऐसे तपस्वी की स्वर्ग-तिथि आज ही आई । यह भी एक योगानुयोग घटना है ।

पूज्य रामचन्द्रसूरिजी के कालधर्म के बाद 'उनके बाद कौन ?' की चिन्ता में पड़े साधुओं को मैं ने कहा था कि 'राम' आज



पू. देववि. के साथ पूज्यश्री, वि.सं. २०२२, भुज

२०-८-२०००, रविवार
भाद्र. कृष्णा-५

तीर्थ स्थापना को २५०० से अधिक वर्ष होने पर भी आज भी वह सक्रिय है जो प्रभु के अचिन्त्य प्रभाव को व्यक्त करता है ।

अरिहन्त में बारह गुण होते हैं, अठारह दोष नहीं होते, यह सब तो हम जानते हैं, परन्तु भगवान का अचिन्त्य प्रभाव हम नहीं जानते । इस 'ललित विस्तर' के द्वारा अचिन्त्य प्रभाव जानने को मिलेगा ।

इस समय ज्यादा से ज्यादा तो क्षयोपशम का समकित होगा, क्षयोपशम के गुण होंगे, परन्तु क्षायिकभाव का समकित बाकी है । दर्शन सप्तक के क्षय के बिना क्षायिक भाव नहीं मिलता ।

दर्शन सप्तक मरे या मंद हो तो ही भीतर का आनन्द अनुभव करने की तीव्र उत्कण्ठा होती है ।

क्षपकश्रेणी लगाने वाले को चौदह पूर्व चाहिये ही, ऐसा नहीं है । यदि ऐसा हो तो माषतुष मुनि केवल ज्ञान नहीं प्राप्त कर पाते ।

माषतुष मुनि जैसे केवल ज्ञान प्राप्त कर सकें वहां क्या प्रभु का अचिन्त्य प्रभाव दिखाई देता है ?

‘अद्य छिन्ना मोहपाशा, अद्य रागादयो जिताः ।

अद्य मोक्ष-सुखं जातमद्य तीर्णो भवार्णवः ॥’

ये भक्त के उद्गार हैं । दूर स्थित भगवान भी भक्त को समीप ही प्रतीत होते हैं ।

परन्तु भगवान प्रत्येक को दर्शन नहीं देते, भक्त को ही देते हैं । भक्त को दर्शन दिये बिना रहते ही नहीं है, ऐसे भी आप कह सकते हैं ।

तीर्थ के नमस्कार में तीर्थंकर को नमस्कार हो गया कि नहीं ?

जिन-वचनों के बहुमान से जिन का बहुमान हो गया कि नहीं ?

जिन्होंने ने शास्त्र (जिन वचन) आगे किये, उन्होंने ने भगवान आगे किये ही; तो ही कर्म-क्षय होते हैं । शास्त्र छोड़ दिये, विधि छोड़ दी तो भगवान छोड़ दिये । भक्त जब त्रिगुप्ति से गुप्त होते हैं, तब ही भगवान दर्शन देते हैं । यही समापत्ति कहलाती है । तीन गुप्तियां हमें छोटी वस्तु प्रतीत होती हैं, परन्तु हम नहीं जानते कि इसमें तो समापत्ति समाविष्ट है । इसमें तो भगवान को मिलने की कला छिपी हुई है ।

मैं तो यहां तक कहूंगा कि इस एक मुहपत्ति के बोल में समग्र जैन-शासन भरा पड़ा है । इसमें बोलते हैं न ? ‘मन गुप्ति, वचन गुप्ति, काय गुप्ति आदरुं ।’

मुहपत्ति पडिलेहण हमें छोटी किया लगती है, परन्तु अनुभवी की दृष्टि में अत्यन्त ही विराट् है । इसमें साधना के बीज हैं । उनके माध्यम से आप केवल ज्ञान रूपी वृक्ष प्राप्त कर सकते हैं ।

* इस तीर्थ की महिमा समझनी हो तो संसार की भयंकरता समझनी पड़ेगी । सागर की भयंकरता समझे बिना जहाज का महत्त्व समझ में नहीं आता । रावण के बिना राम की, दुर्योधन के बिना युधिष्ठिर की, अंधकार के बिना प्रकाश की महिमा समझ में नहीं आती ।

यह संसार कितना भयंकर है वह तो देखो ।

* इस संसार-सागर में जन्म-जरा-मृत्यु रूप जल है । मिथ्यात्व अविरति से वह गहरा है । महा भयंकर कषाय पाताल है ।

ये कषाय अत्यन्त भयंकर प्रतीत हों तो ही उन्हें निकालने के आप प्रयत्न करेंगे न ? कषाय भयंकर ही नहीं, ‘महा भयंकर’

हैं। इनकी भयंकरता नहीं प्रतीत हुई, इसीलिए उन्हें निकालने के लिए प्रयत्न नहीं करते। भूत, राक्षस भयंकर लगते हैं, उनसे आप डरते हैं; परन्तु क्या कषायों से डरते हैं ?

तीर्थ में प्रवृत्ति नहीं होती, क्योंकि संसार की भयंकरता अभी तक समझ में नहीं आई, अभी तक कषायों से भय नहीं लगता। आप लिख कर रख लें कि कषायों को निकाले बिना कर्म कदापि जाने वाले नहीं हैं।

विषय-कषाय बुरे लगे, इसीलिए आप संसार में से निकले हैं न ? परन्तु अब ये विषय-कषायों की भयंकरता भूल मत जाना।

इस संसार-सागर में मोह का आवर्त है।

नाविक भी कई बार इसमें फंस जाता है। उसमें यदि जहाज फंस जाये तो चूर-चूर हो जायेगा।

कामराग, स्नेहराग, दृष्टिराग, चार कषाय, नौ नोकषाय, दर्शन मोहनीय आदि मोह के ही प्रकार हैं।

मोह के कारण कर्म-बन्धन होता है। कर्मों से दुःख आते हैं। अतः फिर लिखा है -

दुःखों के समूह रूप दुष्ट जलचरों से भरा हुआ यह संसार-सागर है।

कतिपय मगर (घडियाल) या मछलियां ऐसी होती हैं कि पूरे के पूरे मनुष्य को ही खा जाते हैं। ओरे, वे जहाज को भी उल्टा देते हैं, वैसी भी मत्स्य (शार्क मछली आदि) होती हैं।

दुःखों से तो फिर भी बचा जा सकता है, परन्तु दोष तो उनसे भी खतरनाक हैं। राग-द्वेष के दोषों से भले भले भ्रान्त हो जाते हैं। इसलिए कहा है कि -

राग-द्वेष की वायु से यह संसार-सागर सतत खलबल हो रहा है।

यह संसार-सागर अकेले से नहीं तैरा जा सकता। कर्णधर के रूप में देव-गुरु चाहिये ही। राग-द्वेष, मोह के तूफान आयेंगे ही, परन्तु उस समय भयभीत होकर हमसे साधना छोड़ी नहीं जा सकती। अतः भगवान को शरण लें।

संयोग-वियोग रूपी लहरें यहां उठती ही रहती हैं।

सागर में लहरें इतनी ऊंची उछलती हैं कि जहाज भी टूट जाये ।
 कतिपय संयोग जीवन को ऊपर उठाने वाले होते हैं और
 कितने ही संयोग जीवन को बर्बाद करने वाले भी होते हैं, परन्तु
 एक बात याद रखें कि संयोग अच्छा हो कि बुरा, वियोग तो होगा
 ही । संयोग-वियोग रहीत एकमात्र स्थान है - मोक्ष । उसके लिए
 तो अपना यह समस्त प्रयत्न है ।

कषायों के उबाल के समय, संयोग-वियोग के समय हमारी आत्मा
 अटल रहे, स्वस्थ रहे; उसके लिए यह सब सिखाया जाता है ।

संयोग-वियोग न आयें, कषायों के कारण न आयें, परिषह
 या उपसर्ग न आयें, ऐसा सम्भव नहीं है, परन्तु उस समय हमारा
 मन स्वस्थ रहे यह सम्भव है । भगवान पर भी परिषह-उपसर्ग
 आते हैं तो हम कौन हैं ? इसी लिए तो विघ्नजय नामक एक
 आशय खास हरिभद्रसूरिजी ने बताया है ।

कुछ विघ्न ऐसे होते हैं कि जो अपने शुभ प्रणिधान को
 तोड़ डालते हैं । इसीलिए इससे सावधान होना है । परिषह-जय
 या विघ्न-जय दोनों पर्यायवाची शब्द हैं । परिषहों पर विजयी हुए
 बिना कार्य सिद्ध नहीं होता । अब भी संसार की भयंकरता देखें ।

* आशाओं का ज्वार यहां आता रहता है ।

अपनी आशाएँ, इच्छाएँ इतनी खतरनाक होती हैं कि जो अपनी
 ही साधना बिगाड़ देती हैं । दूसरी तरफ न देख कर हमारे भीतर
 ऐसी स्पृहाएँ, महत्वाकांक्षाएँ हों तो उन्हें छोड़ दें । यशोविजयजी
 महाराज की शिक्षा :

‘पर’ की स्पृहा महा दुःख है ।

निःस्पृहता महा सुख है ।

‘पर की आशा, सदा निराशा, ये है जगजन पाशा ।’

ऐसे मनोरथ ही क्यों करें ? विषय-कषाय सम्बन्धी इच्छाएँ
 ही क्यों करें जिससे दुःखी होना पड़े ।

ऐसा यह संसार-सागर अत्यन्त ही विशाल है, विस्तृत है ।

साधना से संसार अल्प किया जा सकता है । इसीलिए हमने
 संयम-जीवन में प्रवेश किया है ।

ॐ ॐ ॐ

लकड़ा लेने के लिए जाना हो तो भी विधि बताने की छोटी सी बात भी वे चूके नहीं हैं ।

* कल हमने संसार की भयंकरता पर विचार किया । संसार की भयंकरता समझ में आये उसे ही तीर्थ की महत्ता समझ में आती है । धूप की उष्णता के बिना छाया की महिमा कहां समझ में आती है ?

जब तक इस संसार में रहेंगे तब तक जन्म-मरण के चक्कर में भ्रमण करना ही पड़ेगा । यहां कहीं भी एक स्थान पर सतत रहने की सुविधा नहीं है । कर्म सत्ता का स्पष्ट आदेश है कि यहां फिरते ही रहो, सरकते ही रहो । सतत सरकता, सरकाता रहे वही संसार है ।

ऐसे संसार से शीघ्र छूटने के लिए ही हम संयम रूपी जहाज में बैठे हैं ।

* अठारहों पापों से छः काय जीवों को दुःख होता है । उन्हें होने वाले दुःख से अपना ही दुःख बढ़ता है । इसीलिए इन पाप-स्थानकों के सेवन करने का भगवान ने निषेध किया है ।

वास्तव में तो हमें दूसरे जीवों पर उपकार करना चाहिये, परन्तु हम अपकार कर रहे हैं ।

* चतुर्विध संघ तीर्थ रूप है । हम यदि वैसे गुणों वाले हैं तो संघ में हैं; अन्यथा स्वतः ही संघ से बाहर हैं । वल्कलचीरी जैसे व्यवहार से संघ से बाहर होने पर भी गुणों से संघ के भीतर हैं ।

गुणों की सम्पत्ति के आधार से ही हम साधक बन सकते हैं ।

* बैल बोझ उठाने में सुदृढ़ गिने जाते हैं । सत्त्वशाली मुनि भी गच्छ का बोझ उठाते हैं । इसीलिए कहा है कि - 'मुनिगणवृषभैर्धारितं बुद्धिमद्भिः ।'

सचमुच तो यह वृषभ की पदवी लेने योग्य है । वृषभ जैसे मुनियों से ही समुदाय सुशोभित होता है । किसी भी समय गोचरी, पानी, काप निकालने आदि का कार्य हो तो तैयार ।

पूज्य प्रेमसूरिजी के समुदाय में पूज्य मणिभद्रविजयजी, पूज्य धर्मानन्दविजयजी ऐसे वृषभ मुनि थे । किसी भी काम के लिए सदा तैयार ही रहते थे ।

आप शायद यह मानते होंगे कि कोई काम न हो, अध्ययन नहीं करना हो वे गोचरी-पानी आदि का काम करते रहते हैं;

परन्तु यह जान लें कि पूज्य धर्मानन्दविजयजी (बाद में पूज्य धर्मजित्सूरिजी) तब कर्म प्रकृति का अध्ययन करते थे । पिण्डवाडा के समय निशीथ सूत्र पढ़वाते थे । अत्यन्त ही पहुंचे हुए विद्वान् थे, फिर भी काम-काज में भी ऐसे ही मजबूत थे ।

ऐसे मुनि मुनि-वृषभ कहलाते हैं ।

* चतुर्विध संघ का प्रत्येक सदस्य अर्थात् मोहराजा के विरुद्ध संग्राम करने वाला बहादुर योद्धा ।

खारे समुद्र जैसे संसार में हम सब रहते हैं, परन्तु चतुर्विध संघ के यदि हम सदस्य हों तो संसार का खारापन हमारा कुछ नहीं कर सकता ।

दूसरी सब मछलियों खारा पानी पीती है, परन्तु शृंगी मत्स्य खारे समुद्र में भी मीठा (मधुर) पानी पीता है । चतुर्विध संघ का प्रत्येक सदस्य शृंगी मत्स्य है ।

‘उत्तम आचारज मुनि अज्जा, श्रावक-श्राविका अच्छजी;
लवण जलधिमांहे मीठुं जल, पीवे शृंगी मच्छजी ।’

- जिनविजयजी

* सागर का ज्वार उतरने के बाद समझदार यात्री जहाज को छोड़ता नहीं है । जहाज को आप नहीं छोड़ेंगे तो पार उतारने की जवाबदारी उसकी है । तीर्थ रूपी जहाज को यदि हम नहीं छोड़े तो भवसे पार लगाने की जवाबदारी उसकी है ।

* मुनिसुन्दरसूरिजी ने ‘अध्यात्म-कल्पद्रुम’ में यतिशिक्षाधिकार में मुनि को अच्छे झटके लगाये हैं कि तू दिन में नौ बार ‘करेमि भंते’ बोलता है, फिर भी पुनः पुनः ऐसी सावद्य क्रिया करता है ? अतः ‘है मुनि ! तेरा क्या होगा ? तू किस मुंह से स्वर्ग-मोक्ष की आशा रखता है ?

यह शिक्षा दूसरे को नहीं, स्वयं को ही देनी है । हम एक स्वयं को छोड़ कर दूसरों को सलाह देने में होशियार हैं ।

इसी लिए ‘संथारा पोरसी’ में लिखा है - ‘अप्पाणमणुसासइ ।’ इस तरह मुनि अपनी आत्मा को शिक्षा दे ।

अपार पुण्य हो तो ही ऐसी दुर्लभ सामग्री मिलती है और ऐसा मिलने के बाद भी प्रमाद होता रहे तो क्या मानें ? अपार पाप मानें ?

* स्व दुष्कृत-गर्हा कि सुकृत-अनुमोदना अपने जीवन में नहीं है क्योंकि अपने जीवन में शरणागति नहीं है । यदि शरणागति हो तो दूसरे दो आये बिना नहीं रहेंगे ।

आराधना आदि कुछ नहीं हो तो भी निराश न हों । बाल्टी चाहे कुंए में हो, रस्सी हाथ में है । रस्सी हाथ में हो फिर चिन्ता कैसी ? जब तक आयुष्य की डोर हाथ में है, तब तक जागृत हो जायें ।

ऐसी अविच्छिन्न उत्तम परम्परा स्थानकवासी, तेरापंथी, दिगम्बर, कानजी, रजनीश या दादा भगवान के किन्ही अनुयायियों को मिली नहीं है, हमें मिली है; जो अपना कितना सौभाग्य गिना जाता है ?

मुझे तो ऐसी उत्तम परम्परा, उत्तम साधना-पद्धति कहीं भी देखने को नहीं मिली । यहां क्या नहीं है ? यहां उत्तम कक्षा का ध्यानयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, चारित्र्ययोग आदि सभी हैं ।

इतना मिलने पर भी हम संसार-सागर नहीं तैर सकें, इसका अर्थ यह हुआ कि चलते जहाज में से हम सागर में कूद गये हैं; परन्तु डरें नहीं, भगवान को पकड़ लें । ये भगवान आपको चाहे जैसे तूफान में हाथों हाथ पकड़ कर बाहर निकालेंगे ।

‘पण मुज नवि भय हाथो हाथे, तारे ते छे साथे रे ।’

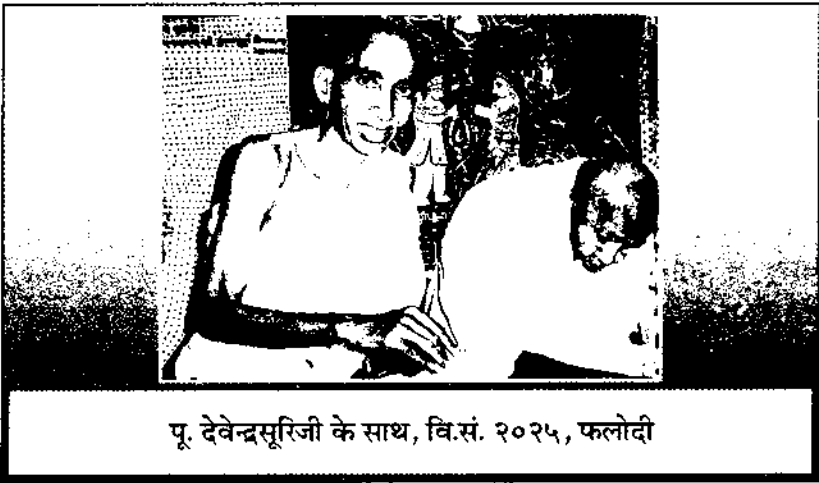
चाहे जैसी विकट परिस्थिति में ये भगवान मार्ग बतायेंगे । अभी ही भरी सभा में धुरन्धरविजयजी ने पत्थर फेंका कि ‘संघ को भगवान भी नमस्कार करते हैं तो ऐसे संघ को नवकार में नमस्कार क्यों नहीं किया ?

उस समय तो मैंने कहा था कि नवकार में संघ को नमन है ही, परन्तु दूसरे ही दिन विचार आया - नमो अरिहंत + आणं - अरिहन्त की आज्ञा को नमस्कार हो । आज्ञा अर्थात् संघ । यहां संघ को नमस्कार आ ही गया ।

इस प्रकार मुझे सिखाने वाले भगवान को कैसे भूला जा सकता है ?

आप भगवान को नहीं छोड़ो तो भगवान आपको नहीं ही छोड़ेंगे । नाम आदि चार में से किसी एक रूप में भगवान को पकड़ रखें ।

ॐ ॐ ॐ



पू. देवेन्द्रसूरिजी के साथ, वि.सं. २०२५, फलोदी

२२-८-२०००, मंगलवार
भाद्र. कृष्णा-७

* 'नमुत्थुणं' सूत्र में गणधरों ने निकट के अनुभव से बताया है कि भगवान उन्हें कैसे लगे ? स्वरूप-सम्पदा, उपयोग-सम्पदा आदि पढ़ने से भगवान की महिमा के सम्बन्ध में अधिक जानकार बन कर हम उनके प्रति अधिक भक्ति वाले बन सकते हैं ।

प्रभु के प्रति ज्यों ज्यों प्रीति में उल्लास बढ़ता है, त्यों त्यों भक्ति बढ़ती है । प्रीति ओर भक्ति बढ़ने पर उनकी आज्ञा पालन करने का उल्लास बढ़ता है ।

साक्षात् परमात्मा मिल जाये तो भी उनके पास समवसरण की देशना के अतिरिक्त अधिक समय तक बैठने को नहीं मिलता । शेष समय में प्रभु के नाम, मूर्ति आदि ही आधार रूप हैं । प्रभु के प्रति प्रेम हो तो प्रभु के नाम, मूर्ति आदि के प्रति प्रेम होगा ही । प्रभु के नाम, गुण, मूर्ति आदि के द्वारा भक्त निरन्तर सम्पर्क में रहता है ।

जिन भगवान के प्रति अपार प्रेम उमड़ता है वे भगवान कैसे होंगे ? यह जानने के लिए मन लालायित बनता ही है । यह

भी जिन्होंने ने साक्षात् भगवान देखे हों उनके मुंह से भगवान का वर्णन सुनना कितना प्रिय लगता है ? गणधरों ने भगवान को साक्षात् देखे हैं । उन देखे हुए भगवान का 'नमुत्थुणं' में वैसा ही वर्णन है ।

* मुनिचन्द्रसूरिजी ने पंजिका में लिखा है कि तीर्थ रहे तब तक भगवान का उपकार चालु ही रहता है, इस समय भी चालु है और अभी साढ़े अठारह हजार वर्षों तक उपकार चालु ही रहेगा । भोजनशाला चलती हो तो अन्न-दान का उपकार होता रहता है, उस प्रकार यहां धर्म-दान का उपकार होता रहता है ।

तीर्थ का एक ही कार्य है - जीवों को संसार से पार उतारना । यह कार्य पांचवे आरे के अन्त तक चलता ही रहेगा; तब तक भगवान की शक्ति सक्रिय रहेगी । जो कोई उस शक्ति का स्पर्श करेगा, उसका कल्याण होगा ही ।

* 'ध्यान-विचार' के २४ वलय देखो तो ख्याल आयेगा कि ये भगवान से भिन्न नहीं हैं, भगवान के साथ जुड़े हुए ही हैं ।

भगवान मार्ग-दर्शक हैं और स्वयं मार्ग भी हैं ।

'नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र ! पन्थाः ।

- भक्तामर

भगवान को छोड़ कर दूसरा कोई मुक्ति का मार्ग नहीं है ।

* माता-पिता की सम्पत्ति पुत्र की है, उस प्रकार भगवान की सम्पत्ति भक्त की है । भक्त ही भगवान का सच्चा उत्तराधिकारी है ।

* 'प्रश्नव्याकरण' में अहिंसा के ६० पर्यायवाची नाम हैं, जिनमें 'सिद्धों का आश्रय-स्थान' (केवली भगवान का स्थान) नाम भी है ।

अर्थात् जो अहिंसा पर बैठता है वही सिद्धशिला पर बैठ सकता है । केवली भगवान का स्थान भी अहिंसा है ।

चरण-करण सित्तरी अहिंसा के प्रकार हैं ।

अहिंसा की आराधना के बिना, तीर्थ की आराधना के बिना क्या कोई सिद्ध बन सकता है ? इसी लिए अहिंसा को सिद्धों का आश्रय-स्थान कहा है ।

अहिंसा, संयम, तप के पालन में जितनी कच्चाई (कमी) होगी, तीर्थ की आराधना में उतनी ही कच्चाई (कमी) रहेगी ।

श्रावक के पास जिस प्रकार स्थावर-जंगम सम्पत्ति होती है उस प्रकार भगवान के तीर्थ की भी सम्पत्ति होती है । इसीलिए लिखा है - त्रैलोक्यगतशुद्धधर्मसम्पद्युक्तमहासत्त्वाश्रयं प्रवचनम् । तीनों लोकों में विद्यमान शुद्ध धर्म की सम्पदावाले सत्त्वशाली जीव भगवान की ही सम्पत्ति हैं ।

यहां ढाई द्वीप न लिख कर त्रैलोक्यगत लिखा, क्योंकि असंख्य देशविरतिधर, असंख्य सम्यग्दृष्टि देव, नारक ढाई द्वीप से बाहर हैं, उन सबको समाविष्ट करने के लिए त्रैलोक्यगत लिखा है । यहां दृष्टि अत्यन्त ही विशाल है । हमारी दृष्टि संकुचित है । हम अपनों को भी समाविष्ट नहीं कर सकते । भगवान का संघ इतना विशाल है कि समग्र ब्रह्माण्ड को अपने भीतर समाविष्ट कर लेता है ।

भगवान का यह संघ अचिन्त्य शक्ति युक्त कहा गया है । अचिन्त्य अर्थात् चित्त से विचार नहीं किया जा सके ऐसी शक्ति से युक्त ।

यह संघ अनेक प्रकार से उपकार करता ही रहता है ।

नलिनीगुल्म विमान का वर्णन सुन कर जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त अवन्तीसुकुमाल को लगा था कि निश्चय ही ये मुनि वहां जाकर आये प्रतीत होते हैं, अन्यथा वे ऐसा वर्णन कैसे कर सकते थे ?

इसीलिए लिखा है - 'अविसंवादि अर्थात् संवादि ! सत्य ! जैसा है वैसा कहने वाला यह प्रवचन है ।

प्रवचनं सङ्घो वा । ऐसा इसलिए लिखा कि प्रवचन (द्वादशांगी रूप प्रवचन) का आधार संघ है । संघ के बिना प्रवचन कहां रहे ?

तीर्थ किसे कहते हैं ? चतुर्विध श्रमण संघ तीर्थ कहलाता है, साधु-साध्वी तो श्रमण हैं ही । श्रावक-श्राविकाओं को भी यहां श्रमण कहा है, क्योंकि भविष्य में वे श्रमण बनने वाले हैं और तप आदि साधना के लिए श्रम आदि करते रहते हैं । श्रम करते हैं वे श्रमण । इस अर्थ में चतुर्विध संघ के समस्त सदस्य 'श्रमण' हैं ।

‘श्रमण-प्रधान संघ’ ऐसा अर्थ भी किया जा सकता है, क्योंकि यहां साधुओं की प्रधानता है ।

* ‘सुअं मे आउसं ।’ हे आयुष्मान् ! जम्बू ! जिस तरह मैं ने भगवान के पास सुना उस तरह कहता हूं - त्ति बेमि ! समस्त आगमों के अन्त में कहा है - ‘त्ति बेमि’ उस तरह (अर्थात् भगवान ने कहा उस तरह, मेरी बुद्धि से नहीं) मैं कहता हूं ।

यहां स्व-बुद्धि का कोई स्थान नहीं है ।

* नौ का अंक अखण्ड है । किसी भी संख्या के साथ उसको गुणा करो तो उस संख्या के अंकों के योगफल में अन्त में नौ ही आयेंगे । उदाहरणार्थ $9 \times 2 = 18$ ($1 + 8 = 9$)

इस प्रकार पूर्ण को चाहे जहां ले जाओ, उसमें से चाहे जितना निकालो कि उसमें चाहे जितना डालो । पूर्ण पूर्ण ही रहेगा ।

ओं पूर्णमदः पूर्ण पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।

पूर्णस्य पूर्णमादाय, पूर्णमेवावशिष्यते ॥

- उपनिषद्

* अपनी समस्त प्रवृत्ति के मूल में सूर्य है । सूर्य नहीं उगे तो अंधेरे में प्रायः कोई प्रवृत्ति नहीं हो सकती, उस प्रकार तीर्थ के बिना कोई भी धर्म प्रवृत्ति नहीं हो सकती । अपनी धर्म-प्रवृत्ति का मूल यह तीर्थ ही है, ऐसा स्वीकार करना पड़ेगा ।

भव्य जीवों को इस प्रकार धर्म में प्रवर्तन कराने से भगवान परम्परा से अनुग्रह (उपकार) करने वाले हैं ।

भगवान अनुग्रह (उपकार) करने वाले हैं और हम अपकार करने वाले तो नहीं हैं न ?

जैनों के पर्यूषण पर्व में ही जीवदया आदि के लिए कितना फण्ड होता है ? कितनी तपस्याएँ होती हैं ? तप होने से जीवों को अभयदान मिलता है न ? मुसलमानों के त्यौहार ‘बकरी ईद’ आदि के समय बकरे कटते हैं, जबकि यहां जीवों को अभयदान मिलता है । इसी लिए तीर्थकरों को परम्परा से अनुग्रह करने वाले कहा गया है ।

यहां पंजिकाकार लिखते हैं कि परम्परा से (अर्थात् अनुबन्ध से) अपनी तीर्थ की अनुवृत्ति के समय तक सद्गति आदि के



जयपुर प्रवेश, वि.सं. २०४२

२३-८-२०००, बुधवार
भाद्र. कृष्णा-८

तीर्थ करते हैं वह तीर्थकर है। इस तीर्थ की शक्ति को हृदय में स्थापित करता है वह चतुर्विध संघ है।

‘सर्वलोअभाविअप्पभाव’ ‘अजित शान्ति’ में प्रयुक्त भगवान का यह विशेषण अत्यन्त ही अद्भुत है। इस पद के दो अर्थ हो सकते हैं -

- (१) सर्वलोकभावितप्रभाव - समस्त लोक में जिनका प्रभाव भावित हो चुका है ऐसे भगवान।
- (२) ‘सर्वलोकभावितात्मभावः’ जिन्होंने ने समस्त लोक के साथ आत्मभाव भावित किया है। यह दूसरा अर्थ अद्भुत है।

साधु भी जब तक समस्त जीवों को आत्मभूत नहीं देखते, तब तक साधुत्व में प्राण नहीं आते। आत्म-तुल्य नहीं, परन्तु समस्त जीवों को आत्मभूत मानना। यह साधना की पराकाष्ठा है।

ऐसा हो तो ही समस्त आत्माओं में परमात्मा दिखाई देंगे, जीव में शिव दिखाई देंगे। ऐसा दिखाई दे तो क्या किसी भी जीव की आशातना होगी? आशातना मात्र भगवान की नहीं होती, जीवों की भी होती है।

‘सर्वपाणभूअजीवसत्ताणं आसायणाए ।’

जीव तो सिद्धों के साधर्मिक बन्धु हैं। उनके साथ चाहे जैसे कैसे व्यवहार किया जाये ? शुद्ध नय की दृष्टि से यह जीव भगवान है। उनका अपमान तो भगवान का अपमान है। भारत सरकार के एक सैनिक का अपमान भारत सरकार का अपमान है। ये जीव भी भगवान का परिवार है। भगवान ने सबके साथ एकता की है।

* सूर्य की तरह भगवान का भी स्वभाव है - उपदेश का प्रकाश देना, तीर्थ की स्थापना करना। मौन रहने से बाल जीव समझते नहीं हैं। शब्दों की दुनिया में रमण करते जीवों को शब्दों से ही समझाना पड़ता है। अशब्द नहीं चलते। हमारे लिए ही भगवान शब्दातीत अवस्था में गये हुए होने पर भी शब्दों की दुनिया में आते हैं। भगवान की यही करुणा है। उसे देखने के लिए अपने पास दृष्टि चाहिये।

* शास्त्रीय पदार्थों में स्व-उत्प्रेक्षा कि मति-कल्पना नहीं चलती। यहां तो सम्पूर्ण शास्त्राधार ही चाहिये।

* मैं नित्य पीछे की थोड़ी पुनरावृत्ति करके ही आगे बढ़ता हूं क्योंकि मुझे विश्वास है। आप पुनरावृत्ति नहीं करते हो। आप यदि पुनरावृत्ति करते हों तो मुझे पुनरावृत्ति कराने की आवश्यकता ही न रहे।

* यह मैं बोलता हूं, वह मात्र भगवान के बल से ही बोलता हूं, यह मानता हूं। बाकी उग्र के हिसाब से तो बोला नहीं जा सकता।

जो कुछ भी बोलता हूं वह भगवान के प्रभाव से ही बोलता हूं और भगवान के चरणों में ही उसे समर्पित करता हूं।

इन भगवान को मैं कदापि भूलता नहीं हूं और आपको भी यही सलाह देता हूं। भगवान को कदापि न भूलें। ‘साधना में बहुत ही आगे बढ़ गया हूं। क्षमा आदि गुण आत्मसात् हो गये हैं। अतः अब भगवान की आवश्यकता नहीं है’ - यह मान कर भगवान को छोड़ मत देना। अपने गुण तो कांच की बरनी (भरनी) हैं। फूटने में क्या देर लगती है ? क्षायोपशमिक भाव को बना रखना पड़ेगा ही। भगवान के बिना उन्हें बनाये रखना असम्भव है।

क्रिया बार-बार इसके लिए ही करनी है । जीवनभर यही क्रिया क्यों करें ? यह न सोचें । नित्य वही रोटी-सब्जी, चावल-दाल आदि खाने वाले हम नित्य-प्रति की क्रिया से ऊब जाते हैं, परन्तु यह खाने आदि से क्यों नहीं ऊबते ?

याद रखें - अपनी साधना की कमाई लूटने के लिए ये चोर तैयार ही हैं । हम तनिक गाफिल रहे तो गुण्डे आप पर सवार हो जायेंगे । इसी लिए इस गुण-कमाई को सम्हालकर रखना है ।

‘गुणवद्भ्यै ततः कुर्यात्, क्रियामस्वलनाय वा ।

एकं तु संयमस्थानं, जिनानामवतिष्ठते ॥’

- ज्ञानसार

* कैसे अद्भुत भगवान हमें मिले हैं । जगत् में लाखों, करोड़ों, अरबों मनुष्यों को जो नहीं मिले वे हमें मिले हैं ।

ऐसा अहोभाव कायम रहे तो प्रभु के प्रति भक्ति प्रकट हुए बिना नहीं रहेगी ।

ऐसा भक्त ही प्रभु के समक्ष कहता है -

‘सेवणा आभवमखंडा... भवे भवे तुम्ह चलणाणं’ मुझे सद्गुरु की सेवा और भगवान के चरणों की सेवा भवो भव प्राप्त हो ।

सुगुरु आदि सामग्री प्राप्त करने वाले भी भगवान ही हैं । भगवान के साथ यदि प्रेम जुड़ गया तो अपनी गुण-सम्पत्ति अनुबंध वाली बन जायेगी । जन्मान्तर में भी यह गुण-सम्पत्ति साथ चलेगी ।

(५) संयमसंबुद्धाणं ।

अन्य दर्शन वालों की तरह हम भगवान का अनुग्रह नहीं मानते । महेश के अनुग्रह से ही ज्ञान होता है उस प्रकार एकान्त से हम नहीं मानते । हम यह मानते हैं - सामने जीव का उपादान भी तैयार चाहिये । सूर्य को सहने के लिए आंखें भी तैयार चाहिये । उल्लू बिचारा सूर्य को सहन नहीं कर सकता ।

जीव की योग्यता भी महत्त्वपूर्ण है जो इस पद से स्पष्ट होता है । भगवान को प्रथम बार बोध प्राप्त होता है उसमें अपनी योग्यता ही मुख्य होती है ।

(घोर वर्षा के कारण पतरों की आवाज आने के कारण समय से पूर्व वाचना समाप्त की गई ।)

ॐ ॐ ॐ



२४-८-२०००, गुरुवार

भाद्र. कृष्णा-९

* भगवान का यह लोकोत्तर तीर्थ देख कर अनेक भव्य आत्मा प्रसन्न होती हैं। यह प्रसन्न होना ही योग-बीज है। बीज पड़ने पर ही अगली प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। जिन्होंने ने पूर्व जन्म में बीज डाले होंगे, उनके अंकुर कभी न कभी अवश्य फूटेंगे।

भगवान मिलते हैं परन्तु बीज कब पड़ते हैं ? जब आदर जागृत होता है तब बीज पड़ते हैं। भगवान अनेक बार मिले, परन्तु हमारे भीतर अहोभाव जागृत नहीं हुआ, आदर उत्पन्न नहीं हुआ। इसीलिए हमारा ठिकाना नहीं पडा। अब भी आदर उत्पन्न नहीं हुआ तो ठिकाना पड़ जायेगा, यह न मानें।

योगावंचक प्राणी को भगवान की वाणी अमृत के समान मधुर लगती है। हम देखते हैं कि किसी को भगवान की वाणी अच्छी लगती है, किसी को अच्छी नहीं लगती।

दो भाई सदा साथ रहते थे। किसी क्रिया में भेद नहीं था। पढ़ना, खेलना, भोजन करना, घूमना सब साथ-साथ करते थे; परन्तु भगवान की देशना सुन कर एक को आनन्द हुआ, उसे समकित मिला। दूसरे को कोई भी आनन्द नहीं आया।

एक बोला - आनन्द आया । दूसरा बोला - परेशान हो गया ।

आज तक कभी नहीं और आज जुदाई क्यों ? दोनों विचार में पड़ गये । दूसरे दिन छोटे भाई ने भगवान को पूछा - मुझे आनन्द आया, बड़े भाई को आनन्द क्यों नहीं आया ?

भगवान ने पूर्व जन्म बताते हुए कहा, 'तुम दोनों भाई थे । चोरी करने के धंधे में पड़ कर नामी चोरों के रूप में प्रसिद्ध हुए । कोतवाल ने पीछा किया परन्तु दोनों दौड़ कर गुफा में घुस गये । वहां एक मुनि काउस्सग कर रहे थे । एक को आनन्द हुआ - कहां मेरा नीच जीवन ? कहां यह उत्तम जीवन ? उसने अपनी निन्दा और मुनि की प्रशंसा की । ऐसा न हो तब तक दोष नहीं जाते और गुण नहीं आते । जब तक पर-निन्दा होती है, तब तक गुण-दृष्टि नहीं आती । स्व-निन्दा आने पर गुण-दृष्टि आती ही है ।

स्व-निन्दा होने पर स्व-दुष्कृत गह्रा आती है ।

फिर गुण-दृष्टि आने पर सुकृत की अनुमोदना आती है ।

फिर गुण-सम्पन्न भगवान की शरणागति आती है ।

यही क्रम है ।

दूसरे ने मुनि को देख कर सोचा - देखा ? कोई धंधा नहीं मिलने के कारण 'बावा' बन कर बैठ गये ।

मुंड मुंडाये तीन गुण, मिटे शिर की खाज ।

खाने को लड्डू मिलें, लोग कहें महाराज ॥

दूसरे ने इस प्रकार मुनि को धिक्कारा ।

इसी कारण से एक को आनन्द हुआ, दूसरे को नहीं हुआ ।

मेरी बात समझ में आती है क्या ?

यह भगवान की वाणी सुनकर आनन्द नहीं आता हो तो समझें की अभी तक हम दुर्लभबोधि हैं ।

आनन्द आता हो तो समझें कि पूर्व जन्म में कभी कहीं बीज पड़ गया है ।

(५) सयंसंबुद्धाणं

बाहर से चाहे यों लगता हो कि भगवान ने भवान्तर में दूसरों

से उपदेश प्राप्त किया है। हकीकत में तो वे स्वयं अपनी योग्यता से प्राप्त करते हैं। इसीलिए भगवान स्वयंसंबुद्ध कहलाये हैं ऐसा हरिभद्रसूरिजी का कथन है। जो मानते हैं कि महेश के अनुग्रह से ही बोध होता है इस पदसे उस मत का खण्डन हुआ।

अडियल घोड़े के समान कुछ खड़ूस चाहे जितना समझाने पर भी समझते नहीं हैं। कुछ कठोर मूंग ऐसे होते हैं जो पकते ही नहीं हैं। मूंगशेल पर पुष्करवर्त मेघों की वृष्टि हो तो भी वे भीगते नहीं हैं, उस प्रकार कितनेक ऐसे अयोग्य होते हैं कि उन्हें चाहे जितने समझाओ, परन्तु वे समझते ही नहीं।

यह उपादान की अयोग्यता है। भगवान का उपादान इतना तैयार होता है कि गुरु को विशेष कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। उनके लिए थोड़ा निर्देश, थोड़ा संकेत पर्याप्त होता है।

कोमल पौधे को थोड़ा सा ही कुल्हाड़ी का स्पर्श होते ही वह कैसा कट जाता है ?

भगवान को होने वाला सम्यग्दर्शन 'वरबोधि' कहलाता है। जात्य रत्न की तरह उनमें यह सहज योग्यता होती है। भगवान का तथाभव्यत्व अनादि काल से ही विशिष्ट होता है।

'नमुत्थुणं' के प्रत्येक विशेषण से अन्य अन्य भक्तों का खण्डन होता जाता है। गणधर भगवन्तों के द्वारा स्तुति ही उस प्रकार की होती है जिसमें उनकी स्तुति अरिहन्त को ही लागू पड़ती है, अन्य का व्यवच्छेद होता जाता है।

(६) पुरिसुत्तमाणं

भगवान पुरुषों में उत्तम हैं।

बौद्ध मानते हैं कि समस्त जीव समान हैं।

यहां उस मत का खण्डन हुआ है।

भगवान में कतिपय ऐसी विशेषताएं हैं कि जो दूसरों में देखने को नहीं मिलती।

भगवान की कतिपय विशेषताएं :

(१) 'आकालमेते परार्थव्यसनिनः ।'

भगवान सदा के लिए परोपकार-व्यसनी होते हैं। जिसे किसी वस्तु का व्यसन होता है वह उसके बिना रह ही नहीं सकता।

यह उसका शौक ही होता है । वनस्पति में कल्पवृक्ष, पत्थर में चिन्तामणि बनकर वहां भी परोपकार चालु ही... ! जिस प्रकार वणिक्-पुत्र जेल में जाये तो भी धंधा चालु रखता है न ? भगवान का एकेन्द्रिय में भी परोपकार का धन्धा चालु होता है ।

जगशीभाई : साहेबजी ! यहां पालीताणा में भी धंधा चालु है ।

पूज्यश्री : वाचना में तो कोई धंधा नहीं करता न ?

सारा संसार स्वार्थपूर्ण है । सम्पूर्ण जगत् स्वार्थ के काजल से भरा हुआ है । स्वार्थ की बात हो तो आगे । परोपकार की बात आये तो चेहरा नीचे झुक जाता है । यह हम में से लगभग सबका स्वभाव है । भगवान का स्वभाव इससे विपरीत होता है ।

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के बाद तो यह गुण इतना परकाष्ठा पर पहुंचता है कि समस्त जीवों को शासन-रसिक बनाने की भावना उत्पन्न होती है ।

मैं मोक्ष में जाऊं और दूसरे यहां संसार में रहें, यह कैसे चलेगा ? मेरा जोर चले तो मैं सबको मोक्ष में पहुंचा दूँ ।

ऐसी भावना से ही तीर्थंकर नामकर्म बांधते हैं ।

इसके प्रभाव से ही भगवान बड़े समूह को तीर्थंकर के भव में धर्म मार्ग की ओर मोड़ सकते हैं ।

चतुर्विध संघ के सदस्यों को भगवान ऐसा तैयार करते हैं कि वे भी दूसरों को धर्म-मार्ग पर चढ़ाते रहते हैं ।

तुंगिया नगरी के श्रावक ऐसे थे कि कच्चे साधु वहां जाने में घबराते थे ।

एक साधु महाराज ने तुंगिया में प्रवेश किया तब उनका ओषा (रजोहरण) उल्टा रखा था - दशी आगे और डंडी पीछे ।

यह देख कर श्रावकों ने उन्हें वन्दन नहीं किया ।

फिर पता लगा तब मुनि ने अपनी भूल स्वीकार की । वहां ऐसे श्रावक थे ।

यह सम्पूर्ण तीर्थ की स्थापना परार्थ-रसिकता के गुण पर से ही हुई है । परोपकार करना तो ऐसा करना चाहिये कि फिर उसे कदापि दूसरे किसी की आवश्यकता न पड़े ।

भिखारी को आप कितना देते हैं ?



पू. हेमचन्द्रसूरिजी के साथ, गिरनार अंजनशलाका, वि.सं. २०४०

२-९-२०००, शनिवार
भादौ शुक्ला-४ : खीमईबेन धर्मशाला
(कल्पसूत्र-वांचन के बाद चतुर्विध संघ के समक्ष)

जिसके लिए हमने व्याख्यान सुने, कर्तव्य किये, वह 'क्षमापना' है ।

'खमिअब्बं खमाविअब्बं, उवसमिअब्बं उवजमाविअब्बं ।'

यह अपना धर्म है । छोटे-बड़े सब परस्पर क्षमापना करते हैं । क्षमा मांगनी भी है और देनी भी है ।

जब तक कषाय नष्ट नहीं हुए, तब तक उन्हें दबे हुए शत्रु समझें । वे कभी भी उदय में आ सकते हैं ।

मोह का कार्य है - जीव को संकल्प-विकल्प में डालना ।

चारित्र का कार्य है - जीव को संकल्प-विकल्प से छुड़वाना ।

दोनों अपना कार्य करते हैं । आत्मा जहां रहे उसकी जीत है । आत्मा का उपयोग जब धर्मराजा में होता है तब साधना होती है और जब मोहराजा में होता है तब विराधना होती है ।

इसी बात को सब भिन्न-भिन्न प्रकार से समझाते हैं ।

'आश्रवः सर्वथा हेयः उपादेशश्च संवरः ।'

- वीतराग स्तोत्र

मन-वचन-काया का निरोध तो अयोगी ही कर सकता है तब तक उन्हें शुभ में प्रवृत्त करें, कर्म-बंध से छुड़ाये ऐसे कार्य करना ही आधार है; परन्तु वे इस समय कर्मों के अधीन हैं। वे संकल्प-विकल्प कराते हैं। मोह के मुख्य दो पुत्र हैं - रग एवं द्वेष।

द्वेष के पुत्र हैं क्रोध और मान तथा रग के दो पुत्र हैं - माया व लोभ।

इस प्रकार विशाल परिवार है मोह का।

महा पुण्योदय से जैन-शासन मिल गया है। उसके रहस्य बतानेवाले गुरु मिल गये हैं। अतः यह जीवन ऐसा जियें कि कर्मों के जाल में से मुक्त बन सकें।

भूल चाहे जिसकी हुई हो, क्षमा देने-लेने में कोई आपत्ति नहीं है। चण्डप्रद्योत ने अपराध किया फिर भी उदयन ने क्षमा याचना की। वह तो आराधक बना ही। हमें भी क्षमा को अपना कर आराधक बनना है।

द्वेष कांट है। भगवान उसे निकालना चाहते हैं। दूसरा कोई निकाल नहीं सकता। नित्य देवसिअ-राइअ, पन्द्रह दिन बाद पक्खी, चार महिने चौमासी, बारह महिनों में संवत्सरी प्रतिक्रमण करने का इसीलिए विधान है।

बारह महिनों के बाद प्रतिक्रमण नहीं करो तो आपका कषाय अनंतानुबंधी कहलाता है और वह आपको दुर्गति में ले जाता है।

क्षमा के आलम्बन से कषायों को नष्ट करने हैं।

स्वयं उपशान्त बन कर, दूसरे को उपशान्त बनाकर हमें आराधक बनना है। श्रमण जीवन का सार 'उपशम' है। मुनि का दूसरा नाम भी 'क्षमाश्रमण' है।

मुख्य रूप से कल्पसूत्र साधुओं के लिए ही है।

कोई भी कार्य गुरु को पूछे बिना अथवा ज्येष्ठ व्यक्ति को पूछे बिना नहीं किया जा सकता। यदि करते हैं तो विराधक बनते हैं, क्योंकि 'आयरिया पच्चवायं जाणांति।' सर्वतोमुखी ज्ञान गुरु के पास होता है।

गोचरी को देखते ही गुरु को गन्ध से भालूम होने पर उन्होंने

ने अमुक वस्तु उसमें से निकाल ली, क्योंकि उसमें विष था ।
गुरु को ही यह मालूम हो सकता है ।

हेमचन्द्रसूरिजी की मृत्यु इसी तरह से हुई थी ।

पांच पडले इसीलिए रखने पड़ते हैं ।

गोचरी के समय योगी ने नाखून के द्वारा लड्डू में विष मिला दिया था, जिससे सूरिजी की मृत्यु हो गई थी ।

क्रोध का कांट निकालने के लिए ही यह महापर्व है ।

जिनके साथ क्रोध हुआ हो, उनके साथ खास तौर से क्षमापना करनी है ।

अन्तर से क्षमा मांगे, दें और अपनायें ।

ये कल्पसूत्र बनाने वाला, इनका रचयिता मैं नहीं हूँ । भगवान् महावीर स्वामी ने राजगृही के गुणशील चैत्य में अनेक देव-देवियों, नर एवं नारियों के मध्य यह सब बताया है ।

‘मैं ने तो मात्र ये अक्षर लिखे हैं’ - ऐसा भद्रबाहुस्वामी का कथन है । यह ‘दशाश्रुत स्कन्ध’ का आठवां अध्ययन है ।

ॐ ॐ ॐ

जिनवाणी - श्रवण का माहात्म्य

हमें परदेश जाना पड़ता है । प्रवचन देते समय कहा गया था कि जो मांसाहार करते हैं, उनके हाथ का हम भोजन नहीं करते । उसके पूर्व के दिन एक बहन ने जो मांसाहारी थी हमें कोई वस्तु परोसी थी ।

‘वे बहन मेरे पास आई कि मुझे प्रायश्चित्त दो ।’

मैंने कहा, ‘प्रायश्चित्त हम करेंगे ।’

फिर तो दूसरे दिन प्रवचन में से उठ कर वे मेरे पास आई और स्वयं ने ही मांसाहार के त्याग का नियम लिया । भले अज्ञानवश जीव पापाचार करते हैं, परन्तु किसी पुण्योदय से मार्ग पर चढ़ने का प्रयत्न करते हैं ।

- सुनंदाबेन वोरा



पदवी प्रसंग, मद्रास, वि.सं. २०५२, माघ शु. १३

३-१-२०००, सोमवार
भादौ शुक्ला-५ : सात चौबीसी धर्मशाला

सामूहिक क्षमापना स्थयात्रा (शोभायात्रा) के चढ़ावे

पूज्य आचार्य नवरत्नसागरसूरिजी :

जिनशासन की महान् प्रभावना करने वाली इस शोभायात्रा में (वरघोड़े में) सभी को उपस्थित रहना है। जिनशासन की प्रभावना में हम कुछ भी निमित्त बनें, ऐसे भाग्य कहां से ?

पूज्य आचार्य हेमचन्द्रसागरसूरिजी :

स्थयात्रा का प्रयोजन क्या है ? कान खोल कर सुन लो - आप या मैं - हम सबने सर्व प्रथम जैन धर्म प्राप्त किया, उसका बीज कैसे पड़ा ? किसी भव में यह स्थयात्रा देखकर अहोभाव पेदा हुआ होगा ! प्रशंसा ही बीज है ।

कुमारपाल की स्थयात्रा में १८०० करोड़पति होते थे । कलकत्ते की स्थयात्रा में बंगाली बाबू नाचते थे । प्रत्येक के सिर पर टोपी होती थी । हम पूर्वजों के पुण्य के कारण कुछ फूल गये हैं । पुण्य की थाती आगे चलानी हो तो यह परम्परा की थात आगे

संभालनी पड़ेगी । प्रत्येक को अन्त तक साथ रहना है । इसके लिए मैं विशेषतः पूजनीय साध्वीजी भगवंतो को कहूंगा, विनती करूंगा ।

कल मात्र दर्शन करके चले नहीं जायें, अन्त तक जुड़े रहें । प्रत्येक व्यक्ति उपस्थित रहे तो कितनी शोभा बढ़े ?

पूज्य धुरन्धरविजयजी :

पर्यूषण से पूर्व जिस प्रकार लाभ लिया, उसमें शिखर स्वरूप यह रथयात्रा निकलेगी । उसमें सभी को भाग लेना है । जूनागढ़ में महाशिवरात्रि की आधी रात को भवनाथ की रथयात्रा निकलती है । उसे आप कभी देखना । समस्त संन्यासी उपस्थित होते हैं । संन्यासिनियों वहां नहींवत् होती हैं । यहां साध्विजियों अधिक हैं ।

अहमदाबाद में आषाढ़ शुक्ला-२ को निकलने वाली जगन्नाथ की रथयात्रा भी भव्य निकलती है । चतुर्विध संघ के समस्त सदस्य दृष्टा की अपेक्षा दृश्य बन जायें तो अधिक उत्तम होगा । दर्शकगण दूसरे हों, हम नहीं । प्राचीन काल में पाटलिपुत्र आदि नगरों में निकलने वाली रथयात्रा में सभी उपस्थित रहते थे । महान् सम्राट् होते वे भी सम्मिलित होते थे । अरे, सम्मिलित क्या होते, भगवान का रथ खींचते थे । भगवान के समक्ष तो हम पशु ही हैं न ? घर के बैल तो सभी हैं न ? अलबत् बिना नथ के बैल हैं ! ये तो अनेक बार बने, पर भगवान के रथ में बैल बनने का सौभाग्य कहां से ?

नंगे सिर कहां जा सकते हैं, जानते हैं न ? यहां सभी सिर पर कुछ डाल कर आयें । कुछ नहीं हो तो धोती को रंग कर पहन आयें । एक हजार जितने मुकुट तैयार हैं और 'खीमई' धर्मशाला में भी १५० साफे तैयार हैं ।

ढोर कदापि सिर पर नहीं बांधते । हम नहीं बांधे तो ढोरों जैसे नहीं हैं क्या ?

बैठ कर खायें वे आदमी हैं ।

खड़े-खड़े खायें वे ढोर हैं । इसी लिए 'बुफे' को मैं 'बफैलो' कहता हूं । साधु बने बिना सिर नंगा नहीं रखा जाता । सिर मूल्यवान है । उसे खुला (नंगा) नहीं रखा जाता । मारवाड़

शिवा शब्द भी है ।

यह भावना भावित बनायें तो ही भगवान के भक्त बन सकते हैं । हमारे समस्त प्रतिक्रमणों में यह भावना है ही । 'इरियावहियं' में भी है ही । क्षमा-मैत्री जुड़े हुए हैं । सम्पूर्ण जैन-शासन करुणामय है ।

पर्यूषण तथा उनके कर्तव्य सांवत्सरिक क्षमापना के लिए ही तो है ।

परस्पर क्षमा के लिए ही यह आयोजन था । परन्तु चढ़ावों में आप यह सब भूल गये । यद्यपि लोगों के उठने से तो मेरे लिए अच्छा ही हुआ, क्योंकि थोड़े मनुष्यों तक ही मेरी आवाज पहुंचती है ।

मेरी ओर से कि किसी महात्मा की तरफ से किसी को भी कष्ट अथवा पीड़ा हुई हो तो उसके लिए समस्त महात्माओं की ओर से मैं मिच्छामि दुःखदं मांगता हूं ।

ॐ ॐ ॐ

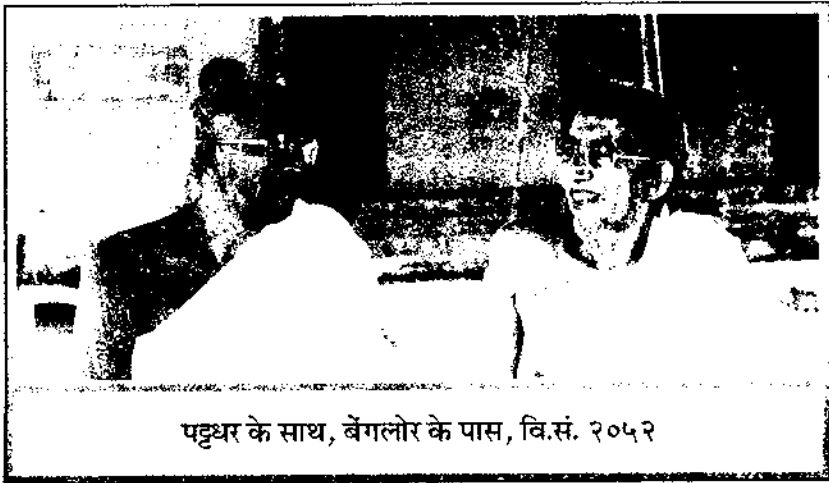
इस पुस्तक को पढ़ने से सर्वाधिक तो गुरुदेव के प्रति आदर-भाव था, उसमें वृद्धि हुई है और अन्तर झुक गया । गुरुदेव इतने महान् हैं कि जिन्होंने छोटे-छोटे सूत्र जो निर्दोष अवस्था में ही पोपट की तरह कण्ठस्थ किये हों और रुटीन में भी बोलते रहते हों, उनके लिए निरन्तर उपयोगपूर्वक एवं चिन्तनपूर्वक कैसे रहस्य खोले हैं ? नवकार, लोगस्स अथवा शकस्तव की महानता इन वाचनाओं को पढ़ने के बाद ही समझ में आई ।

- साध्वी विरागरसाश्री

ॐ ॐ ॐ

पूज्यश्री का प्रत्येक शब्द आत्मा में भगवद्भाव उत्पन्न करके अन्तिम शुद्धावस्था का स्थान बताने के लिए समर्थ बनता है ।

- साध्वी पुष्पदन्ताश्री



पट्टधर के साथ, बेंगलोर के पास, वि.सं. २०५२

१०-९-२०००, रविवार
भादों शुक्ला-१२ : खीमईबेन धर्मशाला
सम्मान समारोह

धर्मीचंदजी विनायकिया (विजयवाडा) :

यहां आकर मुझे अत्यन्त लाभ हुआ । मैं तो मानता हूँ कि चातुर्मास में रहना मेरे लिए शिविर ही हो गया । अनेक प्रकार के धर्माचरण मेरे जीवन में 'प्रेक्टिकल' हो गये ।

अगाधता समुद्र की लज्जा रही है ज्ञान से ।

उदारता भी कर्ण की हारी है श्रुतदान से ।

सौम्यता को देख कर चांद भी करता रुदन,

सूरि कलापूर्ण के चरण में हम करे शत शत नमन ॥

पूज्यश्री की निश्चा में हम सब एक दूसरे के लिए कल्याण-मित्र बने हैं । पूज्य गुरुदेव को प्रार्थना है कि हमें भी मुक्ति में साथ ले जायें ।

रजनीकान्तभाई, मदनलालजी कावेडिया आदि आराधकों ने भी अपने उद्गार व्यक्त किये ।

अध्यात्मयोगी पूज्य आचार्यश्री :

शत्रुंजय की गोद में ऐसा अनुमोदना का अवसर अपनी

आध्यात्मिक पूंजी है। किसी मिल आदि की एजेन्सी मिलने पर आनन्द होता है तो यहां अनुमोदना का अवसर मिलने पर क्या आनन्द नहीं होता ? आध्यात्मिक गुणों के विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक धर्म-वाक्णी है गुण-गुणवान की प्रशंसा। अनन्त पुद्गल परावर्त के बाद ही यह मिलता है। यही बीज है। बीज के बाद में अंकुर आदि दुर्लभ नहीं है, बीज ही दुर्लभ है।

इस चातुर्मास में दोनों समाजों ने (वागड़ बीसा ओसवाल तथा वागड़ सात चौबीसी बीसा श्रीमाली) मिलकर योजना बनाई। ओसवाल समाज भाग्यशाली रहा कि ठेठ चैत महिने से अभी तक उन्हें लाभ मिला। आपका अखण्ड भक्तिभाव देख कर प्रसन्नता हुई है। हमारे अतिरिक्त किसी ने विहार भी नहीं किया। इस श्रावक-श्राविका संघ को हम क्या देते हैं ? उस सम्बन्ध में हमें सोचना है। हमारी ओर से उपदेश देने में कमी भी रह गई हो। आपके मन और कानों को जो प्रिय लगे वह हमें परोसना पड़ता है। परोसने वाले को ध्यान रखना पड़ता है कि उसे शायद दस्तें आदि न लगें, पेचिश न हो और बदहजमी न हो।

ऐसा कुछ हुआ हो। लोग विविध प्रकार के होते हैं। हो भी सकता है। आप की व्यवस्था उत्तम है, फिर भी हमारी ओर से आवेश में ऐसा कुछ बोला गया हो तो उन शब्दों को याद न रखें, भूल जायें। पूज्य पद्म-जीतविजयजी से लगाकर समस्त गुरु भगवंतों ने जो हम पर जवाबदारी रखी - इस वर्ग को भूलें नहीं। अतः भले सात-आठ वर्ष हम बाहर घूम आये, परन्तु अन्त में आये न ? दोनों समाज खास कभी भी शामिल नहीं होते, शामिल नहीं रहते, परन्तु इस समय दोनों ने साथ मिलकर चातुर्मास कराया न ?

कोई बोझ नहीं लगा न ? प्रेमजीभाई ! क्या कोई बोझ लगा ? आपने सुना होगा कि अहमदाबाद में अभी स्वधर्मियों के लिए नौ करोड़ रुपये एकत्रित हुए। यह सब सुनकर हमें प्रेरणा लेनी है।

यहां आराधकों में मात्र आपके समाज के नहीं, भारतभर के लोग आते रहते हैं। चातुर्मास के आराधकों के अतिरिक्त भी पांच-पच्चीस दिन तक रहनेवाले भी होते हैं, परन्तु आपने कदापि इनकार

पन्यास कल्प ने कीर्तिगुरुवर, केवा रे विद्वान... आजे... ॥ ३ ॥
 गणिश्री मुक्ति-पूर्ण-मुनिश्री, अद्भुत चेतना लावे (२)
 अन्तरथी प्रमाद हटावी शासन-रसिया बनावे; (२)
 पामर ने परमात्मा बनाववा आदर्युं छे अभियान... आजे... ॥ ४ ॥
 साधु-साध्वी भेला थया छे, जाणे लगभग पांच सो, (२)
 शहर ने गाम गलीथी आव्या, आराधक छे सोल सो; (२)
 विध विध तपना डंका वाग्या, नवो छे कीर्तिमान... आज... ॥ ५ ॥
 श्रीमती लक्ष्मीबेन प्रेमजीभाई भचुभाई गड़ा परिवार; (२)
 श्रीमती पार्वतीबेन हरखचंद वाघजी गींदरा परिवार; (२)
 मातुश्री पालइबेन गेलाभाई गाला परिवारनुं योगदान... आजे... ॥ ६ ॥
 तप शत्रुंजय उपवास एकावन, मासक्षमण सिद्धि तप; (२)
 अट्टाई चौसठ प्रहरी पौषध, ने मोक्ष दंडक तप; (२)
 चक्रेश्वरी माताए सहनुं साध्युं छे कल्याण... आज... ॥ ७ ॥
 श्री कच्छ-वागड़ वीशा ओसवाल मूर्तिपूजक जैन संघ; (२)
 कलापूर्णसूरि ना चौमासानो अद्भुत आव्यो रंग; (२)
 सिद्धगिरिना गगन-मण्डलमां, ऊडे यश-विमान... आजे... ॥ ८ ॥
 धन-धन तमने मालशीभाई, खेतशीभाई, चमनभाई; (२)
 मालशी लखधीर हीरजीभाई, दोड्या छे वेलजीभाई; (२)
 आ चौमासे समय-सम्पत्ति, आपे कीधा कुर्बान... आजे... ॥ ९ ॥
 कोई अमारी भूल थई होय, अमने माफी देजो; (२)
 आजे के काले या भावीमां, लाभ सेवानो देजो; (२)
 आराधक सहु आपे वधारी जिन-शासननी शान... आजे... ॥ १० ॥

५१ उपवास : २, ३० उपवास : २३, १६ उपवास : ३०,
 ९ उपवास : ७७, ८ उपवास : २६७, चौसठ प्रहरी : ४६७, शत्रुंजय
 तप : ३१५, सिद्धि तप : ५, ५०० आयंबिल : १२

* खेतशी मेघजी :

किसी भी कार्य का अन्त तो आये ही । अनेक कार्यों का प्रारम्भ और अन्त होता ही है । आदीश्वर दादा तथा पूज्य आचार्यश्री की अमोघ कृपा से यह कार्य सफल हुआ है । इस कार्य में कैसे-

कैसे अनुभव हुए ? लगता है कि जीवन का अनुपम लाभ मिला ।

बीस वर्ष पूर्व आधोई संघ की तरफ से महाराष्ट्र भुवन में चातुर्मास का लाभ मिला था, तब ७०० आराधक ही थे, परन्तु इस वर्ष साध्वीजी भगवंत ४२९ तथा १६०० आराधक हैं, विशेष लाभ मिला है । संयुक्त रूप में दोनों समाजों को यह लाभ मिला है । पूज्यश्री की कृपा से दोनों समाज निकट आये हैं जो कम सफलता नहीं है ।

पूज्यश्री की मुझ पर सतत कृपावृष्टि होती रही है । प्रतिदिन रात्रि में पूज्यश्रीने हितशिक्षा दी है ।

नूतन पूज्य आचार्यश्री : हमें भी नहीं देते ।

खेतशीभाई : कभी कभी ऐसा लगता है कि ज्येष्ठ तुल्य पूज्यश्री बालक तुल्य हमारे साथ वार्तालाप करते हैं ।

परमात्मा तुल्य पूज्यश्री की यह अनुपम करुणा है । श्री संघ पर पूज्यश्री की जो असीम कृपा-वृष्टि हुई उसकी कोई जोड़ नहीं है । आराधकों का ८०० का ही अनुमान था, फिर भी १५६४ की संख्या हो गई । अनेक व्यक्तियों को निराश भी करने पड़े हैं ।

अनेक वृद्ध महिलाओं के आशीर्वाद मिले हैं ।

जन्म होने के सात दिन बाद पिता खो दिये । २३ वर्ष पूर्व माता खो दी । आज माता-पिता नहीं है परन्तु आप सबमें मैं माता-पिता के दर्शन करता हूं । (अश्रु) हमारा मस्तिष्क वश में न रहा हो और मुंह में से कटु शब्द निकले हों तो क्षमा करें ।

दूसरा तो हम क्या कर सकते हैं ? दर्शन, पूजा, प्रतिक्रमण, पञ्चवखाण रहित हम जैसों के लिए ऐसी सेवा का अवसर मिले कहां से ? हम जैसों को दूसरा आलम्बन भी क्या है ? जो कुछ भी मिला है वह आपकी ममता से मिला है ।

धन देने वाले अनेक मिल जाते हैं, परन्तु उत्तम आराधना करने वाले बहुत कम होते हैं । इनमें दस प्रतिशत उत्तम आराधक होते हैं और उनमें से एक प्रतिशत फल मिला तो भी बहुत कहा जायेगा ।

पूज्यश्री ने मुझे और मालशी लखधीर को चातुर्मास की जय बोलने से पूर्व वांकी में बुलाया था ।

पूज्यश्रीने कहा : 'मैं धर्म-संकट में हूँ । दोनों समाजों को लाभ देना है ।' हमने पूज्यश्री की यह बात स्वीकार कर ली ।

दोनों समाज ही क्यों ? समग्र जैन शासन के श्रावक एक हो जायें तो जैन-शासन का डंका बज जाये । जीवदया, राजकारणी, चुनाव आदि के समस्त फण्ड जैनों के द्वारा ही किये जाते हैं । कत्लखानों में से जीवों को बचाने के लिए भी जैनों का योगदान होता है । जैन यदि एक हो जायें तो क्या नहीं कर सकते ?

मैं नम्र विनती करूंगा कि प्रत्येक जैन इतना संकल्प करे कि कत्लखानों आदि को प्रोत्साहन मिले ऐसे कोई शेर आदि न खरीदें । असहयोग से ये कार्य बन्ध कराये जा सकते हैं ।

शुभ कार्य में विघ्न तो आता ही है । दस्तें-वमन के रूप में विघ्न चातुर्मास में आया । अगस्त की प्रथम तारीख से बीमारी शुरू हुई है - दस्तें लगने की और वमन होने की । फिर भी किसी बीमार ने शिकायत नहीं की । उनकी समता की मैं प्रशंसा करता हूँ । उनकी सेवा में कोई त्रुटि रह गई हो तो मैं पुनः पुनः क्षमा याचना करता हूँ ।

आज 'हार्ट एटैक' से मृत्यु का एक केस हुआ है । कल वे दो-तीन बार बेहोश (अचेत) हो गये थे । ऐसे क्षेत्र में देह छोड़ कर वे निश्चित रूप से स्वर्ग में गये हैं, ऐसी मुझे श्रद्धा है ।

* दानेश्वरी प्रेमजीभाई ने प्रथम तो सम्पूर्ण चातुर्मास का खर्च वहन करने की बात की थी, परन्तु पूज्यश्री ने सम्पूर्ण संघ को लाभ मिले ऐसी बात की थी । प्रेमजीभाई, हरखचंदभाई, धनजीभाई आदि ने अच्छी रकम (धनराशि) लिखवाई । समस्त दाताश्रियों का अत्यन्त आभार मानता हूँ ।

प्रेमजीभाई को पुनः पुनः धन्यवाद क्योंकि उन्होंने ने ३३ प्रतिशत जितना हमारा बोझ हलका किया । अब भी वे देने के लिए तैयार हैं, परन्तु शायद अब आवश्यकता नहीं पड़ेगी ।

मुझे सदा लगा है कि मानो कोई अदृश्य शक्ति हमें सहायता कर रही हो । स्तनशीभाई, माडणभाई, वेलजीभाई आदि कितने नाम

हमें कई बार कहते, 'यह धर्मशाला यात्रियों के लिए नहीं, परन्तु महात्माओं के लिए रखनी है। यात्री तो नित्य हैं ही। महात्माओं का लाभ कहां से मिले ? इतना बड़ा स्थान नहीं होता तो यहां कैसे रहा जाता ?

रायशी लखधीर :

पूर्व भव में हमने ऐसे पुण्य किये होंगे जिसके कारण खीमई बेन जैसी माता मिली। यों तो वे खेती का कार्य करती थी, फिर भी उन्होंने ने हमें धर्म-संस्कार देने में कोई कमी नहीं रखी।

नई मुंबई में जब पूज्यश्री ने प्रथम बार पालीताणा में चातुर्मास करने की बात की तब हम भाव-विभोर हो गये थे।

चैत शुक्ला-४ को सोने का सूरज उगा, जिस दिन इस धर्मशाला में पूज्यश्री का संघ के साथ पदार्पण हुआ। धर्मशाला पवित्र हो गई। फिर तो बहुत ही शानदार अनुष्ठान हुए।

साढ़े पांच महिनों तक पूज्यश्री का सान्निध्य मिला जो हमारा पुण्य है। वाचना के समय तो ऐसा लगता मानो भगवान् देशना दे रहे हों। इस होल में सर्वत्र पूज्यश्री की आवाज सुनाई देती। यह मैं ने प्रत्यक्ष देखा है।

जिन्हें जैन समाज में सर्वोत्कृष्ट रूप में प्रत्येक समुदाय के लोग देखते हैं, ऐसे पूज्यश्री का सतत साढ़े पांच महिनों तक सान्निध्य मिला है जिसका हमें गौरव है।

अत्यन्त सावधानी रखते हुए भी व्यवस्था में त्रुटि रह गई हो तो मिच्छामि दुक्कडं मांगता हूं।

मालशी लखधीर :

एक साथ वागड़ समुदाय रह सके ऐसा स्थान अमुक अंशों में बना उसका गौरव है।

पालीताणा में हैं तब तक यहां लक्ष्य रखें, ऐसी पूज्यश्री को विनती है।

ॐ ॐ ॐ





पू. भुवनभानुसूरिजी के साथ, सुख, वि.सं. २०४८

१०-९-२०००, रविवार
भादों शुक्ला-१२ : खीमईबेन धर्मशाला

(१) आकालमेते परार्थव्यसिननः ।

* भगवान पुरुषोत्तम हैं । भगवान की श्रेष्ठता किस तरह है ? भगवान करुणा के सागर, गुणों के भण्डार हैं । यह तो हम जानते ही हैं । इससे दूसरी श्रेष्ठता कौन सी ?

भगवान की करुणा-शक्ति कितनी ?

इन्द्रभूति तो भगवान के साथ वाद करने के लिए आये थे, परन्तु भगवान के दर्शन से उनके 'अहं' का पर्वत टूट गया और उसमें उन्हें भगवान के दर्शन हुए । फिर तो वे ऐसे नम्र बने कि उनकी जोड़ कही न मिले ।

चण्डकौशिक जैसा हिंसक नाग भगवान के प्रभाव से शान्त हो गया ।

चण्डकौशिक ने भी भगवान को जलाने के लिए पहले ज्वाला ही फैकी थी, परन्तु भगवान की करुणता तो देखो । उन्होंने ने उसे भी शान्त कर दिया ।

भगवान के सिवाय ऐसा पुरुषार्थ करने का विचार भी कौन दे ? दूसरे जीव मेरे समान हैं । मुझे उनकी रक्षा करनी चाहिये ।

भगवान की कृपा के बिना ऐसा विचार नहीं आ सकता । मेघकुमार के हाथी के भव में भी यह कृपा ही काम करती थी । पाप नहीं करने का विचार भगवान के प्रभाव से ही आता है ।

नेत्रों में से झरती करुणा के प्रभाव से चण्डकौशिक जैसे के चंड-प्रचण्ड क्रोध का शमन कर देना, उन भगवान की करुणा कितनी तीक्ष्ण, कितनी प्रभावशाली होगी ?

ऐसी करुणा के सागर भगवान पुरुषोत्तम न हों तो दूसरे कौन होंगे ?

दया, दान एवं करुणामय जितने पुरुष होते हैं, उनमें भगवान प्रथम नम्बर पर आते हैं । अतः भगवान को पुरुषोत्तम कहा गया है ।

दया, दान आदि ऐसे दस गुण यहां बताये हैं ।

भगवान का सर्व प्रथम गुण है - परोपकार । आकालमेते परार्थ व्यसनिनः ।

(२) उपसर्जनीकृतस्वार्थभावाः ।

भगवान स्वाभाविक रीति से ही परोपकार-व्यसनी होते हैं । वे स्वार्थ को गौण मानकर चलते हैं । नयसार के भव में देखो । अपने खाने के समय दूसरे को खिलाने का विचार आता है । यही परार्थता है । नयसार ने पहले भोजन नहीं किया । वे पहले महात्मा को बुलाने जाते हैं ।

इसके समक्ष हम कैसे हैं ? हो सके वहां तक दूसरे का काम नहीं ही करना । विवशता हो तो ही करना । चार घड़े पानी लाना हो तो चार घड़े ही लाना । अधिक नहीं । कहीं अधिक पुण्य बंध जाये न ? परार्थ व्यसनिता की बात जाने दो । हम में परार्थ की एक बूंद भी नहीं है । 'हमारा' शब्द का मैं इसलिए प्रयोग करता हूँ क्योंकि मैं भी साथ ही हूँ ।

लुणावा में पूज्य पं. भद्रंकरविजयजी महाराज में देखा । चाहे जैसी तबियत हो तो भी उनकी परार्थता सतत चलती ही रहती थी । वे किसी को भी निराश नहीं करते थे ।

भगवान तो वृक्ष में भी कल्पतरु बनते हैं, पत्थर में चिन्तामणि बनते हैं । वहां भी परोपकार होता रहता है ।

मेघरथ राजा (शान्तिनाथ का जीव) ने तो एक कबूतर को बचाने के लिए अपने प्राण देने की तैयारी बताई थी । इस जीवन से यदि किसी का जीवन बचता हो तो इससे अधिक दूसरा कौन सा लाभ ?

धर्मरूचि अणगार को याद करें । चींटियों को बचाने के लिए वे विषाक्त सब्जी खा ही गये ।

चौक को घिस कर हजारों चींटियों को मार डालने वाले क्या यह बात सुनेंगे ?

‘चूहों को, चींटियों को मारने की दवा’ - यह पढ़ने पर पहली बार पता लगा कि मारने की भी दवा होती है । मैं तो समझता था कि दवा तो सिर्फ जीवित ही रखती है । हम ऐसे युग में जी रहे हैं, जहां मारने की भी दवा मिलती है ।

ऐसे काल में भी दूसरे की मृत्यु में अपनी मृत्यु देखने वाले भगवान हमें मिले हैं, यह कैसा सौभाग्य है अपना ?

(३) उचित-क्रियावन्तः ।

उचित व्यवहार -

जिस जीव की जैसी कक्षा है, उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना वह औचित्य है ।

तीर्थकर का जीवन औचित्यपूर्ण होता है । तीर्थकर का जीवन प्रतिदिन पढ़ने योग्य होता है । यह नित्य नहीं कर सकते अतः प्रतिवर्ष कल्पसूत्र सुनना होता है । कल्पसूत्र में देखा न ? भगवान कितने औचित्य के भंडार हैं । वे जानी होते हुए भी पाठशाला जाने का इन्कार नहीं करते । वे बालकों के साथ खेलने का इन्कार नहीं करते ।

(४) अदीन भावाः ।

अदीन भाव - चाहे जैसा प्रसंग आये तो भी कदापि निर्धन बन कर दूसरे के पास मांगे नहीं ।

(५) सफलारम्भणः ।

सफलारम्भ - जिस कार्य में निष्फलता मिलने जैसा हो, उसमें सिरपच्ची न करें ।

(६) अदृढानुशयाः ।

शायद क्रोध आये वैसे प्रसंगों में भी उनके क्रोध में अनुबंध न हो ।

(७) कृतज्ञतापतयः ।

किसी भी व्यक्ति का उपकार वे कदापि नहीं भूलते । वे कृतज्ञता गुण को ऐसा आत्मसात् करते हैं कि वे उसे कदापि छोड़े नहीं । आपने यदि नौकर को पुत्र की तरह रखा हो तो क्या वह आपको छोड़ कर कभी जायेगा ? गुणों पर नियन्त्रण हो तो वे हमें छोड़ कर कदापि जायेंगे नहीं ।

सचमुच तो गुण ही अपना सच्चा परिवार है ।

मैं आत्मा ! ज्ञानादि गुण मेरे ! नित्य संथार पोरसी में ऐसा याद करते हैं न ?

जिसको ऐसी प्रतीति हो चुकी हो उसे कोई स्थान छोड़ने में दुःख होगा ? कल ही यह स्थान छोड़ना है तो दुःख थोड़ा ही लगेगा ?

इसी प्रकार से यह देह भी छोड़नी है । इसमें दुःख कैसा ?

‘यः पश्येन्नित्यमात्मानमनित्यं परसङ्गम् ।’

जो आत्मा को नित्य एवं ‘पर’ के संयोगों को अनित्य माने उसे मोह क्या कर सकता है ?

ऐसे शास्त्रों के स्वाध्याय से ही सद्गुण प्रकट होते हैं ।

आप अपने पुत्रों को ऐसी सलाह देते हैं ताकि हानि न हो, लाभ ही हो, उस प्रकार भगवान ने ऐसे शास्त्र दिये हैं जिनका पालन करने से लाभ ही होता है, हानि तनिक भी नहीं होती ।

प्रातः काल से सायंकाल तक के साधु-जीवन के अनुष्ठानों में क्या तनिक भी हानि है ? पल-पल में अनन्त कर्मों को क्षय करने की अनुष्ठानों में शक्ति है ।

एक भी श्लोक या पद कण्ठस्थ कर लो तो वह आपके लिए आजीवन भाथा बन जायेगा ।

पू.पं. कीर्त्तिचन्द्रविजयजी : कौनसा श्लोक आत्मसात् किया जाये ?

पूज्यश्री : अनेक श्लोक हैं । कुछ उदाहरण बताऊँ क्या ?

‘आया हु मे नाणं... आया मे संजमे’

‘एगोहं नत्थि मे कोइ ।’ ‘उपयोगो लक्षणम्’

ऐसे पदों में से कोई भी एकाद पद पकड़ कर आप अपनी भावधारा को विशुद्ध बना सकते हैं ।

रगि का संग करोगे तो रग बढ़ेगा ।

त्यागी का संग करोगे तो त्याग बढ़ेगा ।

संसार में से कदापि निकलना नहीं हो तो ही रग-दशा बढ़ाये ।

संसार में से निकलना हो तो वीतराग का रग करें, व्यक्ति का नहीं । तद्गत गुणों का रग करें । उनका रग आते ही, वे गुण आपके हो जायेंगे । दोषों के प्रति धिक्कार-भाव होते ही वे दोष आप में से भाग जायेंगे । दोषों को भगाने की हमें उतावल नहीं है क्योंकि हमें विश्वास है : दुर्गति में नहीं ही जायेंगे । हमारे चाचा-मामा वहां बैठे हैं, जो बचा लेंगे !

यहां ४०० साध्वीजी हैं । क्या प्रत्येक बार ऐसा अवसर मिलेगा ? अवसर मिला है तो उपयोग क्यों न करें ? दोषों के नाश एवं गुणों की वृद्धि के लिए प्रयत्न क्यों न करें ? इस समय नहीं करेंगे तो कब करेंगे ?

तीर्थकर भगवान का अनुशय अस्थायी होता है । कोध शायद आयेगा सही, परन्तु हलदरिये रंग की तरह उड़ जाता है ।

भगवान कृतज्ञता के स्वामी हैं । वे उपकारी को कदापि नहीं भूलते । उपकारी को भूलने से उनके द्वारा प्राप्त गुण भी चला जाता है । उपकारी को भूलने से कौन से आचार में दोष लगता है ? दर्शनाचार में दोष लगता है ।

अर्थात् मिथ्यात्व का उदय हो तो ही गुरु का अपलाप होता है । गुरु ने आपको दीक्षा देकर आपका संग्रह किया, यही गुरु का बड़ा उपकार है ।

एक छोटी पुस्तिका अथवा एक अक्षर पढ़ाने वाले का भी उपकार नहीं भूला जाता तो गुरु का उपकार कैसे भूला जाये ?
(८) अनुपहतचित्ताः ।

भगवान का चित्त कदापि उत्साह-रहित नहीं होता, निराश नहीं होता । वैसे ही उत्साह के बिना तीर्थकर नाम-कर्म नहीं बंधा । ज्वलन्त उत्साह चाहिये उसके लिए । जगत् के समस्त जीवों का उद्धार करने के लिए कितनी ऊर्जा चाहिये ? उसके लिए कितना वीर्योल्लास चाहिये ?

तीर्थकर के समान लोकोत्तर उपकार कोई भी नहीं कर सकता ।

सम्यग् ज्ञान आदि देकर जीवनभर आपकी रक्षा करने का उत्तरदायित्व भगवान के अतिरिक्त कौन निभा सकता है ?

तीर्थ चलता है तब तक भगवान का अनुग्रह अखण्ड रूप से चलता ही रहेगा । इसका अर्थ यह हुआ कि इस समय भी भगवान ध्यान रख रहे हैं । इसका अर्थ यह भी हुआ कि भगवान ही शासन चला रहे हैं । वे ही शासन की प्रभावना कर रहे हैं । हम प्रभावना करने वाले कौन हैं ? मात्र निमित्त बनें इतना ही । हम अधिक अधिक तो वाहक बन सकते हैं, परन्तु भीतर वहन होता तत्त्व तो भगवान का ही है ।

ऐसे सद्गुणों के भण्डार हमें मिले हैं, यह जान कर उनके प्रति कैसा प्रेम उमड़ता है ?

(९) देवगुरुबहुमानिनः ।

देव-गुरु के बहुमान से ही वे स्वयं भी ऐसे भगवान बने हैं । अरिहंत बनने वाले अरिहंत की उपासना से ही बने हैं । बीस स्थानक में पहला अरिहंत पद है । शेष उन्नीस में भी अरिहंत अनुस्यूत है ही । किसी भी एक को पकड़े, अरिहंत आ ही जायेंगे । इसीलिए किसी भी एक पद से भी तीर्थकर नाम कर्म बांध सकते हैं ।

ये दसों गुण तीर्थकर बनने की कला है, तीर्थकर बनने के बीज हैं ।

यदि ये गुण नहीं दिखाई देते हों तो समझ लें कि तीर्थकर पद में से हम निकल गये ।

कड़्यों के गुण ही ऐसे होते हैं जिन्हें देख कर ही शब्द निकल जाते हैं कि ये तीर्थकर बनेंगे । ये तो तीर्थकर की आत्मा हैं ।

(१०) गंभीराशयाः ।

प्राण जायें, परन्तु किसी के दोष-दुर्गुण कदापि कहते ही नहीं, जानते हुए भी नहीं कहें ।

गंभीर आशयरहित गुरु के पास आलोचना नहीं ली जाती । वैसे गुरु नहीं मिलें तो १२ वर्षों तक प्रतीक्षा करने का शास्त्रों में कहा है ।

एकबार मैं भी ऐसा ही पापी-दोषी था । ऐसी विचारधारा से किसी के भी प्रति धिक्कार उत्पन्न नहीं होता, गम्भीरता बनी रहेगी । गम्भीर आशय मिलना अत्यन्त कठिन है ।

योगसार में तो कहा है - 'गुणीयल जनो द्वित्रा' - दो तीन ही मिलेंगे । शेष सारी दुनिया व्यर्थ है ।

हमें कौन सा नम्बर लगाना है ?

दूसरे के छोटे गुण को भी पर्वत के समान मानें ।

अपने छोटे से दोष को भी पर्वत तुल्य मानें ।

तो ही आत्म-विकास के पथ पर जा सकेंगे ।

यह होगा तो ही अक्षुद्रता गुण आयेगा । श्रावक का प्रथम गुण अक्षुद्रता है ।

बाह्य आचार-विचार भिन्न वस्तु है, भीतर की योग्यता भिन्न वस्तु है । हरिभद्रसूरिजी योग्यता पर बल देते हैं ।

अध्यात्म का मुझे अत्यन्त ही शौक था और सत्साहित्य नहीं मिला होता तो मैं भी कहीं टेढ़े-मेढ़े मार्ग पर चढ़ गया होता । खेरागढ़ में मुझे अध्यात्म की ढेर सारी पुस्तकें मिली । उनमें पृष्ठ खोलते ही पढ़ने को मिला कि उपादान तैयार करें । उपादान ही मुख्य है । उपादान तैयार होगा तो निमित्त को आना ही पड़ेगा । मैं ने तुरन्त ही वह बही बन्द कर दी और मैं ने उन्हें कहा, आपके यह साहित्य काम का नहीं है ।

मैं ने तो पू. देवचन्द्रजी का साहित्य पहले पढ़ा ही था ।

‘उपादान आत्म सही रे, पुष्टालंबन देव... ।’

ऐसा साहित्य मुझे नहीं मिला होता तो ? आज मैं कहाँ होता ?

ॐ ॐ ॐ

मालशीभाई : अभी तक हम मूर्ख यही मानते थे कि वाचना साधु-साध्वियों के लिए ही होती है, परन्तु अभी वाचना सुन कर लगा कि हम बहुत चूक गये ।

पूज्य साधु-साध्वीजियों के प्रति मेरी ओर से कोई भी अविनय हुआ हो तो उसके लिए मैं मिच्छामि दुक्कडं मांगता हूं ।

ॐ ॐ ॐ



कंचन गुरुजीनी वाणी सुणतां हैयुं एमनुं डोले,
 आ संसारनी झूठी माया, ने ममताने तोडे,
 त्रीस वरसनी आयुमां संयमथी नातो जोडे,
 पत्नी-पुत्रो-ससरा साथे, आ संसारने छोडे,
 आप बन्या अणगार... **कलापूर्णसूरिने...**

पुरुषादाणी पार्श्वप्रभुनी भक्तिथी रंगाया,
 नवकार मंत्रने जपतां जपतां आतम सिद्धि पाया;
 कर्मठ संत अध्यात्मयोगी शासनमां पंकाया,
 कच्छ वागड देशोद्धारक छो सहुना लाडकवाया,
 छो गुणना भण्डार... **कलापूर्णसूरिने...**

कलाप्रभसूरिजी पासे ज्ञान तणो भंडार,
 पंन्यास कल्पतरुविजयजी शान्तिनो अवतार;
 पंन्यास कीर्तिविजयजीना सुणजो सुविचार,
 गणिश्री मुक्ति-पूर्ण-मुनिना माथे छे बहु भार,
 सहुए मिलनसार... **कलापूर्णसूरिने...**

जिन-शासन धुरंधरो जे आपनी माने वात,
 क्रोध-कषाय-क्लेश ने साचे आपे कीधा छे महात;
 आपना चरणे सहु कोई आवे, नहीं कोई नात के जात,
 तमे अमारा मात पिता छो तमे अमारा तात,
 कीधा छे उपकार... **कलापूर्णसूरिने...**

पालीताणामां आप पधार्या जाग्या भाग्य अमारा;
 जीवन नैया सौपी तमने आप छो तारणहार;
 कठपुतलीना नाटक जेवा आ जीवन छे अमारा;
 आ जीवनमां मोह ने मायाना दीसे अंधार,
 नयने अश्रुधार... **कलापूर्णसूरिने...**

साधु-साध्वी चारसो साएठ ने सोलसो आराधक,
 कलापूर्णसूरिजी भलिया, एक साचा उद्धारक;
 आ दुनियामां सिद्धगिरि जे भव्य जीवोना तारक,
 गुरुजी अमने संयम लेवा आप बनावो लायक,
 सपनुं करो साकार... **कलापूर्णसूरिने...**

हे गुरुदेव ! शतं जीव शरदः । इतना ही कहकर मैं विराम लेता हूँ ।

पूज्य आचार्यश्री विजयहेमचन्द्रसागरसूरिजी :

आषाढ़ शुक्ला ११ का दिन ! अनेक पूज्य आचार्य देवों के साथ चातुर्मास-प्रवेश का अवसर !

तलहटी के प्राङ्गण में सामुदायिक चैत्यवन्दन ! उस समय ही विराट् मानव-मेदिनी के अद्भुत दृश्य का सृजन हुआ ।

उसके बाद चातुर्मास में अनेक अनुष्ठान हुए । धीरुभाई ! आप पर्यूषण से पूर्व किसी रविवार को आये होते तो कदापि देखने को नहीं मिले वैसा ऐश्वर्य देखने को मिलता । आप विलम्ब से आये ।

यह ऐश्वर्य कहां से आया ? यह जाण्वत्यमान व्यक्तित्व ही इसका मूल है ।

घी का डिब्बा लेकर जटाशंकर गाड़ी में खड़ा रहा । साफे से डिब्बा बांध कर रेलगाड़ी की चैन से बांधने के कारण रेलगाड़ी रुक गई । इस पर रेलगाड़ी के ड्राइवर ने उसे पूछा - 'तुमने डिब्बा चैन से क्यों बांधा ? तैरे कारण रेलगाड़ी रुक गई ।'

जटाशंकर बोला, 'रुकेगी ही न ? शुद्ध घी का डिब्बा है ।'

ऐसे पुण्य पुरुष हों और यहां ऐश्वर्य नहीं जमे तो फिर कहां जमे भी ?

पूज्यश्री के आकर्षण से ही यहां हमने चातुर्मास किया है । अन्यथा हमने अन्यत्र चातुर्मास करने का विचार किया था ।

पूज्य आचार्यश्री को मैं कहूंगा, 'अब तो आप बिल्कुल समीप आये हैं । (सात चौबीसी धर्मशाला पन्ना-रूपा के पास में है । पू. हेमचन्द्रसागरसूरिजी का चातुर्मास पन्ना-रूपा में था) मारवाड़ के हैं परन्तु आप तनिक भी कंजूसई न करें ।

धुरन्धरविजयजी महाराज : मारवाड़ी तो उदार होते हैं ।

पूज्य आचार्य विजयकीर्तिसेनसूरिजी :

जिसके प्रत्येक सांस में, तीनों योगों में, पांचो इन्द्रियों में, सातों धातुओं में, असंख्य आत्म-प्रदेशों में जिन-भक्ति एवं जीव-मैत्री रमण करते हों, ऐसे ये पुण्य-पुरुष पूज्य आचार्यश्री हैं ।

फिर चेतन में भगवान क्यों न देखे जा सकें ? वे यही देना चाहते हैं तो ही ऋण से मुक्ति हो सकती है ।

“पू. पंन्यासजी महाराज के पास से जो मिला है वह सबको देना है । तो ही ऋणमुक्ति होगी ।” ऐसा पूज्यश्रीने खास एक बार मुझे कहा था ।

वि. संवत् २०४४ के सम्मेलन में पूज्यश्री प्रारम्भ करने से पूर्व बारह नवकार गिनने का कहते थे । बारह नवकार अर्थात् समवसरण । तीन प्रदक्षिणा देते समय एक-एक नवकार गिनने से बारह होता है । इसी लिए बारह नवकार का महत्त्व है ।

दो दो समाजों के एक मात्र गुरुदेव सच्चे तब ही गिने जायेंगे जब आप उनके मिशन को पहचानोगे ।

मेरे प्रगुरुदेव पूज्य पं. भद्रंकरविजयजी महाराज का ध्येय था कि किसी प्रकार यह श्रमण संघ एक हो ।

यह ध्येय इन पूज्यश्री को पूर्ण करना है । उसके लिए पूज्यश्री को १०० वर्षों तक जीवित रहना है । उसके बाद इन्हें मोक्ष मार्ग पर जाना हो तो भले जायें ।

पूज्य भानुचन्द्रसूरिजी :

भाग्यशालियों ! हम कितने पुण्यशाली हैं ? मानव-भव, जैन-कुल आदि मिलने के बाद कलापूर्णसूरिजी जैसे सद्गुरु प्राप्त हुए ।

पूर्व भव की प्रबल पुण्याई से ही ऐसा प्राप्त होता है । मात्र मिलने से कुछ नहीं होता, परन्तु मिलने के बाद पूज्यश्री के अन्तर के उद्गार समझने हैं ।

शास्त्रों के अनुसार बोलने वाले आचार्य भगवन् तीर्थंकर-तुल्य हैं, जिनकी झलक मुझे यहां दिखाई देती हैं ।

ऐसी पुण्याई कहीं देखी नहीं है ।

ऐसे महान् आचार्यश्री के आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए हमारा सबका तरसना स्वाभाविक है ।

* पूज्यश्री की वाचना का निष्कर्ष मैं ने इस प्रकार निकाला है -

(१) सकल संघ की कुशलता होनी चाहिये । नवकार का जाप करने से ही योग-क्षेम (कुशलता) होगा ।

(२) सभी गुणानुरागी बनें । छोटे सदस्य में भी कुछ गुण तो होगा ही, उसकी उपबृंहणा करें ।

यह गुण आ जाये तो एकता की लगन साकार हुए बिना नहीं रहेगी ।

(३) सकल संघ जिनवाणी का श्रवण करे जिससे कमी दूर होगी ।

पूज्यश्री की वाचना का सार रखा है ।

पूज्यश्री के अन्तर की यही भावना है ।

इसे आचरण में लाकर जीवन को मंगलमय बनायें ।

अध्यात्मयोगी पूज्य आचार्यश्री :

सचमुच, आप सब समय निकाल कर उपस्थित हुए हैं ।

कोई विशिष्ट प्रसंग नहीं है, मात्र धर्मशाला बदली है ।

गुरु-तत्त्व के प्रति लगाव देख कर हृदय नाच उठता है ।

हम भी आप सबके दर्शन करके तृप्त हो रहे हैं, देव एवं गुरु के प्रति प्रेम के दर्शन करते हैं ।

यहां के वैभव का मुख्य कारण आदीश्वर दादा हैं । दुर्बल देहवाला एक व्यक्ति क्या कर सकता है ? दादा का ही यह प्रभाव है ।

इन आचार्य भगवंतो ने जो उद्गार निकाले हैं उनसे प्रतीत होता है कि सबको प्रभाव हुआ है ।

आप तो वर्षों से पास में हैं, फिर भी प्रभाव क्यों नहीं पड़ा ?

शायद मुझ में ही कमी होगी ।

मैत्री भाव की सिद्धि हो चुकी हो तो उसे देख कर शत्रु प्राणी शत्रुता भूल जाता है, और आप अभी मैत्री बढ़ा नहीं सकते । अतः मैं मानता हूं कि मेरी साधना में ही कमी है ।

अभी जिन महात्माओं ने उद्गार निकाले हैं, उनके उद्गार फलीभूत हों ।

मेरे हृदय में तीर्थकर भगवान प्रतिष्ठित हों ।

सामान्यतः एक का गुण-गान हो तो दूसरे के गौरव का हनन होता हो उस प्रकार दूसरे को लगता है, फिर भी यहां समस्त महात्माओं ने प्रेम पूर्वक गुण-गान किया । मुझे स्वयं को आश्चर्य होता है,

ऐसा इस दुर्बल देह में क्या देखा ?

भगवान आज भी है, परन्तु कहां है ? ऐसे आचार्य भगवंत (दीक्षा पर्याय में कोई मुझ से बड़े भी होंगे) ऐसे उद्गार निकालें तब मुझे समझना पड़ेगा कि जैन-शासन अद्भुत है ।

एकता का यह वातावरण अलग होने के बाद भी जाने वाला नहीं है, चालु ही रहेगा ।

भगवान आज भी हैं, परन्तु कहां हैं ?

वे प्रत्येक घट में बसते हैं, परन्तु हम ही सामने नहीं आते ।

भगवान की यह मूर्ति क्या मात्र मूर्ति है ? क्या यह नवकार मात्र अक्षर हैं । यह तो साक्षात् सर्वज्ञ एवं सर्वग भगवान हैं । उस चतुर्विध संघ में भी भगवान क्यों न हों ? देखने के लिए आंख हों तो प्रत्येक सदस्य में भगवान दिखाई दें ।

यह दृष्टि विकसित करने के लिए आप प्रयत्नशील बनें ।

इस धर्मशाला में अनेक व्यक्तियों का योगदान (भाग) है । अब इसका सदुपयोग कितना सुन्दर हो रहा है ? आप देख रहे हैं न ?

लाभ लेने वाले को कितना पुण्य हुआ यह दिखाई देता है न ?

इस धर्मशाला के निर्माण में आपका कोई बाकी हो तो दिल खोलकर आप इसमें सहयोग दें ।

दबाव से दो तो टैन्शन कहलाता है ।

भाव से करो तो दान कहलाता है ।

जिनवाणी का अमृत पान करने के लिए हम गुरु-भगवंत को बुलाते हैं; तो जिनवाणी श्रवण करके गुरु का समागम सफल करें ।

(अम्बाबेन वेलजी मलूकचन्द की तरफ से चातुर्मास फण्ड में ११ का दान दिया गया है । मुख्य दाता के रूप में उनका विरुद है ।)

धीरुभाई शाह (अध्यक्ष : गुजरात विधान सभा) :

पूज्य आचार्यश्रीयों के कहने के बाद मेरे लिए कुछ कहने का नहीं रहता, क्योंकि मैं गुजरात विधानसभा का अध्यक्ष हूं ।

परन्तु यहां धर्म संसद है, जिसके अध्यक्ष (पूज्यश्री) यहां

बिराजमान हैं ।

वहां तूफान हो तो बहुत कठिनाई होती है । उन्हें समझाने के लिए नियम बताना पड़ता है, परन्तु यहां तो गुरुदेव ने नियम उद्घुत किया है, कि मेरी ही कमी है ।

वागड़ सात चौबीसी समाज निश्चय कर ले कि अब के बाद घण्टों तक आने का कोई प्रयोजन नहीं रहे ।

‘अब कृपणता नहीं करें ।’ यह कहने वाले हे हेमचन्द्र-सागरसूरिजी ! हमारा समाज कंजूस (कृपण) था । इन पूज्य आचार्यश्री की निश्रा में शंखेश्वर में पाठशाला के लिए एक लाख का फण्ड (चन्दा) हुआ तो फूल गये थे ।

हम पालीताणा में बिना पते के थे । वह पता (धर्मशाला) इन पूज्य आचार्यश्री की कृपा से मिला है ।

दूसरों के साथ यह समाज अब कन्धे से कन्धा मिला कर चलने लगा है ।

हमारी भूलें तो अनेक हैं । हममें अनेक त्रुटियां हैं । उनमें से छूटने का प्रयास करते हैं ।

यह मात्र धर्मशाला का प्रवेश नहीं है । गत वर्ष वागड़ में प्रवेश किया तब ६५ गांवों की भावना थी कि हमारे वहां चातुर्मास (वर्षावास) हो ।

यहां ६५ गांव उपस्थित हैं । अतः ६५ गांवों में प्रवेश हुआ है, यह मैं कहता हूं । (तालियां)

ओसवाल समाज ने दो महिनों तक चातुर्मास की जो रंगत जमाई, वह अद्भुत थी । मुझे प्रत्येक समाचार मिलता था ।

प्रत्येक रविवार को श्री सकल संघ एकत्रित होता था वह मैं नहीं देख पाया, यह मैं ने एक सुअवसर खो दिया, यह सत्य बात है ।

पूज्यश्री ने जो एकता का अभियान चलाया है, वह सफल हो । यदि सब जैन एक हो जायें तो अनेक प्रश्न हल हो सकते हैं ।

एकाध वर्ष पूर्व बकरी ईद के दिन महावीर जयन्ती थी । उस दिन कल्लखाने कैसे बन्द हो ? उस समय पूज्यश्री महाराष्ट्र

से गुजरात की ओर आ रहे थे । मैं पूज्यश्री के पास आशीर्वाद लेने गया ।

पूज्यश्री के आशीर्वाद से ५० वर्षों में यह इतिहास बना कि जब ईद के दिन कत्लखाने बन्द रहे ।

पूज्यश्री की कृपा से गुजरात विधानसभा में मांसाहारी कैन्टीन बन्द कराया ।

पांजरपोल के लिए प्रति ढोर 'सबसीडी' ६ में से ८, ८ में से १० रुपये हुई । यह पूज्यश्री का प्रभाव है ।

यह असम्भव था फिर भी सम्भव हो सका, 'हमारे पूज्य आचार्यश्री की बात स्वीकार करें तो हमारा समाज प्रसन्न होगा ।' केशुभाई को ऐसी बात करने पर उन्होंने ने वह तुरन्त स्वीकार की ।

हम यहां समस्त पूज्यों का स्वागत करते हैं ।

हमारी यही भावना है कि दोनों समाजों पर आप की कृपा-वृष्टि होती रहे ।

हम कहीं पर चूक जाएँ तो आप स्मरण करायें । हमें फिरते रहें । अकबर बीरबल का एक प्रसंग याद आता है ।

अकबर ने पूछा, 'भाखरी कैसे जल गई ?'

'दशहरे के दिन घोड़ा क्यों नहीं दौड़ा ?'

'शरीर कैसे दर्द करने लगा ?'

बीरबल ने इन तीनों को एक ही उत्तर दिया, 'फेरा नहीं ।'

हे पूज्यश्री ! आप हमें फिरते रहें, ताकि हम बिगड़ न जायें ।

गांधीधाम के जैन संघ ने मुझे कहा कि आगामी चातुर्मास के लिए आप पधारें । मैं गांधीधाम के संघ की ओर से विनती करता हूँ । आप आगामी चातुर्मास का लाभ गांधीधाम के संघ को दे ।

धीरुभाई, वेलजीभाई, मलूकचन्दभाई ने सुन्दर अनुमोदनीय कार्य किया है । पालीताणा में श्रेष्ठ धर्मशाला के रूप में यह सात चौबीसी धर्मशाला गिनी जाय, ऐसी मेरी इच्छना है ।

समस्त आचार्य भगवंतों ने जिन पूज्यश्री में भगवान के दर्शन किये, ऐसे आचार्य भगवंत हमें मिले हैं जिसके लिए हमें गौरव है ।

पूज्य आचार्यश्री की निश्रा में प्राप्त इस समय का सदुपयोग

नहीं करें तो यह समय हमें ठुकरा कर चला जायेगा ।

ए. डी. महेता :

पूज्य आचार्यश्री की निश्चा में ई.स. १९९१ में यहां भूमि-पूजन हुआ था । यहां की लगभग समस्त आवश्यकताएँ पूरी हो गई हैं, परन्तु अब यहां एक सुन्दर जिनालय का निर्माण हो ऐसे पूज्यश्री के आशीर्वाद प्राप्त हों ऐसी मैं पूज्यश्री को प्रार्थना करता हूँ ।

उगरचन्द गढ़ेचा :

ए. डी. महेता की भावना पूर्ण हो ।

मालशी मेघजी :

पहले मैं स्पष्टीकरण कर लूँ कि दोनों समाजों के गुरु एक हैं । छोटे-बड़े का भेद भूल कर हम एक बन कर कार्य करें, ऐसी तमन्ना है ।

वागड़ का कटारिया तीर्थ हम साथ मिल कर सुन्दर, व्यवस्थित बनायें ऐसी अपेक्षा है ।

पूज्य आचार्यश्री विजयकलाप्रभसूरिजी :

यहां के चातुर्मास के प्रवेश के बाद पांच-पांच रविवार के कार्यक्रम यहां हुए हैं । लगभग समस्त प्रवक्ताओं ने प्रवचन दिये हैं, सिर्फ मैं ही बाकी रहा हूँ ।

आज आधे घंटे तक बोलना था, परन्तु गला साथ नहीं दे रहा ।

आज आमने-सामने बातें करनी हैं । हमारी कितनीक बातें आप तक पहुंची नहीं हैं ।

इस समाज के साथ हमारा बचपन का सम्बन्ध है । यद्यपि हमारी जन्मभूमि मारवाड़ है, परन्तु कर्मभूमि वागड़ है । सच ही इस समाज के साथ का हमारा ऋणानुबंध है । पूज्य कनकसूरिजी के समय में इस समाज के साथ हमारा परिचय हुआ ।

दीक्षा के समय मेरी उम्र १० वर्ष थी, छोटे भाई (लघु भ्राता) की उम्र ८ वर्ष और पूज्यश्री की ३० वर्ष थी ।

बचपन से ही इस समाज का प्रत्येक सदस्य हमें पहचानता है ।

कलाप्रभविजयजी कहो तो कोई नहीं पहचानेगा, परन्तु 'भाई महाराज' बोलो तो बालक से लगा कर वृद्ध सब पहचानते हैं ।

इस समाज की गम्भीर स्थितियां हमने देखी हैं । ओसवाल समाज के समकक्ष बैठ सकें वैसी स्थिति सात चौबीसी समाज की आज बनी है, जो गुरु-भक्ति के मीठे फल हैं ।

इतने विशाल प्राङ्गणवाली यह धर्मशाला पालीताणा में एक ही है । ६५ गांव एक साथ आ जायें तो ठहरा सकें, ऐसी विशाल यह धर्मशाला अभी क्यों न बनें ?

खीमईबेन धर्मशाला में ३७५ ठाणे रहे थे, यहां २५० भी नहीं हैं ।

खीमई धर्मशाला में पिछला आराधना भवन मात्र तीन महिनों में ५५ लाख के खर्च से निर्मित हुआ है । आधे घंटे में ही ५५ लाख के स्थान पर एक करोड़ रूपये हो गये थे ।

आधा घंटा समय लेकर धर्मशाला में जो कोई कमी है वह पूरी कर लें ।

दूसरी बार चातुर्मास होगा तब तो पूरी धर्मशाला की कायापलट हो गई होगी ।

ॐ ॐ ॐ

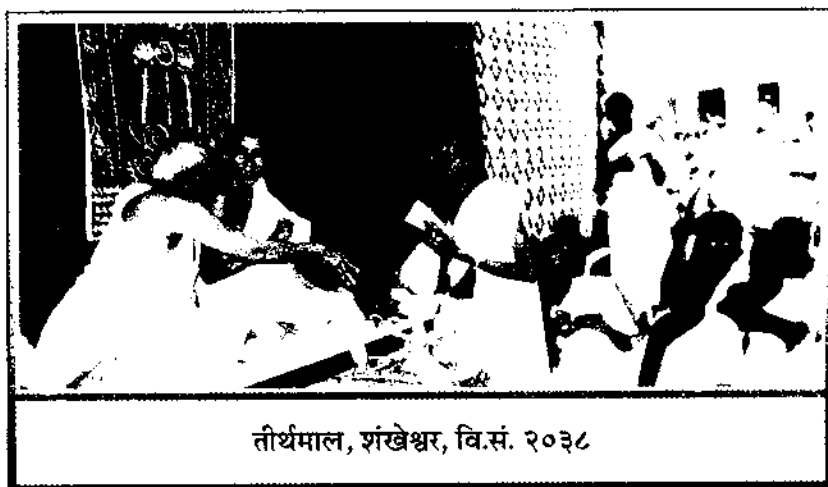
अशुभ भावों को नष्ट करके उपशम-भाव, वैराग्य-भाव, त्याग-भाव तथा भक्ति-भाव बढ़ाने में यह पुस्तक मेरी आत्मा के लिए दैनिक तुल्य है ।

- साध्वी जितमोहाश्री

ॐ ॐ ॐ

यदि जन्म एवं जीवन को सार्थक करना हो तो 'कहे, कलापूर्णसूरि' पुस्तक पढ़नी अनिवार्य है । इसमें जीवन जीने की अनेक चाबियां हैं ।

- साध्वी हर्षरक्षिताश्री



तीर्थमाल, शंखेश्वर, वि.सं. २०३८

११-९-२०००, सोमवार
भादौ शुक्ला-१३ : सात चौबीसी धर्मशाला

परम पुण्योदय से हम व्यवहार से इस संघ के सदस्य बने हैं । यदि भाव से बन जायें तो काम हो जाये ।

व्यवहार कारण है, निश्चय कार्य है ।

कारण दो हैं : उपादान, निमित्त । दोनों साथ मिलें तो ही कार्य-सिद्धि होती है । लोकोत्तर अथवा लौकिक कारणों की सिद्धि तब ही होती है । उसके बिना न तो कुम्हार ही घड़ा बना सकता है या महिला भी रोटियां नहीं बना सकती । कारण की सामग्री एकत्रित न हो तो कार्य-सिद्धि कदापि नहीं होती ।

अपनी आत्मा उपादान कारण है, मोक्ष कार्य है, परन्तु वह कार्य कब सम्पन्न होता है ?

आज तक इस तीर्थ के आलम्बन से अनन्त जीवों ने मोक्ष रूप कार्य सिद्ध किया है । जब तक मोक्ष रूपी कार्य सिद्ध न हो तब तक चुप होकर बैठना नहीं है, ऐसा निर्णय करें । मोक्ष भले ही कार्य हो, परन्तु कार्य के पीछे नहीं दौड़ा जाता । तृप्ति भले ही कार्य हो, परन्तु तृप्ति के पीछे नहीं दौड़ा जाता । भोजन अथवा पानी के पीछे दौड़ा जा सकता है । भोजन, पानी मिलने

के बाद तृप्ति मिलेगी ही । मोक्ष की साधना के पीछे दौड़ें तो मोक्ष मिलेगा ही । कार्य तो कारण रूपी कड़ी में से खिलता हुआ फूल है । कारण को ठीक करें तो कार्य ठीक हो ही जायेगा । साधना करो तो सिद्धि मिल ही जायेगी ।

जिस भूमिका पर हम हैं, उस भूमिका का (श्रावक अथवा साधु का) अनुष्ठान करते रहें तो सिद्धि मिलेगी ही ।

गणधरों ने भगवान में जब भगवत्ता देखी तब उन्होंने ने अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया । मात्र दो चार घंटे कि दो-चार दिन नहीं । सम्पूर्ण जीवन का समर्पण सबसे बड़ा समर्पण है ।

तीर्थकरों की बराबरी तो क्या, उनका वर्णन भी कौन कर सकता है ?

कल हमने तीर्थकरों के दस विशिष्ट गुण देखे थे याद हैं न ? पुनः उन हरिभद्रसूरिजी के शब्द देख लें -

आकालमेते परार्थव्यसनिनः १, उपसर्जनीकृतस्वार्थाः २, उचितक्रियावन्तः ३, अदीनभावाः ४, सफलारम्भिणः ५, अहृद्वानुशयाः ६, कृतज्ञतापतयः ७, अनुपहतचित्ताः ८, देवगुरुबहुमानिनः ९ तथा गम्भीराशयाः १० ।

ये कोई शब्दों के स्वस्तिक (साथिये) नहीं हैं, वास्तविकता है । ये दस गुण बीज रूप हों तो ही वृक्ष के रूप में कभी बाहर आते हैं ।

स्वार्थ छोड़ कर परार्थ प्रारम्भ होता है तब से धर्म प्रारम्भ होता है । इसीलिए तो 'जयवीयराण' में 'परत्थकरणं च' परार्थ-करण की प्रभु से हम सदा याचना करते हैं ।

अनादि काल से जीव स्वार्थ का आदी है, अभ्यस्त है । वाचना में आना हो तो पहले किसके स्थान का विचार करें ? कोशिश तो ऐसी ही है कि मुझे ही अकेले को बैठने को मिले । दूसरे का होना हो वैसा हो । ठेठ निगोद में भी ऐसी भावना थी कि दूसरे सब मर जायें, मैं ही अकेला जीवित रहूँ । इसी भावना से सगे दो भाई भी परस्पर विचार करते हैं कि मुझे ही सब मिल जायें, दूसरा भले ही मर जाये । यदि नहीं मरता हो तो मैं मार डालूँ ।

वह कथा सुनी है न ? दो भाई धन कमा कर स्वगांव पुनः लौट रहे थे । मार्ग में दोनों ने एक दूसरे की हत्या करने का विचार किया । एक भाई विष मिली मिठाई लाया । दूसरा भाई सोये हुए की हत्या करके मिठाई खाने के लिए बैठा । दोनों मर गये ।

यही स्वार्थ-भाव है । दूसरे सब को मार कर मैं अकेला ही उपभोग करूं । यह तीव्रतम स्वार्थ-भाव है । यही सहजमल है । यही वृत्ति हमारा मोक्ष रोकती है, यही सतत कर्म-बंधन करती है और यही वृत्ति हमें दुःखी करती है । वस्तुतः हमारी ही आत्मा हमें दुःखी करती है ।

* कृतज्ञता एवं परोपकार ये दो गुण ही मानव-जीवन की शोभा हैं । इनसे ही धरती टिकी हुई है ।

जब तक उपकार न हो, छोटा-बड़ा भी जब तक दूसरों का काम नहीं करूं, तब तक भोजन नहीं करूंगा । क्या ऐसा नियम हम रख सकते हैं ?

परोपकार की भावना ही नहीं, व्यसन चाहिये, रस चाहिये । इसके बिना नहीं चलेगा, ऐसा जीवन चाहिये ।

(९) देवगुरुबहुमानिनः ।

तीर्थंकर स्वयं भी अन्य भवों में ऐसे गुणों के लिए बल देव एवं गुरु से प्राप्त करते हैं । नमस्कार से ही परम की शक्ति हममें उतरती है ।

हमारी समग्र क्रिया नमस्कार से परिपूर्ण है । यदि भावपूर्वक क्रिया की जाये तो परम का अवतरण होगा ही । योगोद्धहन में क्या है ? एक-एक खमासमण नमस्कार-भाव उत्पन्न करने वाला है, परम के अवतरण का कारण है ।

गुरु बहुमाणो मोक्षो । भगवान् शायद विलम्ब कर सकते हैं, परन्तु गुरु पहले मिलते हैं । राष्ट्रपति या प्रधानमन्त्री तो बाद में मिलते हैं, पहले सचिव को मिलना पड़ता है । उसी तरह से भगवान् को मिलना हो तो गुरु को मिलना पड़ता है ।

नयसार के भव में गुरु का बहुमान किया तो क्या मिला ? गुरु स्वयं भगवान् बने होंगे कि नहीं, यह मालूम नहीं है, परन्तु नयसार भगवान् बन गया ।

नये साधक कभी-कभी मेरे पास आते रहते हैं । वे सच्चा मार्ग-दर्शन प्राप्त करके ऐसी धन्यता व्यक्त करते हैं कि ओह ! आज मेरा जीवन सफल हो गया ! मैं धन्य हो गया !

अधिक नम्रता आती है, त्यों त्यों अधिक अधिक गुण आते हैं ।

जिस गुण का अभाव प्रतीत हो, वह गुण प्राप्त करने का संकल्प करके उसके धारकों को वन्दन करते जाओ तो वह गुण आयेगा ही ।

‘भगवन् ! मुझे दासत्व दीजिये ।’ ऐसी नम्रतापूर्वक गणधरों ने याचना की है । क्या भगवान ने इनकार किया ?

क्या आपने कभी याचना की है ? कई बार भगवान मिले होंगे, परन्तु हमने दीन बन कर याचना नहीं की होगी, अकड़ बने रहे होंगे ।

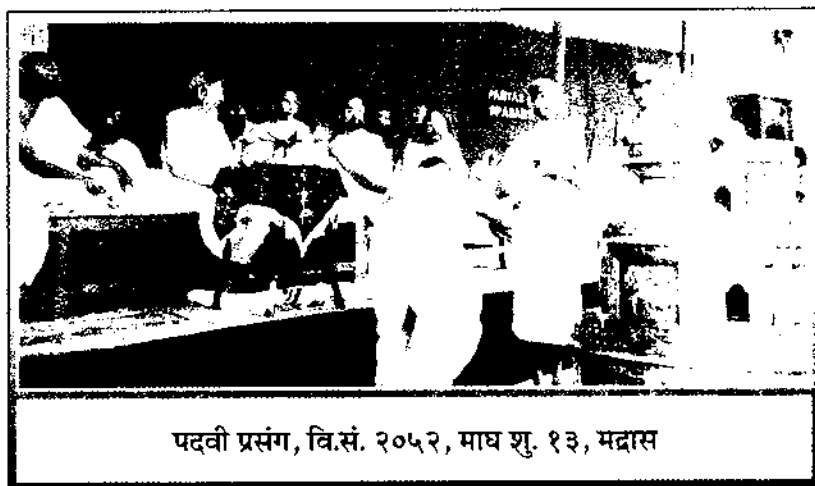
आज प्रातः आचार्य भगवन्तों ने कैसे आशीर्वाद दिये ? यद्यपि आचार्य भगवन्तों ने शुभेच्छा व्यक्त की, परन्तु मेरे लिए तो वे आशीर्वाद बने ? मुझ में ऐसे गुण आयें तो उत्तम है । ऐसी मैं ने उस समय इच्छा की थी । कोई भी व्यक्ति प्रशंसा करे तब यह नहीं मानें कि वे गुण मुझ में हैं; परन्तु यह मानें कि वे गुण भविष्य में मुझ में आ जायें ।

दीक्षा ग्रहण करने के कोई भी मेरे भाव नहीं थे, फिर भी लोगों में उस समय ऐसी बातें चलती थी कि ‘अक्षय दीक्षा ग्रहण करने वाला है ।’ उस समय मैं सोचता कि लोगों के भाव सफल हों, और मुझे सचमुच दीक्षा मिल गई ।

(१०) गम्भीराशयाः ।

परोपकार से गुणों का प्रारम्भ होता है । अन्त में देव-गुरु के बहुमान से गम्भीरता प्रकट होती है । गम्भीरता गुणों की परकाष्ठा है । गुण प्राप्त करके आछकलाई नहीं करनी है, गम्भीरता लानी है ।

ॐ ॐ ॐ



पदवी प्रसंग, वि.सं. २०५२, माघ शु. १३, मद्रास

१३-९-२०००, बुधवार
भादौ शुक्ला-१५ : सात चौबीसी धर्मशाला

* तीर्थ की स्थापना से प्रारम्भ हुआ मुक्ति-मार्ग इक्कीस हजार वर्षों तक रहेगा । तब तक भगवान का अनुग्रह रहेगा । जो कोई भी भगवान का स्मरण करेगा, उसमें भगवान की शक्ति जागृत होगी ही । भगवान के अनुग्रह को समझने के लिए 'ललित विस्तरा' अद्भुत ग्रन्थ है ।

कलियुग में भगवान को किस प्रकार समझें ? कलियुग अर्थात् घोर अन्धकार । यहां कहीं भी भगवान का प्रकाश देखने को नहीं मिलेगा । ऐसे घोर अन्धकार में 'ललित विस्तरा' टिमटिमाता दीपक है ।

* यदि कनेक्शन कटा हुआ होगा तो चाहे जितनी स्विच दबाओ, प्रकाश नहीं होगा । भगवान के साथ 'कनेक्शन' टूटा हुआ हो, तो चाहे जितने अनुष्ठान करो, परम का अनुभव नहीं होगा । भगवान के साथ जुड़ना ही धर्म-क्रिया का प्राण है । इस के बिना सभी धर्म-क्रियाएँ निर्जीव हैं, निष्प्राण हैं, निर्बीज हैं (बीज रहित हैं) ।

* पुरिसुत्तमाणं । कितनेक रत्न अनायास ही दूसरों से

चमकदार होते हैं । उस प्रकार तीर्थकरों की आत्माएँ भी सहज ही चमकदार होती हैं । इसीलिए वे पुरुषोत्तम कहलाते हैं । कांच पर चाहे जतने पोलिश करो, परन्तु हीरे जैसी चमक उसमें नहीं आती; अडियल घोड़े को चाहे जितना प्रशिक्षण दो, परन्तु जातिमान घोड़े जैसा वह नहीं बन सकेगा । सामान्य जीवों को चाहे जितने संस्कार दो, वे भगवान के समान नहीं बन सकते ।

एक मत ऐसा है कि जो सबको समान मानता है । इस पद से उस मत का खण्डन हुआ ।

* तामिलनाडू में गिरी हुई स्थिति वाले एक धनाढ्य व्यक्ति ने अपनी हीरों वाली एक अंगूठी एक फेरी वाले को पांच हजार रूपयों में बेची । फेरी वाले ने एक व्यापारी को वह अंगूठी पचास हजार रूपयों में बेची । व्यापारी ने बड़े व्यापारी को वह एक लाख रूपये में बेची और अन्त में वह अंगूठी परदेश में पांच लाख रूपयों में बिकी ।

यह घटी हुई घटना है ।

हीरे की पहचान सब नहीं कर सकते ।

भगवान की पहचान सब नहीं कर सकते ।

हम फेरी वाले जैसे नहीं हैं न ?

प्रज्ञावान् व्यक्ति के अतिरिक्त भगवान एवं भगवान के दर्शन को कौन समझ सकता है ?

भगवान और भगवान की महिमा चाहे जिसे बताने मत लग जाना । चाहे जिसके साथ चर्चा करने मत लगना । कर्म के अमुक विगम के बिना यह तत्त्व समझ में नहीं आता । भगवान की कृपा वैसे ही समझ में नहीं आती । उसके लिए भी भगवान की कृपा चाहिये । कठोर कर्म वाले की समझ में यह नहीं आयेगा । वह तो यही कहेगा कि भगवान क्या करें ? हमारा पुरुषार्थ ही प्रमुख है । ऐसे मनुष्यों के साथ वाद-विवाद न करें । यह चर्चा का विषय नहीं है, अनुभूति का विषय है ।

भव्यत्व सबका समान होता है, परन्तु तथाभव्यत्व प्रत्येक का भिन्न होता है । इसीलिए १५ भेदों से जीव सिद्ध होते हैं । सिद्ध

याद आते हैं न ?

‘भक्तामर’ में गुणों की बात है ही न ?

‘भक्तामर’ आदि में तो सब-कुछ है, परन्तु कौन सी बात कहां लगानी यही मुख्य बात है। हथौड़ा लगते ही मशीन चालू हो गई यह बराबर है, परन्तु हथौड़ा कहां लगाना यह महत्त्वपूर्ण बात है।

९९,९९९ रुपये होते हुए भी लाख नहीं कहलाते। इनमें एक रूपया डालो तो ही लाख कहलायेंगे। एक रुपये का कितना महत्त्व ? फिर भी यह नहीं माने कि एक रूपया ही लाख कहलाता है। ९९,९९९ रुपये थे इसलिए लाख रुपये हुए न ?

उस तरह से पूर्व के यथाप्रवृत्तिकरण निष्फल नहीं गये। वे सब ९९,९९९ रूपयों जैसे हैं। वे नहीं किये होते तो चरम यथा प्रवृत्तिकरण कहां मिलनेवाला था ?

* पार्श्वनाथ संतानीय अनेक श्रावक थे, फिर भी ग्यारह में से एक भी श्रावक गणधर नहीं बना, सभी ब्राह्मण थे।

पूर्व भव में जो गणधर नाम कर्म बांध आये वही गणधर बन सकता है। तीर्थकरों की तरह गणधर भी निश्चित होते हैं।

* पन्द्रह भेदों से सिद्ध भले ही बनें परन्तु मोक्ष में जानेके बाद सब समान हैं। वहां कोई भेद नहीं है। ऐसा नहीं है कि तीर्थकर भगवानों को अधिक सुख होता है और दूसरों को कम। वहां सभी सिद्धों को समान सुख होता है।

दुःखी, दरिद्र (निर्धन), सैनिक, वासुदेव या चक्रवर्ती आदि में यहां भेद है, परन्तु मृत्यु में सभी समान है, सबको मरना ही पड़ता है। उसमें कोई अन्तर नहीं है। आयुष्य का क्षय होने पर मरना पड़ता है।

चन्द्रकान्तभाई और पद्माबेन दोनों एक साथ चल बसे। साथ वाला बालक बच गया। भुज-निवासी एक परिवार के सात व्यक्ति चल बसे, एक बच गया। आयुष्य हो वह बच जाता है। आयुष्य समाप्त हो जाय वह चला जाता है। यह नियम सब पर लागू होता है। मृत्यु में सब समान हैं, उस प्रकार सिद्धशिला में सभी सिद्ध समान हैं।

* इन समस्त गुणों के द्वारा भगवान की श्रेष्ठता जानी । अब ये गुण चाहिये, तो क्या करें ? जौहरी का माल अच्छा लगा । खरीदने की इच्छा हो गई तो क्या करना पड़ेगा ? मूल्य चुकाना पड़ेगा न ? यहां सिर्फ गुण-राग की आवश्यकता है । जो गुण पसन्द पड़ने लगे तो वे आये बिना नहीं रहेंगे । जौहरी के जवाहिरात पसन्द आ जायें तो मिल ही जायेगा ऐसा नहीं है, परन्तु यहां गुण पसन्द आ जायें तो आने लगते ही हैं । इसमें कोई शंका नहीं है ।

‘गुणानुराग कुलक’ में यहां तक कहा है कि ‘आतिथ्यर-
पयाओ’ तीर्थंकर पद तक की पदवी गुणानुरागी के लिए दुर्लभ
नहीं हैं ।

* आपका एक भी दोष बोला नहीं जाये उसकी मैं सतत सावधानी रखता हूँ। आपको हितोपदेश देते देते भी इस विषय में मैं अत्यन्त जागृत रहता हूँ, क्योंकि पू.पं. भद्रंकरविजयजी महाराज, पू. कनकसूरिजी महाराज आदि के द्वारा हमें यह सीखने को मिला है। उनके मुंह से मैं ने कभी किसी का दोष कहते नहीं सुना।

दूसरे के दोष बताना कि दोष सुनना अर्थात् स्वयं दोषी बनने के लिए भूमिका तैयार करनी ।

यह जीभ इसलिए नहीं मिली । यदि इस जीभ का उपयोग दोष बताने में किया तो पुनः यह जीभ कहां मिलेगी ?

✦ ✦ ✦

पढ़ते हैं पुस्तक, परन्तु आभास होता रहता है कि हम 'वांकी' में बैठे हैं और उनके स्वमुख से ही सुन रहे हैं ।

सचमुच, यह पुस्तक हम जैसों के जीवन में दीपक
तुल्य नहीं, परन्तु सूर्य के समान है ।

- साध्वी विंश्वनंदिताश्री



पदवी प्रसंग, वि.सं. २०५२, माघ शु. १३, मद्रास

१४-९-२०००, गुरुवार
अश्विन कृष्णा-१ : सात चौबीसी धर्मशाला

* इतने वर्ष व्यतीत होने पर भी तीर्थ की शक्ति आज भी कम नहीं हुई । तारने का कार्य यह कर ही रही है । मात्र सम्पर्क में आने की आवश्यकता है । जिस लोहे का पारसमणि के साथ स्पर्श हुआ, वह स्वर्ण ही बन गया । प्रभु-शासन का जिसे स्पर्श हुआ वह परम बन ही गया ।

* भगवती में पांच प्रकार के देव आते हैं : (१) भव्य द्रव्य देव, भविष्य में जो देव बनने वाले हैं वै ।, (२) नरदेव - चक्रवर्ती, (३) धर्मदेव-साधु, (४) देवाधिदेव - तीर्थकर भगवान्, (५) भावदेव - वर्तमान में देव ।

इनमें देवाधिदेव कितने ? नरदेवों की अपेक्षा संख्यातगुने अधिक । एक ही भगवान से कार्य नहीं होता ? नहीं, पुनः पुनः भगवान होते ही रहते हैं । भगवान तो पहले भी थे, परन्तु हम तैयार नहीं थे, उपादान तैयार नहीं था । उपादान भी निमित्त के बिना तैयार नहीं होता, यह भी समझ लें । अण्डे के बिना मुर्गी नहीं और मुर्गी के बिना अण्डे नहीं । उपादान के बिना निमित्त और निमित्त के बिना उपादान तैयार नहीं होता ।

* हमने चारित्र प्राप्त कर लिया अतः काम हो गया, यह न मानें । दूसरों को यह चारित्र देने का प्रयत्न करें, तो ही आपका यह गुण टिकेगा ।

‘एकेन्द्रियाद्या अपि हन्त जीवाः’

- विनयविजयजी

एकेन्द्रिय आदि जीव भी मनुष्य बन कर कब जैन धर्म प्राप्त करके सुखी होंगे ? - इस प्रकार भावना भानी है ।

पर-हित-चिन्तन के बिना स्व-हित भी कहां होने वाला है ? पर-हित चिन्तन की अनेक बातें सुनने पर भी हमारे विनय वैयावच्च में कोई फरक न आये तो अपने लिए सुनना व्यर्थ समझें ।

मोक्ष की साधना में जितना वेग लायेंगे, उतने ही शीघ्र मोक्ष में जायेंगे । निगोद के जीवों के लिए स्थान खाली होगा । वे स्थान खाली होने की प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

कैद में से निकला हुआ कैदी दूसरों को भी जेल में से मुक्त करने का प्रयत्न करता है, उस प्रकार हमें भी दूसरों को संसार में से निकालने का प्रयत्न करना है ।

* ऐसा एक उदाहरण बताएँ, जिसमें देव-गुरु की भक्ति के बिना कोई मोक्ष में गया हो । आप शायद मरुदेवी माता का नाम बतायेंगे, परन्तु आप यदि ‘शत्रुंजय - माहात्म्य’ पढ़ें तो आपको मालूम होगा कि भगवान के प्रति अपार प्रेम से ही उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ है । भगवान के साथ माता-पिता आदि के सम्बन्ध की तरह पुत्र का सम्बन्ध भी जोड़ा जा सकता है ।

(७) पुरिससीहाणं ।

इस विशेषण से भगवान का सिंह-तुल्य पराक्रम देखने को मिलेगा । उत्कृष्ट पराक्रम के बिना मोहनीय आदि कर्मों का क्षय नहीं होगा ।

* समस्त जीवों के प्रति मैत्री-भाव का व्यवहार करें, आत्म-वत् व्यवहार करें, इससे भी आगे बढ़कर परमात्म-तुल्य भाव से व्यवहार करें । यह जिनशासन का सार है ।

* ‘पुरिससीहाणं’ पद से सांकृत्य मत का निरसन हुआ है । संकृत के शिष्य सांकृत्य कहलाये हैं । उनकी मान्यता है कि

परमात्मा उपमारहित हैं। अतः स्तुति में कोई उपमा नहीं चाहिये। उपमा हीन या अधिक होने पर मृषावाद लगेगा। अतः स्तुति उपमारहित होनी चाहिये। जैन दर्शन में यह मत मान्य नहीं है।

इसीलिए भगवान को यहां सिंह, गंधहस्ती, पुण्डरीक आदि की उपमाएँ दी गई हैं।

सिंह याद आने पर शौर्य याद आता है। शौर्य याद आने पर महाराणा प्रताप याद आते हैं। जिस युग में राजपूत भी अपनी बहनों-बेटियों का मुगलों के साथ ब्याह करते थे, उस युग में टेक रखने वाले राणा ने जीवनभर मुगल शहंशाहों के साथ संग्राम किया, संघर्ष किया, अपूर्व शौर्य बताया। वे कदापि झुके नहीं। हमें कर्मों के साथ ऐसा संघर्ष करना है, जो परमात्मा ने किया है। इसीलिए प्रभु पुरुषों में सिंह के समान हैं।

भगवान को नमन करने से उनके समान शौर्य गुण हमारे भीतर आता ही है। दुर्गुणी व्यक्ति को नमन करने से उसके समान दुर्गुण हमारे भीतर आते ही हैं। इसीलिए दुर्गुणी के साथ मित्रता करने का निषेध किया है। आप किसके साथ बैठते हैं? किसे पढ़ते हैं? यह कह दो तो आपके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में ध्यान आ जायेगा।

सदगुणों का प्रभाव पड़ने में तो फिर भी समय लगता है, दुर्गुण तो तुरन्त चिपक जाते हैं।

लहसुन खाकर आओ तो हमें गन्ध से तुरन्त पता लग जाता है।

इसी प्रकार से आपके दुर्गुणों की अव्यक्त गन्ध आती है। इसी लिए आदमी दुर्गुणी से दूर भागता है।

दुर्गुणी को दुर्भग बनाने वाले दुर्गुण हैं। उन दुर्गुणों को अत्यन्त पराक्रम पूर्वक परास्त करने हैं, जिस प्रकार अर्णोराज को कुमारपाल ने पराक्रम बताया था।

हम क्रोध करने वाले पर क्रोध करते हैं। कुत्ते की तरह हम लकड़ी को काटते हैं, परन्तु भगवान लकड़ी को नहीं, लकड़ी लगाने वाले को देखते हैं। वह क्रोध करने वाले पर नहीं, परन्तु स्व में उत्पन्न होने वाले क्रोध पर ही क्रोध करते हैं। अपनी पीड़ा में दूसरे किसी को उत्तरदायी नहीं गिनते, स्व को ही उत्तरदायी गिनते हैं।

सेवा करने से शरीर नहीं घिसता । घिस जाये तो मेरी जवाबदारी । मैं ठीक कहता हूँ - सेवा से शरीर नहीं बिगड़ता । वास्तव में तो सेवा एवं श्रम छोड़ देने से ही शरीर बिगड़ता है ।

भगवान के साधुओं की सेवा का सौभाग्य कहां से प्राप्त हो ? सेवा से भगवान की आज्ञा का पालन होता है ।

पूज्य गणिश्री मुक्तिचन्द्रविजयजी : दूसरे कम काम करें उसका दुःख है ।

पूज्यश्री : मन को बदल दो । मन का झुकाव बदलेगा तो सब ठीक हो जायेगा । दूसरे कम कार्य करें कि बिल्कुल न करें, परन्तु आप अधिक-अधिक करेंगे तो आपको तो अधिक लाभ ही मिलेगा, अधिक पुण्य बंधेगा ।

* 'भरहेसर सज्जाय' में जिन महापुरुषों और महासतियों के नाम महान् आचार्य भगवन् भी लेते हैं, उसका क्या कारण है ? आज तक किसी महान् आचार्य भगवन् ने प्रश्न नहीं उठाया कि हम श्रावक-श्राविकाओं के नाम क्यों लें ?

स्वयं भगवान महावीर ने सुलसा, आनन्द, कामदेव श्रावक आदि की समवसरण में प्रशंसा की है ।

जब कुमारपाल को कंटकेश्वरी ने कोढ़ग्रस्त (कुष्ठ रोगी) बनाया तब हेमचन्द्रसूरिजी ने कुमारपाल को बचाया था ।

करुणामय जैन धर्म की कोई निन्दा न करे, अतः कुमारपाल चिता में जल मरना चाहते थे, परन्तु उदायन मन्त्री ने हेमचन्द्रसूरिजी को बात करने पर उन्होंने ने अभिमन्त्रित जल के द्वारा उनका कुष्ठ रोग दूर किया था ।

ऐसे थे कुमारपाल, अतः उन्हें 'परमार्हत्' का बिरुद मिला हुआ है । 'परमार्हत्' अर्थात् परम आर्हत्, परम श्रावक । कुमारपाल जैसे को आचार्यश्री क्यों बचायें ? कुमारपाल जैसे की आचार्यश्री प्रशंसा क्यों करें ?

उपबृंहणा अर्थात् क्या ? चतुर्विध संघ में रहे गुणवान की प्रशंसा । वह उपबृंहणा भी न करें तो दर्शनाचार में अतिचार लगता है, यह जानते हैं न ?

‘संघमांही गुणवंततणी अनुपबृंहणा कीधी’

- अतिचार

यह सब भगवान से प्राप्त होता है । इसीलिए मैं भक्ति पर इतना बल देता हूं ।

कल अष्टापद की पूजा में देखा न ?

भरत कहता है - 'दीओ दरिस्सण महाराज !'

भरत क्या अनपढ़ थे ? क्या वे नहीं जानते थे कि सम्यग्दर्शन मिले तो ही प्रभु का दर्शन मिलेगा । परन्तु इस तरह प्रभु का स्मरण करने से ही प्राप्त सम्यग्दर्शन निर्मल होता है, यह भी वे जानते थे न ?

ऐसे दर्शन के लिए आपके मन में उत्कण्ठा जगी ? भगवान को जिनहर्ष की तरह आप भी कहें - प्रभु दर्शन दें । 'धुआंडे धीजुं नहीं साहिब ! पेट पड़्या पतीजे ।' मुझे ऐसे ही सन्तोष नहीं मिलेगा, मुझे दर्शन चाहिये ही ।

* एक भगवान को पकड़ो तो भगवान के सभी गुण आपके ।

एक गुरु को पकड़ो, गुरु के सभी गुण आपके ।

‘अब तो अधिकारी होइ बैठे, प्रभु-गण अखय खजान में...’

हम मगन भये प्रभु ध्यान में,

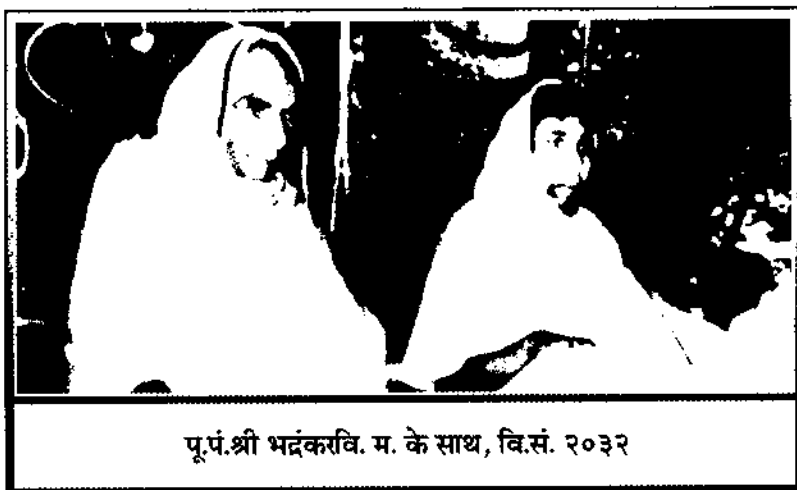
बिसर गई दुविधा तन-मन की अचिरासृत गुण-गान में ।'

- उपा. यशोविजयजी

तन-मन सब भूल जाये, मात्र चिदानन्द का आस्वादन ही बाकी रहे, ऐसी प्रभु की मग्नता यशोविजयजी को मिल जाये, 'रंग रसिया रंग रस बन्यो' ऐसा बोलनेवाले वीरविजयजी को वेधकता का आस्वादन मिल जाये तो हमें क्यों न मिले ?

प्रभु के साथ लीनता आ जाये तो फिर दीनता कैसी ?
इसीलिए कहता हूँ - भगवान में तन्मय बनें, भगवान को पकड़े ।
भगवान को पकड़ ने पर समस्त गुण आ जायेंगे ।

इस 'ललित विस्तार' में भार देकर कहा गया है कि भगवान के अनुग्रह के बिना एक भी गुण नहीं मिलेगा ।



पू.पं.श्री भद्रंकरवि. म. के साथ, वि.सं. २०३२

१५-९-२०००, शुक्रवार
अश्विन कृष्णा-२ : सात चौबीसी धर्मशाला

* भगवान ने मार्ग बताया । चलना तो हमें ही पड़ता है ।
भगवान का अनुग्रह स्वीकार करो तो पुरुषार्थ करने का मन होता है । भगवान का अनुग्रह कैसे कार्य करता है ? भोजन-पानी हमने ग्रहण कर लिया अतः भूख-प्यास मिट गई यह मान कर हम स्वयं को इतनी प्रधानता दे देते हैं, भोजन-पानी को सर्वथा भूल जाते हैं, 'मैं' रह जाता है; भोजन-आदि छूट जाते हैं । यही भूल यहां करते हैं । 'मैं' रह जाता है, भगवान छूट जाते हैं । भोजन-पानी के बिना दूसरे पदार्थों से भूख-प्यास नहीं मिटती, उस प्रकार भगवान के बिना दूसरे से मुक्ति नहीं मिलती ।

उपाध्यायजी महाराज के ये शब्द देखें :

'काल स्वभाव ने भवितव्यता, ए सघला तुझ दासो रे;
मुख्य हेतु तु मोक्ष नो, ए मुझने सबल विश्वासो रे ।'

- उपा. यशोविजयजी

ऐसे आगमधर पुरुष यह कहते हों, व्याकरण, काव्य, न्याय, कोश, आगम, वेद, उपनिषद्, पुराण आदि के प्रकाण्ड ज्ञाता महापुरुष

जब ऐसा कहते हों, तब क्या बात विचारणीय नहीं लगती ? क्या उनके जितनी बुद्धि और उनके जितना अध्ययन हमारा है ?

भगवान से सब होता है यह सही है, परन्तु पुरुषार्थ तो अपना ही है न ? यह सोच कर भगवान और भगवान की आज्ञा गौण करके हम स्वयं को प्रधान मान लेते हैं, परन्तु तनिक सोचें कि भगवान के बिना दूसरे किसी की (चक्रवर्ती या वासुदेव आदि की) आज्ञा पालन की हो तो क्या मोक्ष होता है ? अहंकार नष्ट करना हो तो यह चिन्तन सामने रखना ही पड़ेगा । उसके बिना साधना का मार्ग नहीं खुलेगा । अहंकारयुक्त चित्त कदापि साधना के योग्य नहीं बन सकता ।

* भगवान के जिस गुण को प्रधानता देकर स्तुति करें, वह गुण अपने भीतर आता ही है । यह नियम है । कभी प्रयोग करके देखें ।

‘पुरिससीहाणं’ विशेषण में भगवान का सत्त्वगुण बताया है ।

जब हेमचन्द्रसूरिजी पहली बार कुमारपाल को मिले तब कुमारपाल ने उन्हें पूछा था कि उत्कृष्ट गुण कौन सा है ? पूछने वाले को ध्यान में रख कर सूरिजी ने उत्तर दिया - ‘सत्त्व गुण ।’

सत्त्व गुण से ही तीन भाईयों में से कुमारपाल को पसन्द किया गया ।

पहला नम्रतापूर्वक बैठा था, दूसरा गरीब बना बैठा था, जबकि कुमारपाल रोब से बैठा था । इसीलिए उसका चयन किया गया ।

सत्त्वगुण वीर्याचार के पालन से प्रकट होता है । इसीलिए दूसरे चार आचारों जितने भेद (३६ भेद) वीर्याचार के हैं । इसका अर्थ यह हुआ कि सबमें वीर्य चाहिये । यदि वीर्य न हो तो एक भी आचार का पालन नहीं हो सकता । देववन्दन-प्रतिक्रमण बैठे-बैठे करना, शीघ्र करना, मन चंचल होना आदि दोष आत्म-वीर्य की खामी के कारण उत्पन्न होते हैं । श्रावकों के वीर्याचार के अतिचार देखें । सब समझ में आ जायेगा ।

माता-पिता ने तो भगवान का नाम वर्धमान रखा, परन्तु उनके सत्त्व गुण से ही आकर्षित होकर देवों ने दूसरा नाम ‘महावीर’ रखा ।

सत्त्व गुण वाला ही परिषह आदि सहन कर सकता है, धैर्य रख सकता है। हाथी चलता है, कुत्ते भौंकते हैं। तब हाथी क्या करता है ?

‘हाथी चलत बाजार, कुत्ता भसत हजार ।’

कुत्ते जैसे परिषहों से हाथी जैसा सत्त्ववान आत्मा थोड़ा चलायमान होता है ?

भगवान में यह सत्त्वगुण कैसा उत्कृष्ट है ? छः छः महिनों तक संगम पीछे पड़ा था, फिर भी भगवान सत्त्व से एक इंच भी विचलित नहीं हुए। एक रात्रि में बाईस-बाईस उपसर्ग हुए, फिर भी भगवान के चेहरे पर तनिक भी भय की रेखा नहीं दिखाई दी। यदि भय होता तो साधना कैसे हो पाती ? भय अर्थात् चित्त की चंचलता। साधक को यह कैसे होता ?

भगवान में तो भय होता ही नहीं, भगवान की शरण लेने वाले में भी भय नहीं होता। इसीलिए भगवान को अभयंकर एवं अभयदाता कहा गया है।

‘अभयकरे सरणं पवज्जहा ।’

- अजित शान्ति

‘हे पुरुषो ! यदि आप अपने कष्ट मिटाना चाहते हों, सुख का कारण खोजते हो तो अभयंकर शान्ति-अजित का शरण स्वीकार करें,’ - अजित शान्ति में नन्दिषेण मुनि ने यह घोषणा की है।

अभय नहीं मिला हो तो समझें कि अभी तक हमने भगवान का शरण स्वीकार नहीं किया है।

भगवान तो अभय होते ही हैं, भगवान के भक्त भी अभय होते हैं। आनन्द, कामदेव जैसे श्रावक भी भयंकर देवकृत उपसर्गों से विचलित नहीं हुए, भयभीत नहीं हुए।

न चिन्तापीन्द्रियवर्गे ।

सत्त्वशील सहज ही इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर सकता है। भगवान तो सात्त्विकों में शिरोमणि है।

‘हे प्रभु ! आपने मन को वश में किया, पर बलात्कार से नहीं। इन्द्रियों को वश में की परन्तु बलपूर्वक नहीं, मात्र शिथिलता से आपने सबको जीत लिये है।’

पटु अभ्यास एवं आदर से वैराग्य को आपने ऐसा वश में किया कि जो किसी जन्म में आपका साथ न छोड़े । दुःख में तो सबको वैराग्य आता है, सुख में भी आपको वैराग्य है ।

पूज्य हेमचन्द्रसूरिजी की प्रभु को यह स्तुति है ।

न खेदः संयमाध्वनि ।

साधना में आलस आना, हताश-निराश होना, खिन्न, उद्विग्न होना, यह सब सत्त्वगुण की कमी के कारण होता है ।

भगवान का भक्त भय, द्वेष एवं खेद से परे होता है । भय, द्वेष एवं खेद हो तब तक साधना की पूर्व भूमिका भी तैयार नहीं होती । आगे की तो बात ही कहां ?

क्या हम भय, द्वेष, खेद से कुछ अंशों में भी मुक्त हुए हैं ? क्या हम में मुक्त होने की भावना जगी है ?

‘सेवन-कारण पहिली भूमिका रे, अभय, अद्वेष, अखेद ।’

- पूज्य आनन्दधनजी

ये ‘योगदृष्टि समुच्चय’ के पदार्थ हैं ।

निष्प्रकम्पता सदध्याने

ध्यान में भगवान को अत्यन्त निष्प्रकम्पता होती है । मेरु तुल्य भगवान अकम्प होते हैं । उन्हें कौन डिगा सकता है ?

ऋषभदेव भगवान को कर्म क्षय करने में हजार वर्ष लगे थे, परन्तु महावीर स्वामी ने मात्र साढ़े बारह वर्षों में ही उनसे भयंकर कर्मों का क्षय कर दिया, जो इस सत्त्वगुण के कारण ही वे कर पाये ।

* कर्म का ऋण चूकता न करें तो कर्म हमें छोड़ने वाले नहीं हैं । भगवान को भी नहीं छोड़ते तो हमें कैसे छोड़े, क्यों छोड़े ? कई बार प्रश्न उठता है कि महामुनियों को रोग क्यों होते होंगे ? पद्मविजयजी, कान्तिविजयजी, भद्रंकरविजयजी आदि को रोग हुए थे । ऐसा उत्तम जीवन जीने वालों को भी ऐसे रोग ?

कर्म समझते हैं कि ये महात्मा मुक्ति के मार्ग पर हैं । मंजिल समीप है । मुक्ति तक हमारी पहुंच नहीं है । स्वर्ग में सुख के सिवाय कुछ नहीं है । अतः अभी ही सब हिसाब चूकता करने दो ।

अज्ञानी मनुष्य धर्मात्मा लोगों को होते कष्टों को देख कर कहते हैं कि धर्मी के घर डाका पड़ा, परन्तु उन्हें कर्मों के हिसाब का पता नहीं है ।

‘उत्तराध्ययन’ में एक सुन्दर दृष्टान्त आता है -

गाय को सूखा और बकरे को उत्तम हरा घास दिया जाता देख कर निराश हुए बछड़े को गाय ने कहा, भोले ! तुझे पता नहीं है कि यह बकरा कसाई के पास जायेगा तब सब पता लगेगा ।

कसाई के पास जाते, रोते, कटते बकरे को देखकर बछड़ा सब समझ गया कि इस समय मिलता सूखा घास भविष्य के लिए उत्तम है, जब कि इस समय मिलते भाल-मलीदे भविष्य के लिए भयंकर है ।

जे सारक्खाया ते तयक्खाया

जे तयक्खाया ते सारक्खाया

राग-रंग, मौज-शौक करने वाले पापी मनुष्यों को देख कर कदापि विचलित न बनें । आज के राग-रंग भविष्य की आग हैं ।

आज के विराग भावी के बाग हैं ।

* कमल का स्वभाव है - देखते ही सबको आनन्द हो ।
भगवान को देखते ही सबको आनन्द आता है । उनकी मुद्रा, उनकी वाणी, उनका अस्तित्व सबको आनन्द की प्रभावना करने के लिए ही उत्पन्न हुआ होता है ।

इसीलिए भगवान ‘पुरिसवरपुंडरीआणं’ है ।

ॐ ॐ ॐ

निरपेक्ष मुनि

मुनिराज निर्भय क्यों होते हैं ? शुद्ध चारित्र के सम्मुख बने मुनि जगत् के ज्ञेय पदार्थ में ज्ञान को नहीं जोड़ते । मात्र ज्ञेय पदार्थ को जानते हैं । तथा उन्हें कुछ भी छिपाना नहीं है, किसी के साथ कुछ भी लेने-देने के विकल्प नहीं हैं । ऐसे मुनिराज को जहां लोक-अपेक्षा या आकांक्षा नहीं है, वहां भय कहां से होगा ?



पू. भुवनभानुसूरिजी के साथ, सुरत, वि.सं. २०४८

१९-९-२०००, शनिवार
अश्विन कृष्णा-३ : सात चौबीसी धर्मशाला

मुक्ति मार्ग की प्रवृत्ति इस समय चल रही है, जिसमें मुख्य अनुग्रह प्रभु का है, जो तीर्थ है तब तक चलता रहेगा ।

व्यक्तिगत तीर्थ बदल जाते हैं, सामान्य तीर्थ सदा के लिए विद्यमान रहते हैं, शाश्वत हैं ।

व्यक्ति विशेष तीर्थकर बदलते हैं, सामान्य तीर्थकर सदा काल के लिए रहते हैं । इसीलिए लोगस्स की प्रथम गाथा में सामान्य तीर्थकरों की स्तुति की गई है ।

तीर्थकर भगवान के अनन्तानन्त गुणों का कौन वर्णन कर सकता है ? उनकी स्तुति करने को मिली, यह भी सौभाग्य गिना जाता है ।

‘अहो मे स्तुतः स्वामी, स्तुतेर्गोचरमागमत् ।’

- बीतराग स्तोत्र

प्रभु की स्तुति का मुझे अत्यन्त लोभ है । जहां से मिले वहां से ले लेता हूं । मैं इस अर्थ में कृपण हूं । उस समय आपने सही कहा था ।

पूज्य आचार्य हेमचन्द्रसागरसूरिजी : उस समय के वचन मैं वापिस लेता हूं ।

पूज्यश्री : गुण तो बहुत कहते हैं, दोष कहां से सुनने को मिलें ? मैं तो उस समय भादौ शुक्ला-१३ को स्तब्ध हो गया था, मैं प्रशंसा सुनने के लिए थोड़े ही आया था ?

'हरि विक्रम चरित्र' में आने वाला यह दृष्टान्त सदा दृष्टि के समक्ष रहता है । संसारी पिता के पास शिष्य से प्रशंसा करा कर वे महान् योगी भी हार गये थे ।

दूसरों के द्वारा होने वाली स्तुति सुनकर प्रसन्न हो जायें तो भी साधना जाती है । स्तुति सुनकर अप्रसन्न हो, निन्दा सुनकर प्रसन्न हो वह सच्चा योगी है, सुख को दुःख और दुःख को सुख रूप गिने वह सच्चा मुनि है, ऐसा 'योगसार' में लिखा है । सौभाग्य या सुयश नामकर्म का उदय भी सुख है । यदि उस समय प्रसन्न होयें तो काम से गये ।

आठों मर्दों से सावधान रहना है ।

* आप चाहे जितने बड़े विद्वान या गीतार्थ आचार्य बन गये हों तो भी लोगस्स, पुक्खरवर, सिद्धाणं आदि सूत्र ऐसे रखे हैं कि आपको भगवान की स्तुति करनी ही पड़ती है ।

'लोगस्स उज्जोअगरे' अर्थात् भगवान लोक को प्रकाशित करने वाले हैं । सूर्य एवं दीपक की तरह केवलज्ञान का भी प्रकाश होता है । वह द्रव्यप्रकाश है, यह भाव-प्रकाश है ।

उद्धोत करने वाले तीर्थंकर दूर हैं, तो भी क्या हुआ ?

सूर्य दूर है, परन्तु किरणें यहीं हैं न ?

भगवान दूर हैं, परन्तु भगवान की कृपा तो यहीं है न ?

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः

- भक्तामर स्तोत्र

भगवान ऐसे सूर्य हैं जो कदापि अस्त नहीं होते, बादलों या राहु से वे ग्रस्त नहीं बनते ।

भगवान मोक्ष में गये उसका अर्थ यह नहीं है कि वे अस्त हो गये । भगवान भले मोक्ष में हों, परन्तु उनके गुण तो यहां प्रकाश फैला सकते हैं ।

सूर्य चाहे आकाश में हो, परन्तु हमें तो प्रकाश से मतलब है न ? प्रकाश तो यहां मिलता ही है ।

द्वारा मालूम होता है कि भगवान स्वयं भी दृष्टान्त देते थे । कथा बड़ी होती है, उपमा छोटी होती है ।

* कल स्वास्थ्य सर्वथा अस्वस्थ था, फिर भी मैं ने वाचना दी ही थी । यदि वाचना बन्द रखता तो अस्वस्थता की खबर अधिक फैल जाती । भगवान पर भरोसा रख कर मैं ऐसा कार्य कर लेता हूं ।

* भगवान उपकारी हैं, हम उपकार्य हैं । उपकार्य से भगवान को कोई प्रत्युपकार की इच्छा नहीं है, यही भगवान की महानता है ।

* भगवान भले बदल जाते हैं, परन्तु गुण नहीं बदलते । इसीलिए 'नमुत्थुणं' वही रहता है जो सबमें समान रूप से लागू होता है ।

यह 'शकस्तव' इन्द्र द्वारा रचित नहीं है, गणधरों के द्वारा रचित है । इन्द्र तो सिर्फ बोलते ही हैं । इन्द्र में रचना करने की क्या शक्ति है ? देखो यहां लिखा है -

महापुरुषप्रणीतश्चाधिकृतदण्डकः ।

आदिमुनिभिर्हर्षिच्छ्रियैः गणधरैः प्रणीतत्वात् ।

इसी कारण यह 'शकस्तव' महा गम्भीर है, सकल नयों का स्थान है, भव्य जीवों को आनन्दकारी है, परम आर्ष रूप है ।

आर्ष अर्थात् ऋषियों का । आर्ष में व्याकरण के सूत्र भी लागू नहीं पड़ते, प्रत्युत व्याकरण आर्ष का अनुसरण करता है ।

इसीलिए प्राकृत व्याकरण में तीसरा ही सूत्र लिखा - 'आर्षम्' ।

* 'भगवती सूत्र' में अभयदेवसूरिजी ने स्वयं उमास्वाति महाराज को उद्धृत किया है । आज भगवती में आठ आत्माओं के अधिकार में प्रशम्भरति के श्लोक उद्धृत किये हुए देखने को मिले । वे एक अक्षर भी आधार के बिना नहीं लिखते ।

* आगमों की वाचना आप सुनते हैं, परन्तु क्या उन आगमों को कण्ठस्थ करने का नियम बनायेंगे ? प्रत्येक चातुर्मास में आगम परोसे जायें तो कितना उत्तम हो ? बीस वर्ष पूर्व यहां 'सूयगडंग' शुरु किया था । यदि हम ही आगम नहीं चलायेंगे तो कौन चलायेगा ?

जीवन में यदि आगमों को प्रधानता देनी हो तो उन्हें कण्ठस्थ करें ।

जन साधारण की भाषा में कठिन आगम भी प्रचारित किये जा सकते हैं । सर्व प्रथम अपनी रुचि होनी चाहिये । मात्र लोक-रंजन, मनो-रंजन नहीं करना है, हमें आत्म-कल्याण करना है । हमारे व्याख्यान में यदि आगमों के पदार्थ आयें ही नहीं तो वहां क्या रहा ?

पूज्य प्रेमसूरिजी, पं. मुक्तिविजयजी, पं. भानुविजयजी के व्याख्यान सुन कर कभी-कभी कहते, 'आपके इस व्याख्यान में आगमों का तो कोई तत्त्व आया ही नहीं ।

आगमोद्धारक पूज्यश्री सागरजी महाराज सच्चे अर्थ में आगमोद्धारक थे । अब उनके उत्तराधिकारियों को यह उत्तरदायित्व संभालना है ।

आगम-परिचय-वाचना का आयोजन करने की बात जानकर मुझे अत्यन्त ही आनन्द हुआ ।

आचारांग, उत्तराध्ययन आदि का योगोद्धहन करके आगमों को ताक पर नहीं रख देना है, उन्हें कण्ठस्थ करके जीवन में उतारना है ।

दसवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग इत्यादि की जितनी टीकाएँ आदि उपलब्ध हैं, उन सबका कम से कम पठन तो करें । यदि पठन करोगे तो जीवन में कुछ आयेगा । तो ही आगमों की परम्परा चलेगी ।

* डॉक्टर की उपाधि प्राप्त करके क्या करना चाहिये ? दूसरों की सेवा करनी है । अजमेर के (मूल फलोदी निवासी) जयचंदजी डॉक्टर हैं । देश-विदेश में उनकी ख्याति है । वे कहते, 'मैं चाहे जैसे डॉक्टर को सर्टिफिकेट नहीं दे सकता । मेरी भारी जवाबदारी है । वे यदि चाहे जैसे इंजेक्शन लगा दें और रोगी मर जाये तो जवाबदारी मेरी रहेगी ।

यहां भी आगमधारकों की जवाबदारी है । डॉक्टरों से भी भारी जवाबदारी है ।

ॐ ॐ ॐ



१७-९-२०००, रविवार
अश्विन कृष्णा-४ : पत्रा रूपा धर्मशाला

आगम-परिचय-वाचना भगवती अंग

पूज्य आचार्यश्री विजयकलापूर्णसूरिजी :

सबकी भलाई के लिए भगवान ने तीर्थ की स्थापना की। भगवान पुष्करावर्त मेघ की तरह बरसे हैं। आज भी उसका प्रभाव अनुभव किया जा सकता है। भगवान का है, उस प्रकार भगवान की ३५ गुणों से युक्त वाणी का भी अतिशय है। पुष्करावर्त मेघ के बादमें २१ बार धरती पर उपज होती रहती है, उस प्रकार भगवान की वाणी से २१ हजार वर्षों तक शासन चलता रहेगा। परम्परा से यह वाणी का प्रवाह चलता रहेगा।

* प्रभु के अनुग्रह का यह ज्वलंत उदाहरण है। उसके बिना इस भूमि पर ऐसे वातावरण का सृजन नहीं होता, सामूहिक अनुष्ठान नहीं हो सकता।

उत्तम भावना जगे तदनुसार विकास होता है। प्रत्येक संघ, समुदाय में ऐसा वातावरण बन जाये तो विकास कहां दूर है ?

* आगमोद्धारकश्री की वाचना में हमारे पूज्य आचार्य भगवन् श्री पूज्य मेघसूरिजी, पूज्य कनकसूरिजी आदि लाभ ले चुके हैं।

* श्रुत का उद्धार मात्र वाचना से नहीं होता, जीवन में आगमों को उतारने से होगा ।

* 'भगवती सूत्र' पर २०-३० मिनट में मेरे जैसे की बोलने की कहां शक्ति है ? फिर भी आगमों के प्रति भक्ति बोलने के लिए प्रेरित करती है ।

आगम अर्थात् प्राण ! जीवन ! इसके आधार पर ही अपना भाव-जीवन टिका हुआ है और टिका रहेगा ।

भगवती अर्थात् द्रव्यानुयोग का खजाना । यद्यपि वैसे तो चारों अनुयोग हैं । यह आकर ग्रन्थ है, जिसकी प्रशंसा स्वयं गणधरों ने की है, मंगलाचरण भी उन्होंने ने किया है - नमो सुअस्स । नमो बंधीए लिवीए । यह मंगल कैसे है ? पंच परमेष्ठी तो हैं नहीं ।

श्रुतज्ञान श्रुतज्ञानी को छोड़ कर कहीं नहीं रहता, उनका नमस्कार मंगल ही गिना जाता है ।

सचमुच तो जिनागम एवं जिन एक ही रूप में है ।

‘जिन प्रतिमा जिन सारखी’ ऐसा बोलते हैं, परन्तु क्या जिन प्रतिमा साक्षात् जिन लगती है ? मुझ में भी अभी ऐसा भाव नहीं जगता । मूर्ति ही क्यों ? भगवान का नाम भी भगवान है । मूर्ति भी भगवान हो तो आगम तो भगवान गिने जाते हैं ।

यदि आगम नहीं होते तो मुक्ति-मार्ग कैसे चलता ? मात्र संकेत (इशारे) से नहीं चलता । भाषा से ही स्पष्ट बोध होता है ।

इस 'भगवती' में ४१ शतक हैं ।

जीवनभर चिन्तन-मनन करें तो जीवन के समस्त प्रश्न हल हो जायें ।

बीस वर्ष पूर्व मानतुंगसूरिजी के पास वाचना ली थी । उससे पूर्व बेटा में पूज्य पं. भद्रंकरविजयजी महाराज के पास लेकर व्याख्यान में बोलता था ।

गोयमा शब्द पर स्वर्ण-मुद्राएँ रखनेवाले श्राविक भी अपने शासन में हो चुके हैं ।

हमें समझा-समझा कर आगमों के लिए सौगन्ध (शपथ) दी गई थी।

पूज्य हेमचन्द्रसागरसूरिजी : अब आप दीजिये ।

पूज्यश्री : इसके लिए तो आया हूं ।

यहां भगवती में मात्र गौतम स्वामी ही नहीं, जयन्ती जैसी श्राविका ने भी प्रश्न किये हैं ।

प्रश्न कर्ता गौतम स्वामी कैसे ? प्रथम पोरसी में सूत्र, दूसरी में अर्थ रूप ध्यान के कोठे में रहने वाले ।

अर्थ अर्थात् निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य आदि सबका अध्ययन । इसीलिए अध्ययन को 'अक्षीण' भी कहा है, क्योंकि इतने अर्थ निकलते हैं कि वे कभी समाप्त होते ही नहीं । अक्षीण अर्थात् अखूट, भरपूर ।

भगवती का एकाध नमूना देखें ।

पंचास्तिकाय रूप लोक में अलोक का भी समावेश हो चुका है, क्योंकि आकाशास्तिकाय अलोक में भी है ।

भगवान के प्रति जितना आदर-सम्मान बढ़ेगा, उतने आगमों के रहस्य समझ में आयेंगे ।

पूज्य जिनचन्द्रसागरसूरिजी ने सबसे गवाया :

जिम जिम अरिहा सेविये रे;

तिम तिम प्रगटे ज्ञान सलूणा...।

पूज्यश्री : देव-गुरु की भक्ति से ज्ञान प्रकट होगा ।

मैं स्वयं विद्वान नहीं हूं । मुझ से अधिक विद्वान यहां हैं ।

भक्ति के प्रभाव से जो अर्थ निकले उससे मुझे भी आनन्द आये ।

ध्यान के समय अर्थ निकलते हैं । भगवान को पूछने के लिए जाना नहीं पड़ता, भगवान स्वयं आकर कह कर जायें, ऐसा अनुभव होता है ।

मीरा के लिए कृष्ण दूर नहीं हैं ।

भक्त के लिए भगवान दूर नहीं हैं ।

भगवान दूर हैं, यह भ्रम मिटाना ही पड़ेगा ।

शायद किसी को विशिष्ट अर्थ मालूम हो जाये तो भगवान का प्रभाव मारें, अपना नहीं ।

पूज्य हेमचन्द्रसागरसूरिजी : ब्राह्मीलिपि को नमस्कार क्यों ?

पूज्यश्री : श्रुतज्ञान के प्रत्येक प्रकार के प्रति सम्मान है । ब्राह्मी लिपि में द्रव्यश्रुत है । द्रव्य के बिना भावश्रुत प्रकट नहीं होता ।

लिपि अक्षर रूप है । न क्षरति इति अक्षरम् । तीर्थकर आते हैं और जाते हैं, परन्तु अक्षर तो रहते ही हैं ।

भावश्रुत के जितना ही द्रव्यश्रुत का सम्मान करना है ।

ज्ञान की मुख्यता हो तब चारित्र एवं ध्यान उसमें ही अनुस्युत समझें । यह ज्ञान 'ज्ञ' एवं प्रत्याख्यान परिज्ञा रूप समझें ।

तज्ज्ञानमेव कथं यस्मिन् उदिते रागादयः जायन्ते ?

* भचाऊ में भगवती का वांचन चल रहा था, तब एक स्थान पर मैं तनिक चौंक गया, क्योंकि उसमें लिखा था - जीवास्तिकाय अनन्त प्रदेशी है । परन्तु बाद में ध्यान आया कि यह तो अनन्त जीवों की बात है । जीव ही अनन्त हों तो प्रदेश तो अनन्त होंगे ही न ?

कल भगवती में आया था -

द्रव्यात्मा में सभी जीव आ गये । द्रव्यात्मा के रूप में हम सब एक हैं ।

हम दूसरों को अलग मानते हैं, परन्तु जीवास्तिकाय कहता है - हम सब एक हैं । दूसरे सब (पुद्गलास्तिकाय आदि) जीवास्तिकाय के सेवक हैं । कर्तृत्व आदि शक्तियां जीव के सिवाय और कहां हैं ?

जीवास्तिकाय का शब्दार्थ -

जीव = जीव

अस्ति = प्रदेश

काय = समूह

यहां विद्वान् अनेक हैं । मैं कुछ न दूं तो वे मेरा कान पकड़ते हैं । जीवास्तिकाय के पांच प्रकार हैं - द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण ।

* द्रव्य से जीवास्तिकाय अनन्त जीव द्रव्य रूप है । उसमें समस्त जीव आ गये ।

(भले ही कुछ कंटला आये, परन्तु यह जानने योग्य है ।)

क्षेत्र से लोकव्यापी

काल से अनादि अनन्त, नित्य, शाश्वत ।

कोई काल नहीं होता जब जीवास्तिकाय नहीं होता ।

समस्त द्रव्य सहायक बनते हैं । शायद एकमात्र हम सहायक नहीं बनते । यदि इस विश्व में अस्तित्व बनाये रखना हो तो दूसरे को सहायक बनना ही पड़ेगा । इसके बिना अस्तित्व कायम रहेगा ही नहीं । समझ कर सहायता करें तो लाभ हैं, अन्यथा विश्व व्यवस्था के अनुसार अनिच्छा से भी सहायता करनी ही पड़ेगी ।

भावसे - अवर्ण, अगन्ध आदि ।

पुद्गलास्तिकाय के सिवाय सब अरूपी हैं ।

जीव असंख्य प्रदेशी है, परन्तु जीवास्तिकाय अनन्त प्रदेशी है, क्योंकि जीव अनन्त हैं । समस्त जीवों का संग्रह जीवास्तिकाय है । जीव अनन्त हों तो प्रदेश तो अनन्त होते ही हैं ।

इसका अर्थ यह हुआ कि प्रदेशों से हम एक हैं ।

‘जीवास्तिकाय में से एक जीव को निकाल दे’ तो क्या जीवास्तिकाय कहलायेगा ? गौतम स्वामी के इस प्रश्न के उत्तर में भगवान ने कहा - ‘नहीं, नहीं कहलायेगा । एक प्रदेश शेष रखें तो भी जीवास्तिकाय नहीं कहलायेगा ।

भगवान भी इस जीवास्तिकाय में साथ हैं और कहते हैं कि हे जीव ! तू मेरे समान ही है ।

एक जीव ही नहीं, जीव के एक प्रदेश को सतायें तो यह अपनी ही परेशानी बनी रहेगी । अपने शरीर के एक अंगूठे को भी आप कष्ट देंगे तो वह कष्ट आपका ही है, दूसरे किसी का नहीं ।

इसीलिए आचारांग में कहा है -

‘तुमसि नाम सच्चेव जं हंतव्वंति मन्नसि ।’

जिसे मारता है वह तू ही है, यह सत्य मानना ।

यह तो मात्र नमूना बताया है, यदि आपको विशेष जानना हो तो भगवती का पाठ चलता ही है । पाठ में आ जाना ।

इस भगवती में अजैन संन्यासी भी भगवान को प्रश्न पूछने के लिए आते हैं, फिर निःशंक होकर दीक्षित होते हैं । जयन्ती

श्राविका के द्वारा पूछे गये प्रश्न के उत्तर में भगवान ने कहा, 'धर्मी लोग जागते अच्छे और अधर्मी सोये अच्छे ।

हम सोये भले कि जागृत भले ?

जागृति दो प्रकार की है - द्रव्य, भाव ।

शेष समस्त बातें हेमचन्द्रसागरसूरिजी करेंगे ।

इसी प्रकार से धर्मी बलवान अच्छे, अधर्मी निर्बल अच्छे । अधर्मी के पास बल हो तो दूसरों का नहीं, अपने ही विनाश का कारण बनता है ।

'इस भगवती में 'तुंगीया' नगरी के श्रावकों का वर्णन 'लब्धद्वा, गहीअद्वा' आदि कह कर किया गया है । ४५ आगम सुनने का तो श्रावकों को भी अधिकार है । इसीलिए 'लब्धद्वा, गहीअद्वा' श्रावक कहलाये हैं ।

यहां बैठे हुए बाल मुनीगण आदि आगमों को कण्ठस्थ करने की प्रतिज्ञा लें तो आनन्द होगा ।

पूज्य हेमचन्द्रसागरसूरिजी :

अस्वस्थता होने पर भी पौने घंटे तक तत्त्व समझाया । पूज्यश्री पक्के व्यापारी हैं ।

पूज्यश्री फरमाते हैं : साधु-साध्वीजियां एक वर्ष तक आवश्यक एवं दसवैकालिक की सभी टीकाएं आदि पढ़ें । मैं पहले हाथ जोड़ता हूं । मेरे साथ दूसरे कितने हाथ जोड़ेंगे ?

पूज्यश्री ने जो कहा वह यदि नहीं भी सुना हो तो उसका सार धुरन्धरविजयजी बतायेंगे ।

पूज्यश्री धुरन्धरविजयजी :

पूज्यश्री की बात थोड़ी याद कर लें ।

यों भी सुनने के बाद शास्त्र में धारणा की बात है ही ।

भगवान की वाणी को पुष्करावर्त की उपमा दी गई । पुष्करावर्त में ऐसा गुण है कि एक बार वृष्टि होने पर २१ वर्षों तक उपज होती ही रहती है ।

भगवान ३० वर्ष बोले । उनके दस-ग्यारह हजार दिन होते हैं । उसके प्रभाव से ही भगवान का शासन २१ हजार वर्षों तक चलेगा ।

हम सब खेती करते हैं, परन्तु जमीन में उपज हो वह भगवान की पुष्करवर्त रूप वाणी का प्रभाव है ।

हमारे बोलने के कारण से होता है, ऐसा हमारा भ्रम है । जो इससे भिट जाता है ।

‘नमो सुअस्स’ श्रुतज्ञान को नमस्कार, प्रणाम ।

तीर्थ के तीन प्रकार हैं, जिनमें द्वादशांगी भी है । पू. पंच्यास भद्रंकरविजयजी महाराज ने बहुत सा अनेकों को दिया है ।

श्रुत अर्थात् सुना हुआ, सिर्फ पढ़ा हुआ नहीं ।

गुरु के पास सुना हुआ ही भीतर का प्रकट कराता है । वेदों को ‘श्रुति’ कहा गया है ।

सुनने से ही आध्यात्मिक जन्म होता है, सुनने का ही महत्त्व है । बालक भी सुन कर ही भाषा सीखता है । सुच्चा जाणइ ।

* नमो बंभीए लिवीए ।

भगवान बोले उसकी जो आकृति खड़ी हुई वह ब्राह्मी ।

भैरवी राग गाओ तो भैरवी, वागेश्वरी से सरस्वती की मूर्ति रेत में खींच जाती है, ऐसा तजज्ञों का कथन है ।

मूल शब्द ब्रह्म है । ब्रह्म अर्थात् परमात्मा । उनके द्वारा बोला हुआ वह ब्राह्मी । ब्राह्मी भगवान का अक्षर-देह है, जो अविनाशी है ।

श्रुत-बीज को नमस्कार के बाद ब्राह्मी लिपि को भी नमस्कार यहां हुआ है ।

भगवती की इतनी महिमा क्यों है ?

इसमें चतुर्विध संघ के सबों को प्रश्न करने का स्थान मिला है । मुख्य गौतम स्वामी हैं, और जयन्ती श्राविका आदि दूसरे भी हैं ।

जयन्ती राजा शतानिक की सगी बहन थी ।

भक्ति में सुलसा आगे थी, जबकि जिज्ञासा में जयन्ती आगे थी । उस पर अभयदेवसूरि ने ‘जयन्ती चर्चा’ नामक ग्रन्थ लिखा है, जिसे साध्वीएं भी पढ़ सकती हैं ।

अणु विज्ञान के सिद्धान्त भी भगवती में से खोजे गये हैं, जो प्रकाशित भी हुए हैं ।

हमारे सुमेरपुर के चातुर्मास में एक श्राविका कहती, 'मेरी सास अनपढ़ थी परन्तु ४५ आगमों के बोल उन्हें कण्ठस्थ थे । ज्ञानसुन्दरजी द्वारा प्रकाशित थोकड़े (पहले थोकड़ों की हस्तलिखित प्रतें थी) उन्हें कण्ठस्थ थे । मात्र सुनकर कण्ठस्थ किये थे ।

मुनि श्रुतधर कहलाते हैं, तो श्रोता श्रुतिधर कहलाते हैं । एकाग्र हों तो ही यह सम्भव हो सकता है ।

भगवती को जयकुंवर गंध हस्ती की उपमा दी गई है । पूज्य लब्धिसूरिजी ने गंध हस्ती आदि के विशेषणों में ही चार महिने समाप्त कर दिये थे ।

गंधहस्ती के पास दूसरे हाथी नहीं ठहरते, उस प्रकार भगवती के पास विघ्न नहीं ठहरते ।

इसीलिए मंगल हेतु बार-बार भगवती का वांचन होता रहता था ।

* अलग होने का अनुभव करना ही मोह है । जीवास्तिकाय का कथन है - हम एक हैं । लोक स्वरूप भावना भी यही है ।

हिन्दुस्तान के समस्त नागरिक भारतीय के रूप में एक हैं, उक्त प्रकार जीवत्व के रूप में हम सब एक हैं । गुजराती आदि के रूप में अलग, उस प्रकार भेदनय से जीव भिन्न भी गिना जाता है ।

आप देह रूप हैं और विश्वरूप भी हैं, उसकी संवेदना करें - ऐसा भगवान का कथन है ।

'अरूपी' इसलिए कहलाता है कि पहले रूप ही प्रतीत होता है, शब्द आदि बाद में सुनाई देते हैं । उदाहरणार्थ बिजली का प्रकाश पहले दिखाई देता है, गर्जना बाद में सुनाई देती है ।

धर्म अर्थात् परोपकार । जो दूसरों के लिए उपयोगी नहीं बनता वह धर्मी नहीं है ।

धर्मी बलवान या समृद्ध अच्छे ।

पापी निर्बल या दरिद्र अच्छे ।

* व्याख्यान में माला फेरें तो नहीं चलता । नींद करो तो फिर भी चलता है । नींद करते समय कम से कम हमारे शब्द तो कानों में पड़ेंगे ।

ॐ ॐ ॐ

तत्रभवता प्रेषितं पुस्तकं 'कह्लुं कलापूर्णसूरि' इति समधिगतं ।
समवगतञ्च तत्रगतं तत्त्वं किञ्चित् । भवतः पुस्तक-सम्पादन पद्धतिरतीव
रमणीयतरा ।

पुस्तक-पठनावसरे संविदितानुभूति-रेतादृशी यत् तत्रश्रीमतां
श्रीमतां पूज्यप्रवराणां 'कलापूर्णसूरिश्वराणां' सन्निकटस्थान एव उपविश्य
यथा श्रूयते साक्षात् रूपेण वाचनां प्रवचनं वा । एतादृग्वैलक्षण्यमनुभूय
प्रमुदितं आस्माकीनं अन्तश्चेतः ।

एतत्सम्पादन-कार्यकौशल्येन भवद्भ्यां प्रकृष्टं पुण्यकर्म समुपार्जितम् ।
एतदर्थं धन्यवादाहो भवन्तौ ।

पुस्तक-प्रेषण-कार्येण भवद्भ्यामावाम् निश्चित-रूपेणोपकृतौ ।
पुनः स्मरणीयौ आवामिति-

- जिनचन्द्रसागरसूरिः
- हेमचन्द्रसागरसूरिश्च
पालीताणा

ॐ ॐ ॐ

'कह्लुं कलापूर्णसूरि' पुस्तक मिली है, देखी । अत्यन्त ही
चिन्तनीय, मननीय है, सुवाक्यों का भण्डार है ।

आप संकलनकर्ता हैं, आपको अनेक धन्यवाद । व्याख्यान में
कम लोग आते हैं, परन्तु पुस्तक के रूप में प्रकाशित विचार हजारों
लोग पढ़ें । अतः हजारों लोगों तक पूज्यश्री की प्रसादी पहुंचाने का
भगीरथ कार्य करने के उपलक्ष में अत्यन्त अनुमोदना के साथ धन्यवाद ।

- हेमन्तविजय

ॐ ॐ ॐ

वांकी तीर्थ में दी गई वाचना की पुस्तक मिली । अत्यन्त आनन्द-
दायक सामग्री परोसी गई है । विवरण कहीं-कहीं अपूर्ण प्रतीत होते हैं ।

उदाहरणार्थ - सोलापुर के चातुर्भास की बात है । वहां पर्यूषण
के पश्चात् व्याख्यान बन्द करने की बात है । तत्पश्चात् क्या हुआ
यह जिज्ञासा असन्तुष्ट रही है ।

- आचार्य विजयप्रद्युम्नसूरि
शान्तिनगर, अहमदाबाद-१३.

ॐ ॐ ॐ

दोनों ग्रन्थ मिले । अत्यन्त प्रसन्नता हुई । आपने पूज्यश्री की यह पवित्र वाणी-गंगा को प्रवाहित की । आप दोनों पूज्य गणिवर्यों ने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सम्पादन कार्य किया है, जो धन्यवादार्ह है ।

- पंन्यास विश्वकल्याणविजय

श्री पार्श्व प्रज्ञालय तीर्थ

ॐ ॐ ॐ

आचार्य भगवन् के चिन्तन का खजाना प्राप्त हुआ । 'कहे कलापूर्णसूरि' बैंगलोर निवासी भंवरलालजी ने आर्यबिल करने के लिए आते समय दी ।

साहेबजी का पुण्य, साधना, चिन्तन, भक्ति एवं उनका तेज इतना उच्च कोटि का है कि पूछो ही मत । फिलहाल थोड़ा सा ही चिन्तन पढ़ पाया हूँ । उसमें भी इतना आनन्द आया कि वर्णन नहीं कर सकता । ऐसे परम योगी पुरुष का आप अत्यन्त ही उत्तम चिन्तन का संकलन कर रहे हैं, एवं आपने भी उनकी छत्रछाया में अद्भुत ज्ञान-खजाना प्राप्त किया है । मुझे भी समय-समय पर ऐसा खजाना लूटने का अवसर प्रदान करते रहें ।

- अशोक जे. संघवी, बैंगलोर

ॐ ॐ ॐ

'कहे कलापूर्णसूरि' तथा 'कहूँ कलापूर्णसूरिए' दोनों पुस्तकें प्राप्त हो गई हैं । पूज्यपाद आचार्य भगवंत विजयकलापूर्णसूरीश्वरजी महाराज साहिब के साधना-जिनभक्ति रसमय जीवन से टपकती साधक-वाणी उपलब्ध कराने हेतु धन्यवाद, आनन्द, अनुमोदन ।

ये शुभ प्रयास चालु रखने के लिए विनती ।

श्रुत-भक्ति में श्रेष्ठ उद्यम कर के स्वाध्याय-शील रहने के लिए अभिनन्दन ।

- आचार्य कलाप्रभसागरसूरि, हैदराबाद

ॐ ॐ ॐ

पुस्तक स्वाध्याय के लिये, आत्मिक विकास के लिए अत्यन्त ही सुन्दर है । पढ़नी प्रारम्भ कर दी है ।

- मुनि संवेगवर्धनविजय, घाटकोपर, मुंबई

ॐ ॐ ॐ

हयने के लिए कर्मों की फौज,
करने के लिए परमात्मा की खोज,
लेने के लिए मुक्ति की मौज,
यह पुस्तक है सुख का हौज ।

~ साध्वी भव्यदर्शिताश्री

✻ ✻ ✻

यह पुस्तक प्रत्येक व्यक्ति के लिए अत्यन्त ही उपयोगी है ।

- साध्वी चारुविनीताश्री

✻ ✻ ✻

यह पुस्तक पढ़ने पर ऐसा प्रतीत हुआ, मानो प्रत्येक शब्द भगवान के श्रीमुख में से निकला हो ।

- साध्वी अभ्युदयाश्री

✦ ✦ ✦

इस पुस्तक को पढ़ने से हमारे भीतर समस्त जीवों के प्रति मैत्री, परोपकार एवं करुणा प्रकट हो, गुरु एवं सहवर्तियों के प्रति अत्यन्त आदर-भाव उत्पन्न हो वैसे मनोरथ हुए हैं ।

- साध्वी चित्तदर्शनाश्री

✦ ✦ ✦

जहां लघुता होगी वहां भक्ति प्रकट होगी,
जहां भक्ति होगी वहां मुक्ति प्रकट होगी,
पुस्तक का यह वाक्य मुझे अत्यन्त ही पसन्द आया ।

- साध्वी वीरदर्शनाश्री

✧ ✧ ✧

पूज्यश्री की वाचना सोये हुए आत्मराम को झकझोर रही है ।
सषष्ठ चेतना तनिक जागृत होने के लिए प्रयत्नशील है ।

- साध्वी हंसमैत्रीश्री

✿ ✿ ✿

अनादि काल से प्रभु का जो वियोग है, उस प्रभु का संयोग कर दे ऐसे योगों के आश्रय करने की इच्छा यह पुस्तक पढ़ने से हुई ।

- साध्वी हंसलक्षिताश्री

✦ ✦ ✦

‘कहे कलापूर्णसूरि’ पुस्तक में लोकोत्तर बातें हैं । आत्मा को परमात्मा बनाने की वाणी-गंगा हर पेज पर छलकती है ।

- सा. चन्द्रज्योत्स्नाश्री

ॐ ॐ ॐ

अनेक ग्रंथों का सार इस पुस्तक में रहा हुआ है ।

- सा. मनोजयाश्री

ॐ ॐ ॐ

पुस्तक पढ़ने से अब हम प्रभु के पास आधा घंटा भक्ति करते हैं, पहले हम सिर्फ पाँच घंटा ही भक्ति करते थे । गुरु-भक्ति में भी उल्लास बढ़ा है ।

- सा. प्रशमनिधिश्री

ॐ ॐ ॐ

पुस्तक पढ़ने के बाद जाप, प्रभु-भक्ति बढ़े - इसके लिए मैं प्रयत्नशील रहूँगी ।

- सा. धनंजयाश्री

ॐ ॐ ॐ

पुस्तक पढ़ने पर प्रतिदिन आधा घंटा पढ़ना - ऐसी धारणा (संकल्प) की है ।

- सा. भुवनश्री

ॐ ॐ ॐ

इस पुस्तक में ऐसा अखूट ज्ञान का खजाना है कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता ।

- सा. अनंतकिरणाश्री

ॐ ॐ ॐ

पुस्तक से भक्ति में रस जगा है । मंदिर में से निकलने की इच्छा नहीं होती ।

- सा. जितपद्माश्री

ॐ ॐ ॐ

पुनः पुनः इस पुस्तक का स्वाध्याय करने जैसा है - ऐसा प्रतीत हुआ ।

- सा. अक्षयचन्द्राश्री

ॐ ॐ ॐ

पुस्तक पढ़ने पर लगा: प्रभु सतत प्रेम की वृष्टि कर रहे हैं,
पर हम ही नहीं झेल रहे हैं ।

- સા. અક્ષયપ્રજ્ઞાશ્રી

✦ ✦ ✦

समुद्र से तरंग की तरह मैं भी प्रभु से भिन्न नहीं हूँ - यह पुस्तक द्वारा जानने पर मैं आनंद से भर गई हूँ ।

- सा. इन्द्रवदनाश्री

☞ ☞ ☞

पुस्तक में हर जगह पूज्यश्री की करुणा से दर्शन होते हैं ।

- सा. शीतलदर्शनाश्री

✻ ✻ ✻

सम्यग् दिशा और सम्यग् मार्ग की ओर ले जानेवाली पुस्तक
अर्थात् : 'कहे कलापूर्णसरि'

- सा. दीप्तिदर्शनाश्री

✕ ✕ ✕

पूज्यश्री का पुस्तक पढ़ने पर हर गच्छ के पू. साधु-साध्वीजीओं को पूज्यश्री पर अहोभाग जगता है ।

- सा. यशोधर्माश्री

☘ ☘ ☘

इस पुस्तक ने प्रभु का स्वरूप समझाया ।

- सा. अनंतज्योतिश्री

✠ ✠ ✠

बार बार पढ़ने पर भी मन तुम नहीं होता ।

- सा. जिनरक्षिताश्री

☞ ☞ ☞

पुस्तक कभी बोलती नहीं है, पर यह पुस्तक बोलती हुई महसूस हुई । मानो पूज्यश्री के प्रभाव से जड़ में भी वाणी प्रगट हुई ।

- सा. दृढप्रतिज्ञाश्री

इस पुस्तक में साधना के लिए क्या नहीं है ? यही प्रश्न है ।

- सा. सम्यक्त्वरत्नाश्री

☞ ☞ ☞

इस पुस्तक ने हमें समझाया कि भक्ति के अलावा मुक्ति का दूसरा कोई मार्ग नहीं है ।

Round is ring which has no end, but 'Bhakti' is thing which has direct connection with Paramatma.

- सा. जिनभक्तिश्री

✦ ✦ ✦

ज्यों ज्यों पुस्तक पढ़ती गई त्यों त्यों कभी न सुने हुए, न जाने हुए नये-नये पदार्थ जानने मिलते गये ।

- सा. स्मितवदनाश्री

✠ ✠ ✠

बिन्दु का संचय अर्थात् महासागर !

किरणों का समूह अर्थात् दिवाकर !

गुलाबों का मिलन अर्थात् गुलझार !

‘कहे कलापूर्णसूरि’ पुस्तक अर्थात् ज्ञान का रत्नाकर !

~ सा. जिनरसाश्री

✠ ✠ ✠

इन पुस्तकों को जितना अधिक पढ़ते हैं, उतनी अधिक - अधिक पढ़ने की इच्छा होती रहती है।

- सा. विनयनिधिश्री

✦ ✦ ✦

इस पुस्तक का मेरा प्रिय वाक्य : 'श्रुतज्ञान मात्र पढ़-पढ़ कर नहीं, परंतु उस मुताबिक जीवन जी कर टिकाना है ।'

- सा. जीतप्रज्ञाश्री

✠ ✠ ✠

सूर्य की किरण पकड़ी नहीं जा सकती, उस प्रकार इस पुस्तक का वर्णन नहीं हो सकता ।

- सा. चेल्लणाश्री

✦ ✦ ✦

संयम-जीवन की प्रगति के लिए उत्सुकता बढ़ी है ।

- सा. चारुस्तुतिश्री

✠ ✠ ✠

पुस्तक पढ़ने पर ध्यान आता है कि बांकी तीर्थ में प्रश्नोत्तरी की कैसी धम मची होगी ?

‘कहे कलापूर्णसूरि’ पुस्तक मिलते ही मुझे लगा: मेरी प्रार्थना सफल हुई ।

- धीरुभाइ ठक्कर, आम्बरडी - कच्छ (अभी चेन्नई)

- बाबुभाइ कड़ीवाला, अमदावाद

- टीकु आर. सावला, मनफरा-कच्छ (मुम्बई)

- धनजी बी. सावला, मनफरा-कच्छ (मुम्बई)

मुझे तो यही लगता है कि जिस प्रकार 'नवकार' चौदह पूर्व का सार है, उस प्रकार इस हलाहल कलियुग में समस्त शास्त्रों का सार यह पुस्तक है। नासमझ को भी इस पुस्तक से अत्यन्त ही समझ मिल सकती है। हमें तो मानो 'पंथ वच्चे प्रभुजी मल्या' उस प्रकार पंथ के मध्य ही 'कहे कलापूर्णसूरि' पुस्तक प्राप्त हो गई। अतः अब होगा वहां तक तो वर्ष में एक बार तो उसका स्वाध्याय करने का प्रयत्न करेंगे ही, ताकि हमारे जीवन में होने वाली क्षतियाँ दूर हों।

- साध्वी सुज्येष्ठाश्री

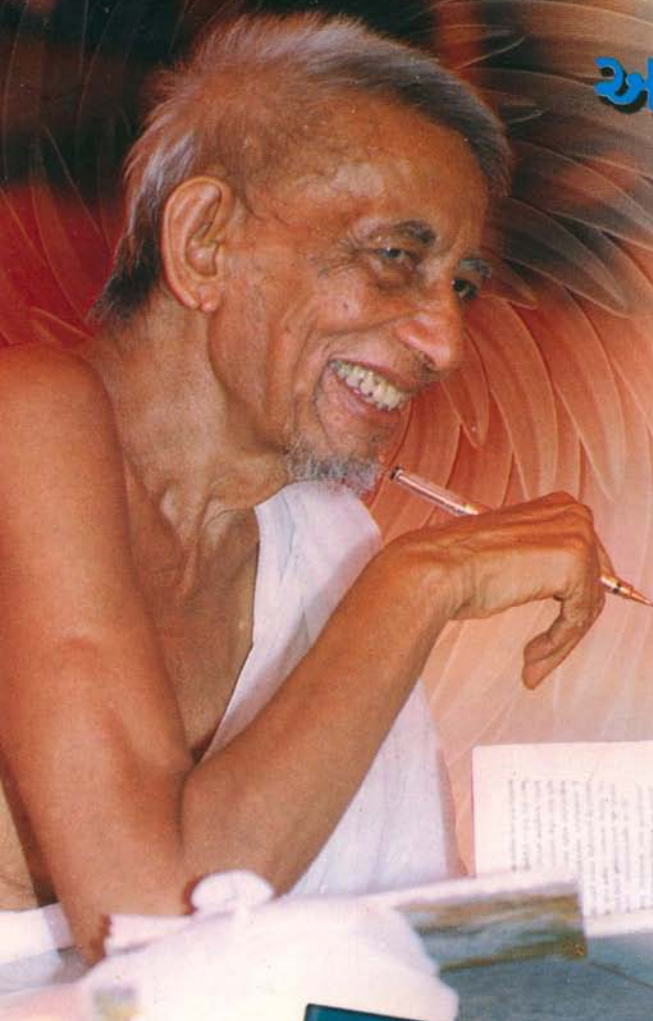
ॐ ॐ ॐ

'कहुं कलापूर्णसूरि' वाचनादाता : पू.आ.श्री विजय-कलापूर्णसूरिश्वरजी महाराज, अवतरण/संपादन : उभय पू. गणिवर (पंन्यासप्रवर) श्री मुक्तिचन्द्रविजयजी म., श्री मुनिचन्द्रविजयजी म., प्रकाशक : शान्तिजिन आराधक मंडल, जैन मंदिर के पास, मनफरा (शान्तिनिकेतन), जी. कच्छ, गुजरात, पीन : ३७० १४०, डेमी साइड, पेज ५५२, मूल्य : अप्रकाशित.

थोड़े समय पूर्व प्रकाशित और अद्भुत लोकप्रियता प्राप्त प्रकाशन 'कहे कलापूर्णसूरि' (जिसकी दूसरी आवृत्ति प्रकाशित करनी पड़े - इतनी मांग है) ऐसा ही यह दूसरा बड़ा ग्रन्थ है : 'कहुं कलापूर्णसूरि' इसमें अंजार, पो.सु. १४, ता. २०-१-२००० से श्रा.व. २, १८-७-२०००, पालिताना तक के विहार दौरान दिये हुए वाचना - प्रवचनों में से संगृहीत पूज्यश्री की साधनापूत वाणी के अंश मुद्रित है। पूर्व प्रकाशन की तरह यह पुस्तक भी अवश्य लोकप्रिय/लोकोपकारी बनेगा - ऐसा निःशंक कहा जा सकता है। पूर्व पुस्तक की तरह इसमें भी प्रत्येक नये प्रकरणों के प्रारंभ में पूज्यश्री की लाक्षणिक तस्वीरें दी गई हैं। टाइटल चित्र अत्यंत आकर्षक बना है। उभय पू. गणिवर (पंन्यासजी) बंधुओं द्वारा बहुत ही प्रयत्न से किया गया यह संकलन सचमुच 'गागर में सागर' की उपमा देनी पड़े - ऐसा विशिष्ट है। ज्ञान-ध्यान-भक्ति मार्ग की गहरी बातें - अनुभूतियाँ इसमें शब्दस्थ बनी हैं। सचमुच पढ़ने लायक और चिन्तन करने लायक यह पुस्तक होने से इसमें लाभ लेनेवालों को जितने धन्यवाद दें, उतने कम ही माना जायेगा।

ॐ ॐ ॐ

अध्यात्मयोगी



पूज्य आचार्यदेवश्रीनुं साहित्य



ज्ञान भण्डार में जो पुस्तकें हैं वे
निरर्थक नहीं हैं । उनके योग्य कोई न कोई
जीव इस विश्व में हैं ही । योग्य समय
पर वे आ ही पहुंचेंगे । पुस्तकें स्वयं के
योग्य पाठकों की प्रतीक्षा करती हुई भीतर
बैठी हुई हैं ।

- कहे कलापूर्णसूरि, पेज-५६
श्रा. वद ९ मंगलवार
दि. २५-७-२०००



Tejas Printers
AHMEDABAD PH. (079) 26601045